अभी ही…

"अरे धत् ! दरअसल हममें से किसी को, किसी बात की तमीज नहीं है। दुनिया के तमाम जानवर भी अपनी-अपनी बात कहना जानते हैं। जो जितना भी समझता है, औरों को भी समझाना चाहता है। कहीं एक कौवा भी काँव-काँव करता है तो बाकी कौवे उसकी बात फौरन समझ जाते हैं। सच्ची, कसम से, एक बार एक पार्क में एक गाय को गर्दन उठाकर रँभाते हुए देखा था। जवाब में उसका बछड़ा भी बाँऽ—दूर से रँभाया और विश्वास करियेगा, दोनों आवाजें बेहद प्यारी और मधुर लगीं। एक मेरी माँ है, जब मुझे 'अरुण' कहकर आवाज देती है, तो समझ ही नहीं आता कि वह प्यार से बुला रही है या नफरत से।"

टिकलू हँस पड़ा। कहा, "देखता हूँ, तू अब बेमौत मारा जायेगा। बेकार ही अपने चारों तरफ दुश्मनी के काँटे बो रहा है। अरे, इन सब की आखिर क्या जरूरत है ? मैं पूछता हूँ इन झंझटों में फँसता ही क्यों है। मेरी तरह पंकुली मछली बन जा और जब कोई ऐसा मौका आ जाये तो सड् से खिसक जाया कर।"

अरुण चुप हो गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया। इन दिनों

उसे सारी दुनिया से ही नफरत होने लगी है—सारे लोगों से, अपने से भी।

आज उसने अपने मन का दुःख टिकलू के आगे खोलना चाहा था, लेकिन उसने भी नहीं समझा। ल्ला ! दुनिया के बाकी तमाम जीव-जन्तुओं में बात करने का सलीका है, एक इन्सान में ही इसकी तमीज नहीं है।

इतनी देर से सुजीत अपनी हथेली पढ़ने की कोशिश में डूबा हुआ था। उसकी बात सुनकर उसने एक गहरी उसांस भरकर कहा, "असल में जीव-जन्तुओं में महसूस करने की ताकत बहुत कम होती है। उनकी जरूरतें भी ले-देकर सिर्फ एक-दो ही होती हैं। अतः उनके लिए दूसरों को समझना क्या मुश्किल है ?"

अरुण ने झुंझलाकर कहा, "यार यही बात तो मैं भी कह रहा था। आदमी की जिन्दगी में हजारों पचड़े हैं, जिन्हें वह दूसरों को भी बताना चाहता है, लेकिन बता नहीं पाता। वह सिर्फ अपने से ही कह-सुनकर रह जाता है, क्योंकि बातें एकमात्र अपने से ही की जा सकती हैं।"

अरुण सोच रहा था—यह सब आखिर क्या है ? सभी लोग दिन-रात कुछ-न-कुछ कहते रहते हैं। खुद वह भी बहुत कुछ कहता रहता है···। लेकिन दरअसल जो कहना चाहता है, वह कभी नहीं कह पाया ! अगर कभी कहने की कोशिश भी की तो कोई समझ नहीं पाया। बातों के नाम पर थोड़े-से अर्थहीन शब्द या महज खोखली आवाजें भर ही तो···और कहीं कुछ नहीं···कुछ भी नहीं ! दरअसल आदमी इस काबिल नहीं होता कि वह अपनी बात कह सके या किसी की बात समझ सके।

"पता है, मुझे कभी-कभी क्या लगता है ? हम सब जैसे बेजान पेड़-पौधे हैं ! एक बियाबान जंगल में एक-दूसरे से सटकर खड़े हैं—चुपचाप ! बहुत सारे पेड़ों की भीड़ हो तो जंगल कहलाता है, आदमियों की भीड़ हो तो समाज।"

"लेकिन, प्यारे, अगर लड़कियों की भीड़ इकट्ठी हो तो, उसे 'ब्यूटी-परेड' कहते हैं।" टिकलू अपनी बात पर खुद ही हँस पड़ा।

अरुण की झुंझलाहट तीखी हो आयी, "देख, इस वक्त मैं इतनी सीरियस बात कह रहा हूँ और तू···?"

टिक्लू ने कहा, "अरे, अभी तो तू कह रहा था कि आदमी को बात करनी ही नहीं आती। अगर यही बात सच है, तो तू इतने मजे से बकर-बकर कैसे कर रहा है?"

अरुण थोड़ी देर को चुप हो रहा। फिर कहा, "हाँ, तूने ठीक ही कहा। हर आदमी बातों के नाम पर सिर्फ बकर-बकर ही करता है।"

इतनी देर बाद सुजीत ने अपनी हथेलियों की भाग्य-रेखाओं से नजर उठाकर, अरुण की ओर देखा, "अरुण तुझे तो फिलॉसफी लेनी चाहिए थी। मेरा ख्याल है, आगे चलकर तू पक्का फिलॉसफर बनेगा।"

"मजाक मत कर, सुजीत!" अरुण ने सख्त आवाज में कहा, "जानता है, इस वक्त मुझे क्या लग रहा है? जैसे मेरी सारी देह में अंधौरियों के बड़े-बड़े चकत्ते उभर आए हैं! सारा बदन खुजला रहा है। रह-रहकर चिनचिनाहट हो रही है। तबीयत होती है, साली इस दुनिया को कसकर एक लात जमा दूँ।"

टिक्लू बदन हिला-हिलाकर हँसता रहा। वह जब भी अरुण को यूँ तिलमिलाते हुए देखता है, उसे इसी तरह हँसी के दौरे पड़ने लगते हैं। उसने हँसते-हँसते कहा, "यार, तू चाहे जितने जोर से किक मारकर अपना गुस्सा उतारे, साला कोई-न-कोई गोलकीपर उसे ठीक लपक लेगा। बेहतर है, तू ही मुट्ठीभर नीम का पत्ता तोड़कर घर ले जा और उसे भूनकर चबाकर निगल जा। तेरी सारी खुजली दूर हो जाएगी।"

इस बार अरुण उसकी बात पर झुंझला नहीं पाया। उसने लॉन पर बिछी हुई घास पर अपनी टाँगें फैला दीं और दोनों हाथ पीछे की तरफ टिकाते हुए, डेक-चेयर की तरह ऐंठ से पसर गया। सामने पड़ी हुई दियासलाई की खाली डिबिया को अपने पैर के अंगूठे से खिसकाकर अपने करीब कर लिया और फिर उसका लेबल उखाड़ते हुए कहा, "हुँह! जब सारी दुनिया का सिस्टम खराब हो गया है, तो एक अकेला मैं ही नीम की पत्ती चबाकर क्या करूँगा?"

टिकलू ने एक बनावटी उसाँस लेकर कहा, "देख रहा हूँ रूनू ने तुझे सचमुच ही बिल्कुल···"

"अरे, धत्तेरे की ! हर वक्त रूनू ! घर ! मकान !···माँ कसम, मेरा···(अरुण की गले की आवाज रुआँसी हो आयी)···मैं सच कह रहा हूँ, टिकलू, मेरा मन करता है, मैं यह घर छोड़कर कहीं और भाग जाऊँ।"

टिकलू हँस पड़ा, "जानता है, मेरी परेशानी बिल्कुल उलटी है ! मुझे घर में घुसने ही नहीं दिया जाता।"

सुजीत उसकी तरह हँस नहीं पाया। उसने अरुण के चेहरे की तरफ देखते हुए कहा, "तू क्या सच्ची साधु-संन्यासी होने जा रहा है ? लेकिन भई, तेरा शनीचर और चन्द्रमा एक घर में नहीं है,—उँहूँ ! तेरा काम इन सबसे नहीं बनेगा।"

अरुण गुस्से से फट पड़ा, "तू नहीं जानता सुजीत, कभी-कभी तो मुझे ऐसा लगता है कि माँ और बापू—एक शनी है और दूसरा राहू। —और दिदिया···? वह तो जल-हथिनी है।···साक्षात जलहस्ती।" यह कहते हुए उसने अपनी दोनों आँखें मूंद लीं और सीने में उमड़ती हुई असहनीय यन्त्रणा को दबाए रखने की कोशिश की। लेकिन दर्द उभर ही आया। पिछली तमाम घटनाएँ, तमाम दृश्य उसकी आँखों के आगे तैर गये। उफ ! उसका जी हुआ, वह अपने को ही दो-चार चाबुक जड़ दे—सड़ाक ! सड़ाक ! सड़ाक ! शायद तब उसे कुछ राहत महसूस हो।

अरुण के मन में एक दबा-ढका अभिमान कसमसाया करता है। उसके घर का कोई भी व्यक्ति उसे अण्डरस्टैंडिंग देने को तैयार नहीं है। जैसे वह इस घर का कोई नहीं है···! दरअसल उसके सीने में दिल जैसी कोई चीज नहीं होनी चाहिए थी। कभी-कभी उसके मन का अभिमान भयंकर क्रोध बनकर उभर आता है।

उसके पास निजी सुख या विलास के नाम पर सिर्फ एक ही चीज़ बच रही है—नींद ! लोग उसे भी मौज से जीने नहीं देते ! हर रोज सुबह-सवेरे फरमाइशों की एक-न-एक फेहरिश्त पेश कर देते हैं।···

धत्तेरे की ! भोर-भोर की इतनी प्यारी सपनीली नींद मिट्टी दी। उसे जगाकर कहा गया, "हृषिकेश बाबू जा रहे हैं, जा उ प्रणाम कर आ।"

अजीब आफत है ! यह प्रणाम-सणाम का पाखंड इस देश आखिर कब मिटेगा ?

वह अपने मन का क्षोभ टिकलू और सुजीत के अलावा और किसके सामने व्यक्त करे ? इसीलिए उस दिन उनके सामने अपने मन की भड़ास निकालते हुए उसने कहा, "हुँह ! हृषिकेश बाबू जा रहे हैं ! जैसे बहुत बड़ी मेहरबानी कर रहे हैं ! अरे, होंगे तुम लोगों के लिए गुरुदेव टाइप के आदमी ! तुम लोग उनका आदर-सत्कार करो, पूड़ी-कचौड़ी खिलाओ ! लेकिन अगर मुझे कच्ची नींद से जगाकर, प्रणाम नजर न करवाते तो क्या महाभारत अशुद्ध हो जाता ?"

टिकलू ने उसकी बातों को निहायत मजाकिया तौर पर लेते हुए हँसकर कहा, "अरे, बउवा ! ये सब बातें तो सुबह ही निपट गयीं। जिस आग पर सुबह ही पानी पड़ गया था, उसे लेकर तू इस वक्त इतना क्यों उबल रहा है ?"

उफ ! अरुण आखिर किस-किस को समझाए ? उसकी बात कहीं कोई समझता भी है ?—अब, आज की ही बात लो···

अरुण मुलायम मिट्टी से मुट्ठी भर घास उखाड़कर गोला बनाता रहा, फिर उसे जोर से एक ओर उछाल दिया और मन ही मन सोचता रहा···दुनिया में कितने सारे लोग हैं ! सबको अपनी-अपनी मर्जी के माँ-बाप मिले हैं···एक उसे ही···

"यार, कसम से मुझे ऐसा कहीं कुछ नहीं मिला जो मेरे मन लायक हो।"

सुजीत हँस दिया, "अबे, ये सब बातें तो उन लोगों को शोभा देती जिनकी किस्मत के चौथे घर में कोई अच्छा-भला ग्रह हो। समझा ? सका चौथा ग्रह ताकतवर होता है, वही···"

अरुण की तिलमिलाहट पर टिकलू गम्भीर हो उठा, "[illegible]

आज तेरा दिमाग खराब हो गया है। अब असली वजह बताएगा या···।"

अरुण ने तीखी नफरत से नाक-भौं सिकोड़ते हुए पूछा, "अब कौन-सी वजह बताऊँ ?"

"क्यों···? अभी उसी दिन तो तू कह रहा था कि हृषिकेश के बच्चे से पिंड छूटा।" यह कहते हुए टिकलू खुद ही हँस पड़ा।

अरुण को भी हँसी आ गयी, "अरे यार, आज सुबह-सुबह फिर दरवाजे पर धक्के पड़े ! कच्ची नींद से जगाकर साथ में थैला पकड़ा दिया गया—सोना माँ काम पर नहीं आयी, तू जरा बाजार चला जा।—सुन टिकलू, मुझे लगता है या तो इस समूची दुनिया में कड़वाहट भर गयी है या फिर मैं ही कड़वा हो गया हूँ। मैं अपनी तरफ से सारी बातें बिल्कुल साफ-साफ और स्पष्ट कहता हूँ, लेकिन,—मेरी बात तेरी भी समझ में नहीं आती।"

"अब क्या हुआ, मेरे बाप ? तूने ही तो कहा था हर इन्सान की अलग-अलग जुबान होती है और कोई किसी की भाषा नहीं समझता।"

"उँहू !—अब तो वह भी गलत लगने लगा है। दरअसल हम सब सही तरीके से, अदब से बात कर ही नहीं सकते।" अरुण की भौंहें सिकुड़ आयीं, मानो वह कोई गहरी बात सोचने की कोशिश कर रहा हो।

"तो तेरे कहने का मतलब यह है कि हम सब सचमुच ही बेजान पेड़-पौधे हो गये हैं ?" टिकलू ने मजाक किया।

अरुण दो-एक पल को चुप हो रहा, फिर एकबारगी बोल उठा, "लेकिन तब भी चैन कहाँ मिलती है ? मैं सब से कहकर बिल्कुल अलग रहूँगा। मुझे कोई तंग नहीं करेगा, यह सब सोचने भर से ही क्या सब कुछ आसान हो जाता है ?···देखना, वहाँ भी अगल-बगल वाले पेड़ मिट्टी के भीतर-ही-भीतर अपनी जड़ें फेंककर तंग करने से बाज नहीं आएँगे। सब-के-सब आपस में टकराएँगे, जूझेंगे और एक-दूसरे की जगह हथियाने की कोशिश करेंगे।"···

आइए, अब हम जरा अरुण के उस मकान तक हो आएं

रास्ते के उस पार, घर के बिल्कुल आमने-सामने नीम का बड़ा-सा पेड़ ! अभी दो दिनों पहले तक समूचे पेड़ में एक भी पत्ता नजर नहीं आता था।

सूखे-सूखे हाथ-पैरों की तरह फैली हुई डालियाँ ठूँठ खड़ी थीं। जाहिर था कि यहाँ कोई पेड़ है, लेकिन यह नीम का ही पेड़ है, यह अन्दाज लगाना मुश्किल था। इन दिनों उसमें ढेर सारी पत्तियाँ निकल आयी हैं। डालों की फुनगियों पर नन्ही-नन्ही लाल कोपलें झूमने लगी हैं। कुछ दिनों पहले उसकी एक डाल तो इतनी बढ़ आयी कि बिजली का तार छूने लगी थी। उसे कटवा दिया गया।

घर के पश्चिमी किनारे वाला कमरा काफी छोटा है। उस कमरे में पड़ा हुआ तख्तपोश और भी छोटा लगता है। तख्तपोश के किनारे एक खिड़की है। हर रोज सुबह-सवेरे नींद खुलने पर अरुण आँखें मूँदे-मूँदे ही नीम की पत्तियों का हिलना-डुलना महसूस किया करता है! नीम की ठण्डी हवा रह-रहकर उसे छू जाती है।

लेकिन दो घड़ी के लिए निश्चिन्त होकर सोना भी कहाँ नसीब होता है ! पिछले साल मकान मालिक ने उन लोगों को बिना बताए ही, नीचे का कमरा किराए पर उठा दिया। अब वह कमरा चूने का गोदाम बन गया है। मकान के सदर दरवाजे के आस-पास हर वक्त गन्दगी फैली रहती है। स्साला ! रास्ते भर में चूना बिखरा रहता है। इसकी वजह से किसी शरीफ आदमी को घर लाना बुलाना

गया है। सबसे बड़ी परेशानी यह है कि बेटा दुकानदार अपना माल खलास करने में जुट जाता है। मुंह-अंधेरे ही के डब्बों की खड़खड़ाहट और ट्रकों की आवाजें आने लगती हैं। भोर की ठण्डी खुशनुमा हवा में, तकियों में मुंह दुबकाए हुए, वह मजे से नींद के झोंके ले सके, यह भी सम्भव नहीं है।

उस दिन भी भोर की हवा में ठण्डी सरसराहट थी। अरुण का मन हुआ, उस हवा को साबुन की झाग की तरह अपने बदन-चेहरे पर लपेट ले। लेकिन इसके लिए हाथ बढ़ाकर टेबल-फैन बन्द करना जरूरी था, लेकिन···।

"ऐसी ठण्डी हवा में भी तुझे पंखा चलाने की क्यों जरूरत पड़ती है, समझ नहीं आता।"

धत्तेरे की ! अरे, पंखे की जरूरत उसे पड़ती है न ? तो पड़ने दो ! इसमें उन लोगों का क्या जाता है ? बिजली का बिल आखिर उन लोगों को तो अदा नहीं करना पड़ता।

खैर, इन लोगों की तो बात-बात पर तोहमतें लगाने की आदत है। जो कुछ होता है, वह अरुण की करतूत है। यह सब सुनते-सुनते वह भी गब्बर ढीठ हो चुका है। अब उनकी बातों का उसके बदन पर कोई असर नहीं होता। लेकिन नींद टूटते ही बाबा आदम के जमाने का जंग लगा हुआ टेबल-फैन जब 'घर्र ! घर्र !' शोर मचाने लगता है, तो कानों को बुरी तरह चुभता है।

अरुण लेटे ही लेटे सोचता रहा, वह हाथ बढ़ाकर पंखा बन्द कर दे या नहीं। लेकिन उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी। इस पंखे का कोई भरोसा नहीं है ! किसी-किसी दिन ऐसा करेन्ट मारता है कि···

हुँह !···माँ भी न कभी-कभी ऐसी बात कह जाती है कि··· उस दिन टिकलू के सामने ही कह बैठी, "देखना कहीं शाक न मार दे।"

शा-क न मार दे। उस दिन अरुण का मन हुआ था, वह मुंह बिचका दे।

उसका मन हो रहा था, वह तकिए को और अच्छी तरह कस ले

और थोड़ी देर इसी तरह मजे से आँखें मूँदे लेटा रहे। लेकिन कोई सोने दे, तब न···!

कोई धम्! धम्! दरवाजा पीट रहा था, "अरुण! ओ अरुण!"

अरुण तन्नाकर उठा और उसने झटके से दरवाजा खोल दिया।

"चल, उठ, सोना माँ नहीं आयी है। बाजार जाना होगा।" कहीं वह मना न कर दे, इस डर से माँ अपनी बात खत्म करते ही फौरन रसोईघर की तरफ चल दी।

लगता है, आज का सारा दिन मिट्टी हो गया। अरुण चिल्लाकर कहने ही जा रहा था, 'मुझसे नहीं होगा' कि अचानक रुक गया। आज माँ से थोड़े से रुपए ऐंठने हैं।

वह आँख मूँदकर अभी थोड़ा और लेटना चाहता था, रूनू की बातें याद करना चाहता था। यह रूनू भी न, अजब ईडियट है। वह उसे कितनी बुरी तरह चाहता है, लेकिन वह लड़की जैसे कुछ समझना ही नहीं चाहती। जो समझेगी गलत समझेगी।

"तुम्हें तो, भई स्मार्ट लड़कियाँ ही पसन्द हैं?"

अरुण सब समझता है। 'स्मार्ट' शब्द में उसका संकेत उर्मि की ओर ही होता है। ये लड़कियाँ भी अजब घनचक्कर होती हैं। शुरू-शुरू में तो उसे प्यार-मुहब्बत जताने की कभी जरूरत ही नहीं पड़ी। उन दिनों रूनू को उस पर पूरा विश्वास था। अब प्यार-मुहब्बत की बातें क्या हर रोज दुहरायी जा सकती हैं? वह अगर ऐसी कोई कोशिश करे भी, तो उसे अपने-आप पर ही हँसी आने लगेगी। ···अच्छा, उसे उर्मि से इतनी ईर्ष्या क्यों है?

अरुण मुँह-हाथ धोने के लिए, नल की तरफ चला गया। नल खोला, तो उसमें पानी ही नहीं था। धत्तेरे की! इन नलों में किसी वक्त पानी नहीं रहता। उसका नल बन्द करने तक का मन नहीं हुआ। जाने दो, जब मशीन चलेगी, तो बेकार पानी बहेगा। बहने दो! मेरे नसीब में तो साला, वही हौदे का पानी है। अभी थोड़ी देर पहले ही किसी ने यहाँ मुँह धोया था। एक मेरे ही वक्त सारा पानी खलास। ऐसे ही जब तेल की शीशी उठाकर नहाने जाओ, तो शीशी में दो बूँद

तलछट पड़ी होगी। हुँह ! सब अपना-अपना हिस्सा पाकर ही खुश ! अरे, तेल खत्म हो गया था तो दुबारा भरकर नहीं रख सकते थे ?

उसने हौदे से पानी निकालकर हाथ-मुंह धोकर बढ़ी हुई दाढ़ी की तरफ नजर डाली ही थी कि माँ ने तौलिया आगे कर दिया। हुँह ! चापलूसी और किसे कहते हैं ?

दिदिया मुस्कराती हुई चाय लेकर हाजिर हुई।

अरुण ने उसके हाथ से चाय की प्याली लेते हुए पूछा, "घूस दे रही है ?" यह सवाल करते हुए वह खुद ही मुस्करा दिया।

दिदिया के होठों तक आयी हुई हँसी जैसे वापस लौट गयी। अरुण की बातें सुनते ही उसकी बैटरी डाउन हो जाती है। उसके होठों की हँसी फौरन तमतमाहट में बदल गयी, "जी, नहीं ! और दिनों तो जैसे कोई और चाय पिलाने आती है न ?"

अरुण ने चाय की एक चुस्की लेकर कहा, "हाँऽ—हाँ, तू ही पिलाती है। लेकिन कम-से-कम आधा घण्टे की चीख-पुकार के बाद।"

"···तो सुबह-सुबह क्यों नहीं उठता, जब पहली बार चाय बनती है ?"

अरुण ने बात आगे नहीं बढ़ायी। सुबह-सुबह जुबान खराब करने से क्या फायदा ? आज तो रूनू से मुलाकात का दिन है।···लेकिन मूड तो साला अभी से ऑफ हो गया।

वह पायजामा बदलकर पैण्ट पहने या नहीं, उसने पल भर को सोचा। उफ ! इस पैंण्ट बनवाने के जुर्म में बापू कितना नाराज हुए थे।

"बेटे से सौदा मँगवाओगे तो सड़ी हुई मछली मयस्सर होगी !"

अरुण अपने को भरसक बापू के सामने पड़ने से बचाता रहता है। लेकिन उस दिन बदकिस्मती से दोनों साथ-साथ खाने बैठे। बापू को हमेशा से ताजी मछली खाने की आदत है। लेकिन अब जमाना बदल चुका है, इसकी उन्हें कोई खबर नहीं है।

उस दिन मछली मुँह से लगाते ही कहा, "मछली सड़ी हुई है।"

बस, माँ अपनी आदत के अनुसार झुंझला उठी, "बेटे से सौदा

मँगवाओगे तो सड़ी हुई मछली ही मयस्सर होगी। बेटा तो पूरा लाट-साहब है ! मछली खरीदते हुए छूकर नहीं देख सकता। हाथ से मछली की दुर्गंध आने लगेगी।"

उफ़ ! यह अपना इतना वक्त बर्बाद करके, बाजार गया। अपने हाथ में थैला लटकाए हुए वापस लौटा। तब भी अगर ये लोग सन्तुष्ट हो पाते ! इसीलिए तो इनके लिए कुछ करने का मन भी नहीं होता।

"····मछली छूकर भी देखते हैं, बाबू साहब ?"

उस वक्त बात हो रही थी मछली की और बापू ने गुस्सा उतारा उसकी नयी पैंट पर। अरुण को सुनाते हुए विद्रूप के लहजे में कहा, "भई, मछली देखने के लिए झुकना पड़ता है न ? वोऽ-ड्रेन-पाइप पहन-कर बिचारा झुकता कैसे ?"

हुँह ! सारा शहर ड्रेन-पाइप पहन रहा है, तो कुछ नहीं। एक उसी के लिए इतना आक्रोश। ये लोग हृषिकेश साहब को प्रणाम करवाना तो कभी नहीं भूलते ? तर्क यह देते हैं कि वह साहब हमारे पूजनीय दादाजी के गुरु वंशज हैं। हुँह !

उसे बाजार जाने में भी कोई एतराज नहीं है, लेकिन इन लोगों के मुँह से कभी, किसी दिन भी यह नहीं फूटा : 'आज का बेनुआ तो बड़ा मुलायम है, रे।' उसे तो जितना कुछ एतराज है, वह उस गन्दे थैले को लेकर। उस गन्दे थैले को हाथ में लेते ही कैसा क्लर्क-क्लर्क-सा अहसास होता है। रास्ते में कोई जान-पहचान का आदमी मिल जाए तो सोचेगा इसके घर में कोई नौकर नहीं है। खासकर लड़कियों के सामने उसे अजीब उलझन होती है। अपरिचित लड़कियाँ हों तो भी हाथ में थैला लटकाकर, उनकी तरफ देखते हुए झिझक होती है। अगर उर्मि उसे इस हुलिया में देख ले, तो बहुत हँसेगी।

बाजार से लौटकर अरुण ने घड़ी पर निगाह डाली। थैला रखकर उसने ऐलान किया, 'अच्छा, मैं चला।' उसने बाजार से लौटे हुए खुदरा पैसे लौटाने की कोई जरूरत नहीं समझी।

आगे बाहर निकल कर पान की दुकान से चार-मीनार का एक पैकेट खरीदा और जलती हुई रस्सी में एक सिगरेट जलायी। उसे

माचिस खर्च करने की भी जरूरत नहीं पड़ी।

सिगरेट के दो-एक कश खींचकर वह 'कोजीनुक' के सामने आकर ठहर गया। उसने अन्दर झाँककर देखा।

टिकलू और सुजीत पहले से ही जमे हुए थे।

"यार, कसम से, आज बाजार जाना पड़ा।"

"अरे वाह, तब तो खासी आमदनी हुई होगी। चल, चाय पिला।" सुजीत ने कहा।

टिकलू हँसा, "अहा, उस बेचारे को क्यों तंग करता है? अपनी सँटुली-छमकछल्लो के कारण उस बिचारे का खर्च ऐसे ही बढ़ गया है।"

खर्च! खर्च! खर्च! इन लोगों के पास ले-देकर सिर्फ यही एक बात रह गयी है। यह ईर्ष्या नहीं तो और क्या है? इन लोगों की नजरों में लड़कियाँ जैसे कुछ होतीं ही नहीं। प्यार-मुहब्बत भी जैसे कोई चीज नहीं होती। अरे, उन लोगों ने गिनती की कितनी लड़कियाँ देखी हैं? सिर्फ पैसा खर्च करने से ही अगर प्यार मिल जाता हो, तो वे लोग भी अपने लिए एकाध जुटा लें न। प्यार में कितनी तकलीफें उठानी पड़ती हैं, यह वे लोग क्या जानें? उन लोगों को तो लगता है प्यार करना जैसे बाएँ हाथ का खेल है। हुंह!

अरे भई, सब लड़कियों की न सही, रूनू की इज्जत तो रख लेते। इन लोगों से यह तो करते नहीं बना, एक-दूसरे को कुहनियाते हुए ऐसे लहजे में बातें करते हैं मानो रूनू कोई बुरी लड़की है और वह अरुण को सच्चा प्यार-व्यार नहीं करती।...ये लोग क्या जानें...रूनू तो दो रुपए चालिस पैसे वाली टिकट में फिल्म भी नहीं देखना चाहती। किसी-किसी दिन जोर-जबरदस्ती चाय के पैसे भी वही चुकाती है। एक ये लोग हैं, उसके नाम पर ढोल पीटते हैं...खर्च!...खर्च!!... सिर्फ खर्च!!! उसे 'सँटुली-छमकछल्लो' पुकारते हैं। उसके लिए यह शब्द सुनकर उसके तन-बदन में जैसे आग लग जाती है।

"क्यों रे, वह लड़की क्या वाकई में बहुत महँगी है?" सुजीत ने भद्दे ढंग से हँसते हुए पूछा।

करेगा । ... वह इन लोगों से रूनू के बारे में कभी कोई बात नहीं

अरुण को अपना अभिमान और तिलमिलाहट छुपाते हुए आखिर हँसना पड़ा । "भई, कभी-कभार कुछ दिया-लिया न करूँ तो तुम्हीं बताओ, अपनी शान कहाँ रहती है ?"

"साले, अब यूँ बेकार बने रहना अच्छा नहीं लगता !" टिकलू ने खुद से एक बेसुरी-सी बात जड़ दी ।

अरुण ने हँसकर ठहाका मारा, "क्यों ? तुम लोगों का खर्चा-वर्चा करवाने वाली तो कोई है नहीं, फिर क्यों फिक्र करता है ?"

सुजीत का चेहरा देखकर अरुण ने समझ लिया, तीर निशाने पर बैठा है । लेकिन उसे अपनी बात पर अफसोस भी हुआ । सुजीत को थप्पड़ मारने का उसका कतई इरादा नहीं था । उसने तो सिर्फ अपने मन की जलन ठंडी करनी चाही थी । देखा न ? हम सब जो कहना चाहते हैं, वह नहीं कह पाते । उसकी जगह कुछ और बोल जाते हैं ।

अरुण ने उसके जख्म पर मलहम लगाने के लिए हँसते हुए कहा, "सच्ची यार, पैसों के लिए बार-बार माँ को तेल लगाना अब मुझे भी अखरने लगा है । जितने दिन रिजल्ट नहीं निकलता, क्या करूँ बता त ? कहीं ट्यूशन कर लूँ ?"

टिकलू हँसने लगा, "इसकी क्या जरूरत है ? रूनू को तो तुम पढ़ा रहे हो, प्यारे !"

कुछ दिनों के लिए सुजीत ने भी ट्यूशन किया था । उसने कहा, ब मैं उस राह नहीं जाने का, बाबा ! साली सारी शाम मिट्टी हो ती है । इतनी हसीन शामों को किसी छात्र के साथ टुकुर-टुकुर व निहारना क्या अच्छा लगता है ?"

"और किस्मत से अगर कोई लड़की जुट जाए तो ?"

सुजीत हँस पड़ा, "बेटा, लड़की के साथ-साथ उसका बाप भी फी ना शुरु कर देगा ।"

दोनों ने जोर का ठहाका लगाया । फिर थोड़ी देर को ।

अचानक अरुण ने पूछा, "क्यों वे, टॉयन-वी की किताव तू मुझे

देता रह गया।

टॉयन-वी की किताव वह खुद खरीदना चाहता था, लेकिन अव तक खरीद नहीं पाया। इसके लिए वापू से पैसा माँगना होगा। लेकिन उनके पास जाने का मन नहीं होता। पहले कम-से-कम रात का खाना दोनों साथ ही खाते थे, लेकिन अव उसे दोस्तों में अड्डा देकर लौटने में काफी देर हो जाती है। माँ उसके कमरे में खाना ढककर सोने चली जाती हैं। अव तो यह घर उसे घर नहीं, होटल लगने लगा है। अकेले-अकेले ठंडी, सूखी रोटियाँ गले के नीचे उतारनी पड़ती हैं। इधर कई दिनों से उसे लौटने में काफी रात हो जाती है। इस वात को लेकर घर में कितना हंगामा मचा है, "तेरे लिए लोग क्या रात-रात भर जागते रहेंगे ?"

अरुण को भी गुस्सा आ गया। कहा, "मेरा खाना ढककर रख दिया करो। जव मैं आऊँगा, सोना-माँ मेरे लिए दरवाजा खोल दिया करेंगी।"

वस, उस दिन से माँ ने हर वात में चुप्पी साध ली। उसके वाद से सचमुच ही खाना उसके कमरे में ढका हुआ मिलता है। उसने खाना खाया या नहीं, यह खोज-खवर भी कोई रखता है, इसमें उसे शक है।

कभी-कभी अरुण के मन में वेहद अभिमान जागता है। अभी उसी दिन की तो वात है···उसने खुद महसूस किया कि अपनी माँ को कित्ता प्यार करता है। उस दिन माँ की वीमारी अचानक वढ़ गयी थी। वह दौड़ता-भागता डॉक्टर वुलाने गया। माँ को दर्द से मछली की तरह तड़फड़ाते देखकर, उसके दिल में भी कुछ-कुछ होने लगा था। उसने मारे शर्म के यह वात किसी को नहीं वतायी, लेकिन सवसे छुपा-कर वह काली-मन्दिर में प्रसाद चढ़ाने गया था। इन सव वातों की क्या कोई कीमत नहीं है ? माँ को क्या कुछ भी समझ नहीं आता ?

फिर वह माँ किस बात की है।

और बापू भी तो वैसे ही हैं। कभी कोई अच्छी बात नहीं करेंगे। उसे देखते ही पढ़ाई-लिखाई, नौकरी, कम्पीटीशन, परीक्षाओं की बात। और कुछ नहीं तो यही बात छेड़ देंगे, "तुझे मालूम है अरुण, पुराने जमाने की बात ही और थी···गांधी जी की पुकार पर जत्थे के जत्थे लोग जेल-यात्रा पर निकल पड़े। देश भर के लोगों ने फैशन वगैरह को तिलांजलि दे दी और······।"

वह उनके मुँह से यह सब बातें बहुत बार सुन चुका है। उन जैसे लोगों की सारी चोरी तो इन बीस सालों में ही पकड़ ली गयी है! कौन जाने इतिहास की ये बड़ी-बड़ी विभूतियाँ भी कोरी कल्पना हैं या···! जत्थे के जत्थे लोग जेल चले गये तो तुम क्यों नहीं जेल गये? उस समय तुम क्या कर रहे थे? और माँ···जैसी डरपोक है। पहले उसे लौटने में जरा-सी देर हो जाती, तो कितना हंगामा मचाती थी। हो सकता है, उसी ने बापू को उस लाइन में जाने से रोक लिया हो।

उसे कहीं से टॉयन-बी की किताब पढ़ने को मिल जाती, तो वह भी इस वक्त दूसरों पर रौब गाँठ सकता था। लेकिन इसके लिए वह हाथ कैसे फैलाये? घर-गृहस्थी के खर्चों को लेकर माँ और बापू में दिन-रात चख-चख मची रहती है। कभी-कभी तो वह खुद महसूस करता है कि ऐसी कलह-अशान्ति किसी घर में नहीं होती होगी।

लेकिन मीलू के मामले में बापू किसी बात में 'ना' नहीं करते। वह जब, जो माँगती है, मजे में हथिया लेती है। इसी लिए तो उसे बीच-बीच में मीलू से उधार माँगना पड़ता है। मीलू जैसी कंजूस लड़की···सौभाग्य से वह सिर्फ कंजूस ही है वरना हो सकता है, उसे कभी एक पाई भी उधार नहीं देती।

"जानती है, मीलू! एक-दो किताब खरीदने का इतना मन है ···लेकिन, बापू का तो हर वक्त अभाव का रोना। अभाव! अभाव!!"

मीलू अभी बहुत बच्ची है। हाल ही में कालेज में दाखिल हुई है। उस दिन उसने भी पुरखिन की तरह समझाना शुरू किया, "हाँ,

अभाव तो है ही। तू ही दो-चार रुपए जमा करके किताव क्यों नहीं खरीद लेता?"

रुपया जमा कर? मीलू से वात करने में उसका सारा उत्साह ही वुझ गया।

उसने थोड़ी देर चुप रह आहिस्ते-आहिस्ते कहना शुरू किया, "जानती है मीलू, तेरी तरह रुपए जमा-जमा कर कुछ खरीदना मुझे विल्कुल अच्छा नहीं लगता। मेरा वहुत कुछ पाने का मन करता है—किताबें! कार! खूवसूरत-सा मकान! रेफ्रिजरेटर···और भी वहुत सारी चीजें। लेकिन मैं चाहता हूँ वह सव मुझे अभी ही मिल जाएँ···विल्कुल अभी! इसी वक्त!!"

मीलू हँस पड़ी, "भइए, तू वड़ा वेसव्र है रे, सव कुछ फौरन कैसे मिल सकता है!" यह कहते हुए मीलू पलभर के लिए चुप हो रही। अचानक किसी अव्यक्त सुख और उमंग से उसकी पलकें मुंद आयीं। कहा, "हाँ रे, भइया,···मेरा भी मन करता है···। मेरी भी तबीयत होती है, सव कुछ—स-व अभी, इसी दम पा लूँ।"

प्रकाश वावू जानते हैं, विना कीमत चुकाए, कोई भी चीज नहीं मिलती। कुछ पाने के लिए हौसला वाँधकर आगे वढ़ना होता है। अपने को पूरी तरह तैयार करना पड़ता है।

लेकिन अरुण को यह वात, वह किसी तरह भी नहीं समझा पाए। अतः उसे लेकर उनकी परेशानियों का अन्त नहीं। इस लड़के को रत्ती भर भी जिम्मेदारी का अहसास नहीं है। उसके मन में अपने माँ-वाप या दुनिया के प्रति रत्ती भर भी माया-ममता नहीं है। वे लोग जिन्दगी भर हड्डियाँ गला कर रुपया जमा करते रहें और वह सिर्फ अड्डेवाजी में मस्त है। दो दिन वाद, वे रिटायर हो रहे हैं, यह सूचना पाकर भी उसके चेहरे पर, चिन्ता की कोई रेखा नहीं उभरी।

उस दिन उन्होंने अरुण से इन्श्योरेन्स का प्रीमियम जमा कर आने को कहा था। लाट साहव लिफ्ट-मैन से लड़-झगड़कर, वापस लौट

आए। सफाई यह दी गयी कि पन्द्रह मिनट तक लाइन में खड़े-खड़े इन्तजार करने के बाद, जब लिफ्ट आयी तो लिफ्ट-मैन ने उसके आगे खड़े तमाम लोगों को तो ले लिया, लेकिन जब उसकी बारी आयी तो खट् से कह दिया, 'अब जगह नहीं है।'—क्यों, वह क्या फालतू था ?

मैं पूछता हूँ, "तुझे क्या कभी अक्ल नहीं आएगी ? अरे भई, लिफ्ट-मैन तो नियम के अनुसार ही आदमी लेगा न ? आखिर इस झगड़े से क्या फायदा हुआ ? अब रुपए मनिआर्डर से भेजने होंगे। उसकी रसीद कब लौटेगी, यह भी निश्चित नहीं।" प्रकाश बाबू गुस्से से झल्ला उठे।

अरुण भी व्यंग्य बाण छोड़ने से बाज नहीं आया, "ओह—ओ ! क्या बात कही ? नियम के अनुसार आदमी लेगा। मुझे भी दिखता है कि हर जगह कौन कितना नियम निभाता है।"

प्रकाश बाबू आज तक सचमुच यह नहीं समझ पाए कि आजकल के ये लड़के आखिर चाहते क्या हैं। इन्हें क्या इस बात पर एतराज है कि कोई नियम-कानून मानकर नहीं चलता ? या इन्हें नियम-कानून शब्द से ही चिढ़ है ?

लेकिन बेटे पर अभिमान करने से क्या फायदा ? बाँस से घेर देने भर से ही क्या पौधा सीधे-सीधे बढ़ने लगता है ?

उन्होंने भी तो यही चाहा था कि वे अपनी गृहस्थी को अपनी इच्छाओं की डोर में बाँधकर, अपनी मर्जी मुताबिक सजा लें। लेकिन ऐसा कहाँ कर पाए ? उनकी आँखों के सामने ही घर का हर प्राणी उनकी पकड़ से छूटता जा रहा है।

चूल्हे में जाएँ सब। वे अपना कर्तव्य निभाते जाएँगे। ये घर वाले उन्हें कभी नहीं समझेंगे। छोटी बेटी मीलू कभी-कभार उनके पास आ भी जाती है, लेकिन मौका पाकर उसने भी एक दिन व्यंग्य कस दिया था, "इस बुढ़ौती में भी नौकरी ढूँढ़ रहे हो बापू ? तुम्हारी भी अजीब-अजीब सनक है।"

सनक ? हो सकती है उसकी बात सच हो ! खैर, अब तो अरुण की परीक्षा हो गयी। कुछ ही दिनों में रिजल्ट भी निकल जाएगा।

अरुण पास हो जाएगा, इतना विश्वास तो खैर है ही। दरअसल, यूं वह लड़का बुरा नहीं है।

प्रकाश बाबू को आजकल के जमाने के लड़के-लड़कियों के मिजाज समझने में यही तो परेशानी होती है। उनके जमाने में भले लड़के भले होते थे और बुरे लड़के बुरे।...लेकिन आजकल तो भले-बुरे...सब लड़के एक ही रंग में ढले हुए हैं। उनका सर्टिफिकेट देखे बिना, यह पहचानना मुश्किल है कि कौन भला है और कौन बुरा।

उस दिन उनके यहां अरुण की छोटी मौसी आयी थी। उसने भी प्रकाश बाबू के ख्यालों का मजाक उड़ाते हुए कहा, "जीजा जी, आपके ख्यालात सचमुच बड़े दकियानूस हैं। आप लोगों की निगाह में, वही लड़का शरीफ है, जिसकी झउआ भर दाढ़ी हो, बातें करते हुए हकलाता हो और परीक्षाओं में ढेर-ढेर नम्बर लाता हो...। मुझे तो ऐसे लड़के के ख्याल तक से जहर चढ़ता है।"

प्रकाश बाबू भी उसकी बातों पर हंस पड़े। लेकिन उनके मन में भी अरुण को इन्सान बनाने की शायद इसी तरह की कोई गोपन आकांक्षा पल रही थी। अलबत्ता, यह बात वे जरूर महसूस करने लगे हैं कि उनकी किस्मत अच्छी थी, जो उनका अरुण ऐसा नहीं बना वरना आज की दुनिया में नौकरी पाना भी मुश्किल हो जाता।

इन दिनों उनके मन में एकमात्र दुश्चिन्ता, अरुण की नौकरी को लेकर ही है। उसकी पढ़ाई भी अब समाप्त हो चुकी। अभी से नौकरी की कोशिश करने में क्या हर्ज है? इस बारे में उन्होंने अरुण से भी बात करने की कोशिश की। इसीलिए वे हर रोज सुबह-सुबह अखबार लेकर बैठ जाते हैं। नौकरी के कॉलम में छपे हुए हर विज्ञापन को बड़े गौर से पढ़ते हैं और किसी-किसी विज्ञापन के चारों ओर पेन से निशान लगाते जाते हैं।

उस दिन, विज्ञापनों पर नजर गड़ाए हुए उन्होंने अरुण को आवाज दी, "अरुण !...अरुण !"

कनकलता भंडार घर से एक मुट्ठी तेजपत्ता और कटोरी में तेल निकालकर रसोई की तरफ जा रही थीं। उनकी आवाज सुनकर ठिठक

गयी। पूछा, "किसे बुला रहे हो? वो बाबू साहब क्या इस वक्त घर पर हैं? बाजार से सौदा लाकर फेंका और चल दिए अपने अड्डे पर।"

वहीं बेटी बुलू बगल वाले कमरे में झाड़-पोंछ कर रही थी। लम्बे-से फूल-झाड़ू से जाले साफ करते हुए वह ऐसे ही परेशान थी, ऊपर से गर्दन और पीठ पसीने से नहा गयी थी। माँ की बात सुनकर वह मन-ही-मन बुदबुदा उठी, "हुँह, वह बिचारा अड्डे पर गया है या कहीं और तुम जैसे सब जानती हो न।"

पत्नी सूचना देकर रसोई की तरफ चली गयी, प्रकाश बाबू ने बुलू को आवाज दी, "बुलू, मैंने एक विज्ञापन पर टिक लगा दिया है। अरुण आए तो उससे कहना, यहाँ दरखास्त भेज दे।"

इतनी देर में बुलू कमर में फेंटा कसे हुए अपने काम में लगी हुई थी। बापू की आवाज सुनकर उसने कमर में खोंसा हुआ आँचल खोल दिया और पसीने से लथपथ कन्धा, चेहरा पोंछते हुए कहा, "बापू तुम तो बेकार ही मेहनत करते हो। वह कहीं दरखास्त भेजता भी है? कहता है, रिजल्ट निकले बगैर, एप्लीकेशन देने से क्या फायदा।"

प्रकाश बाबू हँस दिए, "अरे, वह भेजता है। भेजता है! यह सब तो वह तुम लोगों को चिढ़ाने के लिए बकता है। भला ऐसा कभी हो सकता है कि उसे नौकरी की चिन्ता न हो या नौकरी के लिए कोशिश न करता हो?"

दरअसल, वे मुँह से चाहे जो बोलते हों, उनकी आँखों में अरुण का पहनना-ओढ़ना, चलना-फिरना, चाहे जितना बेतुका लगता हो, लेकिन अपने बेटे पर उन्हें अटूट विश्वास है। अरुण लड़का बुरा नहीं है। आज तक उसने कभी कोई गलत काम नहीं किया।

झगड़ा! मार-पीट! पुलिस केस—आजकल के लड़कों को लेकर हर माँ-बाप को कम झमेले हैं? आफिस में वह रोज ही ऐसे किस्से सुनते हैं। लेकिन उनके पास अरुण के खिलाफ कभी कोई शिकायत नहीं आयी। कनकलता को भी उससे सिर्फ एक ही शिकायत है—दिन-रात अड्डेबाजी करता है, घर के कामों में मन नहीं लगाता।

"अरे, उसकी नौकरी लग जाए, तो एक अच्छी-सी लड़की देखकर उसका ब्याह कर दूंगा, फिर देखूंगा।" यह कहते हुए वे हँस पड़े, "...अरे भई...अपने जमाने में थोड़ा-बहुत अड्डा तो हम लोग भी किया करते थे, समझी ? लेकिन जब घर-गिरस्ती की फिक्र हुई तो..."

बेटे के ब्याह की बात सुनकर कनकलता के होंठों पर भी हँसी खिल उठी, "सुनो, बड़के भइया बता रहे थे...गगन बाबू की मँझली साली की लड़की इस बार बी० ए० का इम्तहान दे रही है। मैं कह रही थी लड़की देख आने में क्या हर्ज है ?"

"तुम क्या पागल हुई हो ?...अभी ये सब फितूर अपने दिमाग में लाना भी मत।" उन्होंने अपनी पत्नी को घुड़क दिया। लेकिन यह सब सोचते हुए, उन्हें खुद बहुत अच्छा लगा। अरुण के लिए वह खूब पढ़ी-लिखी, सुन्दर-सी दुल्हन लाएँगे। बस, उसकी एक अच्छी-सी नौकरी हो जाए।

उन्होंने अखबार मोड़कर अरुण की मेज पर रख दिया और उठ खड़े हुए। चमड़े के केस से उस्तरा निकालकर अपने दाहिने हाथ में ले लिया और बाँयी हथेली पर स्ट्रैप रखकर उसे आहिस्ते से रगड़ने लगे। शान चढ़ाते हुए उन्होंने एक बार उस्तरे के उस हिस्से पर नजर डाली जहाँ, 'शेफील्ड' लिखा हुआ था, लेकिन जिसके अक्षर अब लगभग मिट चले थे।

"...इतना परेशान होने से कोई फायदा नहीं प्रकाश। आज के जमाने में सब-कुछ बदल चुका है!" उनका बड़ा साला अनन्त रसिक आदमी है। उसने एक दिन हँसी-हँसी में कहा था, "भई तुम लोगों की जिन्दगी इस 'शेफील्ड' मार्का उस्तरे की तरह थी, जिसे तुम लोग लगातार बाइस सालों से घिस-घिसकर शान चढ़ाते रहे। और ये लोग ठहरे, सेफ्टी-रेजर...एक बार शेव करो और ब्लेड निकालकर फेंक दो।"

अनन्त ने शायद ठीक ही कहा था। इन लोगों को सचमुच किसी चीज की परवाह नहीं, माया-ममता नहीं।...अरुण में भी बस, यही ऐब है। अगर उसमें इतनी-सी अक्ल आ जाए, तो उन्हें कोई अफसोस नहीं रह जाएगा। काश, उसके मन में अपने माँ-बाप के लिए थोड़ा-सा

दर्द···थोड़ा-सा प्यार होता।

यही भरण कभी इतने बड़े क्षोभ का कारण बन जाएगा, कनकलता ने कभी नहीं सोचा था। उन्होंने जो कुछ सुना, सुनकर वे स्तम्भित रह गयीं। उन बातों पर यकीन करने का मन नहीं हुआ। लेकिन यकीन करने के अलावा और कोई उपाय भी नहीं था।

उस दिन गली की नुक्कड़ पर मीलू अपनी एक हमउम्र सहेली से गप्पें हाँक रही थी। यह उसका रोज का कार्यक्रम था। कनकलता कभी-कभार उस पर एक नजर डाल लेती थीं। अभी थोड़ी देर पहले, वे बरामदे से झाँककर देख गयीं, मीलू अपने दरवाजे पर खड़ी-खड़ी हँसते हुए बातें करने में मस्त थी।

थोड़ी देर बाद मीलू को आँधी-तूफान की तरह अन्दर आकर, 'माँ! माँ!' पुकारते हुए सुना, तो वे हड़बड़ाकर बरामदे में निकल आयीं, "क्यों, क्या हुआ, रे?"

मीलू हँसी के मारे उमड़ी पड़ रही थी, "माँ, छोटी मौसी आ रही हैं। मैंने उन्हें अभी-अभी इधर देखा है।"

"छोटी मौसी? आज अचानक···?"

कभी-कभी छुट्टी के दिन कानन उनके यहाँ चली आती है। लेकिन अभी तो उसी दिन वह आयी थी। इतनी जल्दी अचानक फिर आ रही है? वैसे छोटी बहन के आने की सूचना पाकर वे मन-ही-मन खुश हुईं, लेकिन उसे सुनाते हुए, उन्होंने मीलू को घुड़क दिया।

मीलू ने छोटी मौसी का हाथ पकड़कर नाचते हुए कहा, "छोटी मौसी, आज तुम्हें यहीं रहना होगा। आज मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी।"

कनकलता भी हँस दीं, "छोटी मौसी को देखकर, सबके सब खुशी के मारे बौरा जाते हैं।"

मीलू अब कॉलेज जाने लगी है। अब वह राह चलते हुए अपनी साड़ी और शरीर को लेकर बेहद सजग रहती है। लेकिन घर में बिल्कुल बच्ची बनी रहती है। उसने मुँह बिचकाकर, अजीब-सा चेहरा बनाते हुए कहा, "छोटी मौसी तुम्हारी तरह हर वक्त मुँह कुप्पा किए नहीं बैठी रहती।"

दी ! लम्बी ! स्लिम ! घनी-घनी भौंहें...। जुड़ी हुई भौंहें मुझे बहुत अच्छी लगती हैं, मँझली दी।"

कनकलता नाराज हो उठी, "बेकार की बकवास छोड़कर असली बात बताएगी ?"

कानन फिर हँस दी, "अरे, नाराज क्यों हो रही हो ? तेरी जगह अगर मैं होती तो खुद चलकर जाती और उसे अपने बेटे की बहू बनाकर ले आती। सच कहती हूँ, बिल्कुल फव्वारे जैसी है, दीदी जैसी उजली-गोरी ! वैसी ही खुशमिजाज, चलने-फिरने का ढंग भी लाजवाब।"

इतनी देर बाद प्रकाश बाबू के माथे पर बल सिकुड़ आए, "मैं तो देख रहा हूँ, उसकी बातें करते हुए तुम ही फव्वारा बन गयी हो। तुमने जो कुछ बताया उसमें इतना हँसने लायक कोई बात नहीं है।" उन्होंने बेहद शान्त भाव से रुक-रुककर अपनी बात पूरी की।

कानन ने फिर होंठ दबाकर कहा, "अहा रे, आपकी नजर में तो मैं ही फव्वारा हूँ। लेकिन, मैं आपकी नजर से नहीं कह रही हूँ। वह लड़की सचमुच ही शरीफ है। उसमें कहीं जरा-सी भी शिथिलता नहीं। हाथ-पैर हिलाते हुए ऐसी जिन्दा तस्वीर...।"

कनकलता दुश्चिन्ता और नाराजगी के मारे चुप हो गयी थी। इतनी देर बाद वे बोली, "देख कानन, हर वक्त मजाक अच्छा नहीं लगता।"

अन्त में कानन ने शुरू से लेकर आखीर तक सारा किस्सा सुना डाला। कहा, "हम लोगों को क्या मालूम था कि अपना अरुण भी वहीं आएगा। हमने तो दो दिनों पहले से ही टिकटें खरीद ली थीं। फिल्म देखकर हम लोग हॉल से बाहर निकल रहे थे। अचानक इन्होंने मुझे कहा—देखो, देखो ! वह अपना अरुण है न ? एक बार हमारी निगाहें भी मिल गयीं..."कानन जोर से हँस पड़ी। कहा, "उस वक्त वे बेचारे भी भागने की राह खोज रहे थे।"

"उसके साथ कोई लड़की भी थी ? कितनी उम्र होगी ? तू उसे पहचानती है ?" कनकलता ने एक साथ ढेर सारे प्रश्न कर डाले। जाहिर था कि उन्हें किसी सवाल के उत्तर की अपेक्षा नहीं थी। दर-

यह वात सच भी थी। कनकलता वहुत कम हँसती हैं। उन्हें हँसने का वक्त ही कहाँ मिलता है ?

उन्होंने वनावटी आक्रोश दिखाते हुए कहा, "हाँ-हाँ देख रही हूँ, छोटी मौसी ने ही तुम लोगों का दिमाग खराव कर दिया है।" और फिर वे खुद ही हँस पड़ीं।

कानन ने वेहद रहस्यमय ढंग से होंठ दवाकर आँखों में हंसी भरकर कहा, "अव कौन किसका दिमाग खराव करेगा, मँझली दी? आजकल इन लोगों ने अपना दिमाग खुद ही खराव कर रखा है।"

कनकलता को उसकी वातों का लहजा और हँसी वेहद अजीव लगी। उनके माथे पर कई सलवटें उभर आयीं। लेकिन मीलू के सामने कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हुई। कानन ने क्या वुलू या मीलू के वारे में कुछ इशारा किया था ? उसने उन लोगों के वारे में तो कहीं कोई अफवाह नहीं सुनी ? लेकिन वे तो मीलू को अपने भरसक कड़ी निगरानी में रखती हैं। उन्हें अपने वेटे-वेटियों की तरफ से कोई आशंका भी नहीं है। उन्हें आशंका इस वात की है कि उनके वारे में कहीं कोई ऐसी-वैसी वातें न कर वैठे।

मीलू प्लेयर पर रिकॉर्ड लगाने को हटी ही थी कि उन्होंने दवी आवाज में कानन से पूछा, "उस वक्त दिमाग खराव करने की क्या वात कह रही थी तू ?"

"वताऊँगी। वताऊँगी।" कानन हँस दी।

प्रकाश वावू वरामदे में आराम कुर्सी पर फैले हुए चाय पी रहे थे। कानन उनके सामने आ खड़ी हुई। एक वेंत की कुर्सी खींचकर उनके पास ही वैठ गयी और एक दौर हँसकर कहा, "कुछ भी कहो···अपने अरुण को वह लड़की पसन्द है, जीजा जी।"

प्रकाश वावू ने उसकी तरफ प्रश्नभरी निगाहों से देखा।

कनकलता से अव धीरज नहीं रखा जा रहा था। पूछा, "तू अरुण के वारे में कह रही है ?"

"और किसके वारे में कहूँगी ?" कानन की हँसी रुकने पर ही नहीं आ रही थी, "लेकिन···हर वक्त निरखते रहने लायक चेहरा है, मँझली

कार्ड लेने के लिए घर के किसी आदमी को भेजने को कहा है।"

"तुम लोगों को तो रोज ही कोई-न-कोई काम निकल आता है। मुझसे नहीं होगा।"

माँ ने गम्भीर स्वर में कहा, "नहीं लायेगा तो घर के सब लोग उपवास करना। इस हफ्ते राशन नहीं उठेगा।"

हुँह: ! उपवास करेंगे ! जैसे वह उपवास करने से डरता है। इन लोगों का काम कभी खत्म नहीं होता। आज प्रीमियम दे आओ, आज राशन कार्ड ले आओ और कुछ नहीं तो स्टोव मरम्मत करवा लो, मिस्त्री को खबर दे आ···मानो वह बेकार बैठा है, अतः इन सब फालतू कामों के लिए एकमात्र वही बेगार आदमी है। अपने लिए वह किसी तरह एक नौकरी जुटा पाए, तो चैन मिले। वह भी बाबू की तरह हर रोज नौ बजे ही घर से बाहर निकल जाया करेगा।

उसने राशन कार्ड वापस लेकर अपनी घड़ी की तरफ देखा। च्च्-च्च्-च्च् साढ़े बारह बज गये और एक बजे के अन्दर उसे पहुँचना है।

अगर वह हाथ का सामान लिए-दिए ही बस पर बैठ जाता तो शायद देर न होती। लेकिन हाथ में छ:-छ: राशन कार्ड पकड़े हुए, रुनू से मुलाकात नहीं की जा सकती।

घर में राशन कार्ड फेंककर अरुण ने दौड़ते-हाँफते बस पकड़ी और अपनी घड़ी की तरफ दुबारा नजर डाली। उसे काफी देर हो गयी थी। उसके सारे शरीर में झुरझुरी फैल गयी।

"माँ कसम, कभी-कभी मुझे क्या लगता है, जानता है टिकलू ? लगता है, मेरी देह में खून की जगह नीम की पत्तियों का रस भर गया है। मेरी रग-रग में, साली कड़ुवाहट भर गयी है।"

टिकलू ने वितृष्णा से होंठ बिचकाकर मुँह बनाते हुए कहा, "यार सचमुच जहर चढ़ जाता है। ऐसा लगता है कि यह जो टेरीलिन-फेरीलिन की पैंट-शर्ट पहने हूँ, वह भी बिच्छू की डंक से बुना गया है।"

टिकलू ने सच ही कहा था ।

अरुण जब बस से उतरा तो एक बजकर पन्द्रह मिनट हो रहे थे। बस-स्टॉप पर रूनू की एक बजे तक रहने की बात थी। वह क्या आकर लौट गयी ? या अभी तक आयी ही नहीं ?

सिर पर भांय-भांय करती हुई तीखी धूप ! बस-स्टॉप के पास एक जगह चम्मच भर छांह जरूर है, लेकिन वहां सिर्फ आदमी ही आदमी। हो सकता है, वह धूप में अधिक देर तक खड़ी न रह सकी हो, अतः किसी छाया में खड़ी हो।

वह धूप में काफी देर तक रूनू को इधर-उधर खोजता रहा। दो-चार दुकानों में भी झांककर देखा, शायद टॉफी या वालों का कांटा खरीदने के बहाने वह किसी छांव में खड़ी हो।

न्ना, काफी देर इन्तजार करने के बाद शायद वह चली गयी थी। कमाल है ! जैसे रूनू का ही वक्त बेहद कीमती है, किसी-किसी दिन उसे जो आध-आध घण्टे इन्तजार करना पड़ता है, तब ?

रूनू आते ही मासूमियत से कहती है, "इस्स्, मैं तुम्हें बहुत तकलीफ देती हूं, ना ? अच्छा तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं···?"

बस, सारा गुस्सा पानी हो जाता है। उस समय रूनू अचानक बहुत अच्छी लगने लगती है।

अरुण ने अन्दाज लगाया, रूनू से पन्द्रह मिनट इन्तजार करते नहीं बना। वह आकर लौट गयी होगी। लेकिन उसका भी क्या कसूर ? लड़की जात के लिए कहीं पांच मिनट खड़े होकर इन्तजार करना सम्भव है ? हर जगह लोग मक्खियों की तरह भिनभिनाने लगते हैं। लड़कियों से सटकर खड़े होने की कोशिश करेंगे। चोरी-छिपे घूरेंगे। अजीब न्यूसेन्स हैं। सारा देश ही रसातल में पहुंच गया है। दुनिया का कोई भी व्यक्ति नॉर्मल नहीं है। दरअसल आदमी कहीं से भी आदमी नहीं रह गया।

अरुण काफी देर तक रूनू का इन्तजार करता रहा। लेकिन जब वह नहीं आई तो वह मन-ही-मन खीज उठा। धत्तेरे की। चलो, कॉफी-हाउस चलते हैं शायद वहीं कोई मिल जाए।

और कोई न सही उर्मि तो होगी। सामने बल्ब की मद्धिम पड़ती हुई पीली रोशनी, अचानक भप्प् से जल उठी। इतनी देर से जमी हुई चीज एक पल में हवा हो गयी।

उर्मि के टेबल पर वही मुच्छड़ लड़का बैठा था, जो हर वक्त मोटी-मोटी किताबें उठाए घूमता रहता है। साला, बौद्धिक बनता है। अरुण को उसकी शक्ल देखते ही हँसी आने लगती है।

उसे आते देखकर उर्मि ने भी जैसे राहत की साँस ली। उसे देखते ही वह स्प्रिंग की तरह उठकर खड़ी हो गयी। अपना बुर्राक सफेद पर्स उठाते हुए उस लड़के से जाने क्या कहा और हँसते-हँसते अरुण की तरफ बढ़ आयी। उसे लेकर दूसरी टेबल पर बैठते हुए कहा, "सच्ची, तूने मुझे बचा लिया।"

"चल ! चल ! उसके साथ तो मजे में रमी हुई थी।" अरुण हँस पड़ा। "तुझे क्या वह बंगला पढ़ा रहा था ?"

उर्मि भी हँस पड़ी, "उफ ! क्या जलन है ?" फिर उसने हाथ हिलाकर निर्णय करते हुए कहा, "डरो नहीं ! अकेले-अकेले बैठे रहने से प्रेम-प्रेम और दुःख-सुख की बातें याद आने लगती हैं, अतः सोचा, जितनी देर तू नहीं आ रहा है···।"

"अच्छा, तुझे भी किसी बात का दुःख है ?"

"हाँ, है···लेकिन यार, बनावटी दुःख !" उर्मि हँसने लगी।

उसकी बात पर अरुण भी हँस पड़ा। उसके दोस्त ठीक ही कहते हैं। उर्मि की बातों में सच्ची कोई जादू है। उर्मि अपने सफेद बैग पर अंकित सुनहरे मोनोग्राम पर उँगलियाँ फेर रही थी। अरुण चुपचाप उसे देखता रहा। अद्भुत ! उसकी उँगलियाँ बेहद खूबसूरत हैं। इतने दिनों तक उसकी नजर ही नहीं पड़ी। कई लोग होते हैं न, जो अचानक ही इतने करीब आ जाते हैं कि उनको ओर अच्छी तरह देखने का मौका ही नहीं मिलता। उर्मि भी ऐसी ही है।

उस मूँछ वाले लड़के ने और एक कप कॉफी लाने का ऑर्डर दिया और सिगरेट का धुआँ उगलते हुए, इन की ओर नजरें गड़ा दीं। उर्मि से जान-पहचान के लिए, वह कई दिनों से छटपटा रहा था। सिगरेट

अभी/

सुलगाने के बहाने वह अरुण या टिकलू से कई बार माचिस भी माँग चुका। उसका भी आखिर क्या दोष ? उसने अपनी आँखों से देखा, कॉलेज में कदम रखते ही लड़कों की निगाह सबसे पहले उर्मि पर ही पड़ती है। उससे जान-पहचान का मौका पाकर सब धन्य-धन्य हो उठते हैं। अरुण खुशकिस्मत है। उस दिन लड़कों का एक गिरोह सीढ़ी से नीचे उतर रहा था। अरुण ने कतराकर निकल जाने की कोशिश की। उस वक्त उर्मि ने आगे बढ़कर उसे रोक कर हँसते हुए कुछ कहा था। क्या कहा था···अब याद नहीं है।

"वह बेटा तुझे इतना क्या समझा रहा था ?" अरुण ने पूछा।

"बोदलियर ! कामू ! काफ्का !" कहते हुए उर्मि हँस पड़ी।

उर्मि की लम्बी छरहरी देह ! हाथ हिला-हिलाकर बातें करने का ढंग ! खुनक हँसी···! कुल मिलाकर मानो वह अशोक का पेड़ हो··· जिसकी डालियाँ पछुआ हवा के झकोरे ले रही हों। धत् ! उसने अशोक का पेड़ कभी देखा ही नहीं है।

"गेंदे के फूल की तरह, तेरी यह खिली हुई सूरत···इसमें लड़कों का क्या दोष !" अरुण ने एक दिन मजाक किया था।

"अरे, जा—जा ! तू मेरी तरह की एक भी फीगर कहीं दिखा दे ! थर्टीफोर—ट्वेन्टी टू—थर्टी फोर !" वह यूँ हँस पड़ी मानो अपना ही मजाक उड़ा रही हो।

टिकलू ने गम्भीर आवाज में पूछा, "एक बात बताएगी, उस दर्जी के फीते में कहीं कोई बिजली का तार तो नहीं लिपटा था ?"

उर्मि के होठों पर हँसी चमक उठी।

सच्ची, जितनी देर उर्मि उसके पास रहती है, उसे कुछ भी याद नहीं रहता। विरक्ति, दुःख, अभाव···कुछ भी याद नहीं आता।

अरुण को लगता है समूचा माहौल उसे औघड़ की तरह दिन-रात अविराम अपने चंगुल में कसता जा रहा है, और उर्मि···मानो तेज छुरी हो, जो उसके बन्धन काटने को बार-बार आगे बढ़ आती है।

उर्मि से मुलाकात का वह पहला ही दिन था, या उसके अगले दिन

···उसे ठीक याद नहीं···। उर्मि के आगे उसने अपने को बेहद छोटा महसूस किया था। उसे बेहद घमंडी भी लगी थी वह।

"नो! नो!! यह आप-वाप नहीं चलेगा। सिर्फ तू! तू!! तू!!!" उर्मि अरुण के अप्रतिभ चेहरे की ओर देखते हुए हँस दी।

'तू?' अरुण ने आश्चर्य से मुँह बाए हुए, उसकी तरफ हैरत से देखा। उर्मि के ख्याल से उसके सीने में थोड़ी-बहुत गुदगुदी भी शुरू हो गयी। उसने खुद ही महसूस किया, उर्मि की ओर देखते हुए उसकी आँखें बेहद पाजी हो उठती हैं।

टिवलू ने आहें भरते हुए कहा, "उर्मिला! उर्मि!! यार, माँ कसम, आज तो मैं उसे देखकर 'शेक द बॉटल' हो गया। वाकई बोतल की तरह हिल गया।"

'तू' कहने के उर्मि ने जो तर्क दिये, उन्हें सुनकर उसे और भी बुरा लगा।

उर्मि ने हँसते हुए कहा, "जानता है यह 'आप' बना रहेगा, तो 'तुम' कहने का मन करेगा। ना बाबा, मैं इन सब झमेलों में नहीं पड़ना चाहती।" उसकी हँसी तेज हो उठी, "तुम कहने वाला एक पहले से ही जुट गया है, भई!···माइनिंग इन्जीनियर।"

उसके बाद उनके आपसी सम्बन्ध सचमुच कितने सहज हो उठे—किसे···सहज!

दो कप कॉफी लाने का ऑर्डर देकर, उर्मि ने अपना दूधिया पर्स खोला। एक बार जिप खोलकर, फिर बन्द कर दिया। रुपया-पैसा है या नहीं, शायद यही देखने को पर्स खोला था।

अरुण ने कहा, "पैसे हैं। मेरे पास भी हैं।" फिर थोड़ा ठहरकर कहा, "और सुना, तेरे प्रेमी महोदय की क्या खबर है।"

उर्मि फिर हँस पड़ी, "अरे, वह आया होता, तो क्या मैं यहाँ होती? भई, वह माइनिंग इन्जीनियर ठहरा। किसी गहरी खोज में डूबा होगा। मुझ जैसी हल्की-फुल्की लड़की उसे याद भी नहीं आती होगी।

उर्मि जब बेहद निश्छल भाव से अपने प्यार के किस्से सुनाती है, या अपने इन्जीनियर के बारे में छोटी-मोटी बातें बताती है, तो उसका

चेहरा चमकने लगता है। अरुण उस चमक के आगे अपने को बेहद नगण्य, तुच्छ महसूस करता है। लेकिन उसकी बातें सुनते हुए अच्छा लगा है। उसे यह पूछते हुए भी अच्छा लगा है कि उसका माइनिंग इन्जीनियर कलकत्ता आया या नहीं, खत में क्या-क्या लिखा है।

उर्मि उसके लिए एक अजूबा है। शायद एक होव्वा ! परीक्षा के बाद उर्मि ने ही एक दिन कहा था, "सुन, चिट्ठी लिखना।"

अरुण मन-ही-मन डर गया। खत लिखने पर जवाब भी आएगा। घर में उसके नाम किसी लड़की का खत पहुँचे तो उसकी खैर नहीं। यूँ भी वह मन-ही-मन इस बात से हमेशा डरा रहता है, कि किसी दिन उर्मि अचानक उसके घर न आ धमके।

मान लो, बाहर की दुनिया कभी उर्मि की तरह सहज-सरल हो जाए, लेकिन···न्ना, उसे उर्मि के खत या उपस्थिति का ही भय नहीं है। उर्मि जैसा खूबसूरत फूल है, कहीं ऐसे दुर्गन्धमय, गन्दे-कूड़े मकान में···? वहाँ वह बिल्कुल अनफिट और बेगानी लगेगी।

"तू इतना सोच क्या रहा है ? कहीं रूनू से एप्वायन्टमेण्ट तो नहीं था ?" उर्मि ने हँसकर पूछा।

कोई और दिन होता तो शायद अरुण भी हँस देता। लेकिन आज रूनू का ख्याल आते ही, उसने मन-ही-मन कहीं कुछ खाली-खाली-सा महसूस किया। अच्छा, रूनू आज क्यों नहीं आयी ? उस दिन उसे उर्मि के साथ घूमते हुए तो नहीं देख लिया ? लेकिन उस दिन तो उसके साथ टिकलू और सुजीत भी थे। स्टुपिड !···उर्मि से ईर्ष्या ! अगर कहीं उसके यार-दोस्त यह जान जाएँ कि रूनू उर्मि से जलती है तो ऐसा मजाक उड़ाना शुरू करेंगे कि···और उर्मि तो हँसी के मारे हाथ-पाँव पटककर कुर्सी ही तोड़ डालेगी।

"बताया नहीं। आज तुम दोनों का कोई प्रोग्राम तो नहीं था ?" उर्मि होंठ दबाकर मुस्करायी।

"अरे, धत्त ! प्यार-मुहब्बत जैसी चीज में क्या नहीं !! यह प्यार-मुहब्बत की बातें वैसी ही हैं, जैसे भयंकर गर्मी के दिनों में कोई एयर-कंडीशंड कमरे में जा बैठे।"

उर्मि हँस पड़ी, "वण्डरफुल !" उसने झट से अपना पर्स खोलकर पाँच पैसे का एक सिक्का निकाला और अरुण के हाथ पर रखते हुए कहा, "ले, यह बात 'ऑन रिकार्ड' के लिए भेज दे।"

अरुण अपने मन के भीतर दबा हुआ आक्रोश और असन्तोष व्यक्त करते हुए, इतनी सहजता से, इतनी बढ़िया चटखदार बात कह गया, यह सोचकर वह खुश हो उठा। झूठी बातों का रंग कैसा चटख होता है ! सच्ची बातें तो बेहद सहज होती हैं—बे—हद सहज। लेकिन फिर भी हम कह नहीं पाते। रूनू से मुलाकात न हो पाने की वजह से, वह उदास हो रहा है···अगर यह बात वह उर्मि को बता देता, तो वह हँसते-हँसते एक 'सीन' क्रिएट कर देती···

इतनी कड़ी धूप में वह पूरे पैंतालिस मिनट तक किसी के इन्तजार में खड़ा रहा, यह बात किसी को भी बतायी नहीं जा सकती। इसके लिए वह मन-ही-मन खुद ही शर्मिन्दा है।

"तो फिर, चल कोई फिल्म देख आएँ।" उर्मि ने कहा, "अपने पल्ले रुपया नहीं है, यार।"

"तेरे पास रुपया रहता कब है ?" हालाँकि यह बात सरासर झूठ थी शायद इसीलिए वह ऐसा मजाक भी कर पायी। अचानक वह उठ खड़ी हुई और अरुण का कॉलर पकड़कर खींचते हुए कहा, "चल उठ, सुजीत आज नहीं आएगा।"

···अरुण क्या करे ? उससे कह दे कि वह उसके साथ नहीं जाएगा ?

"···हम लोगों की असली तकलीफ क्या है, जानता है, सुजीत ? जो कुछ बाहर दिखता है उससे भीतर का कहीं कोई मेल नहीं है।" एक दिन अरुण ने ही सुजीत से कहा था। लेकिन यह बात उसने क्यों कही थी, यह उसे खुद भी याद नहीं है। वह बातों की रौ में एकबारगी ही कह गया था, फिर खुद ही महसूस किया था, सचमुच वह बहुत बड़ी बात कह गया है।

ठंडी भीड़ को चीरकर उर्मि के साथ-साथ टिकट-काउन्टर की तरफ बढ़ते हुए अरुण ने बेहद गर्व महसूस किया। उर्मि जैसी लड़की के साथ चलने में एक अनोखा गर्व उभरता है। अगर रूनू उस समय उसे देख पाती तो मजा आता। रूनू के न आने या उसके इन्तजार न करने पर वह मन-ही-मन नाराज हो उठा था। रूनू ने तो उर्मि को देखा भी नहीं है, उसका नाम और उसके बारे में दो-एक हल्के-फुल्के किस्से सुने हैं, सिर्फ इतनी-सी बात से वह उससे जलने लगी है। बात करते-करते अचानक चुप हो जाना या गम्भीर हो जाना, ईर्ष्या नहीं तो और क्या है ?

उर्मि कितनी सहज और नॉर्मल है। रूनू उसके साथ जब फिल्म देखने जाती है, तो डर ! डर ! सिर्फ डर ! सारी बातों के बावजूद जाने कैसी एक गहरी अतृप्ति बनी रह जाती है।

उसके साथ फिल्म देखते हुए उर्मि ने जोर के ठहाके लगाए हैं, उसके कानों में फुसफुसाकर फिकरे कसे हैं, दो-एक बोल्ड बातें भी की हैं··· यही अगर रूनू से मिलता तो शायद वह अधिक खुश होता।

चलो, ठीक है, जहाँ से, जो भी मिलता हो, यूँ ही टुकड़े-टुकड़े में ही मिलता रहे, इसमें भी हर्ज क्या है ?

हॉल से बाहर निकलने के लिए भीड़ जैसे उमड़ी पड़ रही थी। अब उर्मि चली जाएगी। अरुण फिर अकेला रह जाएगा। उसे रूनू की दुबारा याद आने लगी। खैर, जाने दो, 'कोजी-नुक' सलामत रहे। चाय की प्याली लेकर थोड़ी देर सुजीत और टिकलू जैसे लोगों के साथ बैठा जा सकता है।

सिनेमा हॉल से निकलते हुए वह अनमना हो उठा। ठीक उसी समय छोटे मौसा पर नजर पड़ गई। छोटे मौसा ? अरुण का दिल धक् से रह गया। अब तक उसका कन्धा हैंगर की तरह सख्त और तना हुआ था, अचानक झूल गया।

अब तक वह उर्मि के साथ खुश था अचानक उसे खीज होने लगी। वह उर्मि से जितनी दूर भाग जाना चाहता है, उर्मि उतनी ही करीब होती

जा रही है। उर्मि अरुण के चेहरे की तरफ देखते हुए, जाने कोई हँसी की बात कहने जा रही थी कि···अरुण ने दूसरी तरफ मुँह घुमाकर यह बहाना किया मानो वह उर्मि को पहचानता ही नहीं।

वह झटपट भीड़ से निकलकर छोटे मौसा से आँख बचाते हुए, कहीं दूसरी तरफ मुड़ गया। छोटे मौसा के साथ कोई और भी था या नहीं, वह यह देखने का भी साहस नहीं कर पाया। शायद उसमें यह देखने की भी हिम्मत नहीं थी।

उसके साथ उर्मि को भी क्या उन लोगों ने देख लिया? उसे देखकर क्या वह लोग समझ गये कि वह लोग एक साथ आये हैं?

अरुण इन उलझनों में यूँ खो गया कि उर्मि अपनी खनखनाती हुई आवाज में क्या कह रही है, उसके होंठों पर खुनक हँसी क्यों है, वह समझ नहीं पाया। वह उसकी बातों के जवाब में सूखा-सा हूँ-हाँ करता रहा।

अरुण उसकी बात सुन रहा है या नहीं, उर्मि ने गौर ही नहीं किया। वह सिर्फ हाथ हिला-हिलाकर बेसिर-पैर की बातें करने में मस्त थी। पानी खत्म हो जाने वाले नल की टकी की तरह, रह-रहकर ठहाके लगाती रही। वह कैसी अजीब आफत में फँस गया! छोटे मौसा की बात बताकर, वह उर्मि को सावधान कर दे और दूर-दूर चलने को कहे, इसका भी कोई उपाय नहीं क्योंकि उर्मि उसकी बात सुनकर जोर का ठहाका लगाएगी, "यह कैसी बात है, रे?" और वह अपनी विस्मित आँखें उसके चेहरे पर टिका देगी।

अरुण को एक साथ बहुत सारे लोगों पर गुस्सा आने लगा—उर्मि पर, मौसा पर, बापू-माँ और दिदिया वगैरह, तमाम लोगों पर! अपने समूचे घर पर। आज उसने दुबारा महसूस किया कि वह इस घर में फिट नहीं होता। उसके बाहर के साथ भीतर का कहीं, कोई मेल नहीं है। दरअसल कोई किसी से मेल नहीं खाता।

दोनों बस-स्टॉप पर आकर खड़े हो गये। अब जो होना था, सो तो हो गया।

एक प्रौढ़ व्यक्ति हाथ में बीफ-केस लिए हुए फुटपाथ पर से

आगे बढ़ रहे थे। उन्होंने ऐसा उदासीन और अन्यमनस्क भाव दिखाया, मानो उर्मि को देखा ही नहीं और अनजाने में ही उर्मि से सटकर खड़े हो गये और राडार की तरह दो मील दूर तक, बस की तलाश में आँखें फैला दीं।

"एई, माइनिंग इन्जीनियर से दोस्ती करेगा ?" उर्मि हँस पड़ी, "वह आज-कल में आने वाला है।"

"धत्त् ! अपनी किसी सहेली से दोस्ती कराती तो कर भी लेता।"

उर्मि ने भी हंसकर कहा, "बड़े आये कहीं के।" उसने अपने आस-पास के लोगों पर नजर डाली और होंठ दबा कर हँस दी।

अरुण भी हँस पड़ा। एक दिन सुजीत ने बहुत सटीक उपमा दी थी, "अबे, गर्मी के दिनों में पसीना छूटते देखा है ? फट् से एक जगह एक बूंद उभरेगी, थोड़ी देर बाद उसके आस-पास तीन-चार और बूंदें उभर आयेंगी। थोड़ी देर बाद उसके आस-पास और कई बूंदें। फिर थोड़ी बूंदें और···और फिर फुन्-फुन् करके एक बड़ा-सा चकत्ता झिल-मिलाने लगेगा। आस-पास भन्-भन् करता हुआ भँवरों का झुंड इकट्ठा हो जाएगा।"

उर्मि ने जोर का ठहाका लगाया, "एई, अरुण देख, देख ! कित्ता सारा पसीना···।"

अरुण ने भी हँसते हुए आस-पास देखा। सच ही काफी भीड़ जमा हो गयी थी। वाह ! इस वजह से लोग क्या बस में चढ़ना छोड़ देंगे ?

आज, वह अभी घर नहीं लौटेगा। उसे बहुत भूख लगी है। जिस दिन अड्डे में इण्टरवल होता, वह घर जाकर थोड़ा-बहुत पेट में डालकर, दुबारा, 'कोजी-नुक' में हाजिर होता है। लेकिन आज कोई उपाय नहीं है। वह नहीं चाहता कि उसके सामने ही कोई दुर्घटना हो। हो सकता है छोटे मौसा पिक्चर हॉल से सीधे वहीं पहुंचे हों।

"स्साले ! गंवार कहीं के।" अरुण मन-ही-मन बुदबुदा उठा।

अच्छा, उर्मि तो सिर्फ उसकी दोस्त भर है। जो, सच बात है, वही कह देगा। हाँ, वह सिनेमा देखने गया था। गया था!! अकेले नहीं किसी के साथ गया था! एक लड़की के साथ!!

असम्भव! सिर्फ कह देने भर से हो जाएगा?

साला, बवाल मच जाएगा। माँ दीवार से सिर फोड़ेंगी, बापू जोर-जोर से चीखेंगे, दिदिया कहेगी, अरुण तू अन्त में इतना···।

गजब है! हर बात दबा-छुपाकर रखनी होगी।

उर्मि को बस में बिठाकर वह दूसरी तरफ जाने वाली बस में चढ़ गया और सीधे उस छोटी-सी दुकान 'कोजीनुक' के सामने आकर उतरा।

उस काने लड़के का नाम पद्मलोचन है। दुकान में फर्नीचर के नाम पर सस्ते दामों वाली बारह-चौदह लकड़ी की मेज-कुर्सियाँ हैं। दुकान की गन्दी मेजों की तरह ही मैले-कुचैले जाँघिया पहने छोटे-छोटे छोकरे। लेकिन शाम होते-न-होते यहाँ की सारी कुर्सियाँ भर जाती हैं और जाने कितना शोर! कितना हंगामा!

अरुण को देखते ही टिंकलू ने अपनी बहस बीच में ही रोक दी। उसका स्वागत करते हुए कहा, "कहो, बॉस अपनी अटैची से मिलकर आ रहे हो? अमाँ, अब तक उसे जहाज दिखलाया या नहीं?"

धत्तेरे की! अटैची! अरुण ने खीजकर कहा, "मुझे जहाज दिखाने की जरूरत नहीं है। तुझे जरूरत हो तो किसी और के साथ जाकर देख आ।"

अरुण अचानक चुप हो गया। कभी-कभी उसे जाने क्या हो जाता है। रूनू के बारे में उसे कोई जरा-सा छेड़ देता है, तो उसका सारा गुस्सा रूनू पर ही जा पड़ता है। ऐसी स्थिति में रूनू ही उसे फालतू नजर आने लगती है।

अरुण अपनी खीज छुपाने के लिए ही शायद यह बात कह गया था। थोड़ी देर चुप रहने के बाद, जब उसका पारा बिल्कुल ठण्डा हो गया तो उसने दुबारा बात छेड़ी, "जानता है, आज एक नया झमेला उठ खड़ा हुआ! उर्मि के साथ सिनेमा देखने गया, तो वहाँ···"

सुजीत ने मुँह बिचकाकर पूछा, "तुझसे एक बात पूछूँ? इस तरह

बेवजह वक्त खराब करना, तुझे अच्छा लगता है ?'

अरुण अपनी बात कहता-कहता अचानक रुक गया। अच्छा हुआ, उसने पूरी बात नहीं बतायी वर्ना उसकी बात सुनकर सुजीत कह बैठता, "छोटे मौसा ने देख लिया तो क्या हो गया ? उनकी खाली डिबिया भी तो उनके साथ चिपकी होगी ?"

उफ ! इन लोगों के मन में किसी के प्रति इत्ता-सा भी प्यार या श्रद्धा नहीं है। ये लोग छोटे मौसा, रून्, उर्मि सबको एक ही नजर से देखते हैं। बापू और माँ ने इनका असली चेहरा नहीं देखा है, वरना वह भी समझ पाते। उन लोगों की नजर में तो चौदह इंची मोहरी भी चोंगा ही लगती है। इन दिनों टिकलू ने एक नयी पैण्ट बनवायी है। आजकल इसी के गुमान में···स्साला ! पैंट में एक प्लेट तक नहीं दिलवायी है।

"जानता है, उर्मि के साथ एक दिन मैं भी सिनेमा गया था।" टिकलू ने हँसते हुए कहा, "माँ कसम, हॉल में घुसते ही उर्मि ने घुड़क दिया—देख, कोई बदमाशी मत करना वरना···" उसने उर्मि की तरह लड़कियाना लहजे में नकल की।

सुजीत हँस पड़ा, "वस्स, तू बेटा तो गलकर बरफ हो गया होगा ?"

अरुण ने उसकी हँसी में साथ नहीं दिया। उसे टिकलू की बातों पर भरोसा ही नहीं था।

टिकलू ने जोर का ठहाका लगाते हुए कहा, "अरे जाऽ—जा ! मैं तेरी तरह किसी हर-मेजेस्टी का खरीदा हुआ गुलाम नहीं। साला, मैं अपने सिर बोझा भी ढोऊँ और मजा भी न लूँ ? अपन को यह सब पसन्द नहीं है।"

अरुण अन्दर-ही-अन्दर तिलमिला रहा था। टिकलू की इस बात पर वह गुस्से से फट पड़ा, "देख, उर्मि आखिर हम लोगों की दोस्त है। इतनी पुरानी दोस्ती है उससे ! जरा इसका तो लिहाज···"

"दोस्त ?" टिकलू हँसा, "दोस्त है तो क्या हुआ ? वह साला माइनिंग इन्जीनियर उसे जहाज नहीं दिखाता है ! और फिर तेरा ही कौन भरोसा ! तू भी भीतर-ही-भीतर जाने क्या-क्या···"

बेवजह वक्त खराब करना, तुझे अच्छा लगता है ?'

अरुण अपनी बात कहता-कहता अचानक रुक गया। अच्छा हुआ, उसने पूरी बात नहीं बतायी वर्ना उसकी बात सुनकर सुजीत कह बैठता, "छोटे मौसा ने देख लिया तो क्या हो गया ? उनकी खाली डिबिया भी तो उनके साथ चिपकी होगी ?"

उफ ! इन लोगों के मन में किसी के प्रति इत्ता-सा भी प्यार या श्रद्धा नहीं है। ये लोग छोटे मौसा, रुनू, उर्मि सबको एक ही नजर से देखते हैं। बापू और माँ ने इनका असली चेहरा नहीं देखा है, वरना वह भी समझ पाते। उन लोगों की नजर में तो चौदह इंची मोहरी भी चोंगा ही लगती है। इन दिनों टिकलू ने एक नयी पैण्ट बनवायी है। आजकल इसी के गुमान में···स्साला ! पैंट में एक प्लेट तक नहीं दिलवायी है।

"जानता है, उर्मि के साथ एक दिन मैं भी सिनेमा गया था।" टिकलू ने हँसते हुए कहा, "माँ कसम, हॉल में घुसते ही उर्मि ने घुड़क दिया—देख, कोई बदमाशी मत करना वरना···" उसने उर्मि की तरह लड़कियाना लहजे में नकल की।

सुजीत हँस पड़ा, "बस्स, तू बेटा तो गलकर बरफ हो गया होगा ?"

अरुण ने उसकी हँसी में साथ नहीं दिया। उसे टिकलू की बातों पर भरोसा ही नहीं था।

टिकलू ने जोर का ठहाका लगाते हुए कहा, "अरे जाऽ—जा ! मैं तेरी तरह किसी हर-मेजेस्टी का खरीदा हुआ गुलाम नहीं। साला, मैं अपने सिर बोझा भी ढोऊँ और मजा भी न लूँ ? अपन को यह सब पसन्द नहीं है।"

अरुण अन्दर-ही-अन्दर तिलमिला रहा था। टिकलू की इस बात पर वह गुस्से से फट पड़ा, "देख, उर्मि आखिर हम लोगों की दोस्त है। इतनी पुरानी दोस्ती है उससे ! जरा इसका तो लिहाज···"

"दोस्त ?" टिकलू हँसा, "दोस्त है तो क्या हुआ ? वह साला माइनिंग इन्जीनियर उसे जहाज नहीं दिखाता है ! और फिर तेरा ही कौन भरोसा ! तू भी भीतर-ही-भीतर जाने क्या-क्या···"

अब सुजीत भी नाराज हो उठा। उसका भी मन हुआ कि टिकलू को कोई कड़ी-सी बात कहकर झिड़क दे। लेकिन उसने कुछ नहीं कहा। अचानक वह उदास हो आया। उसने अपनी हथेलियों पर नजरें गड़ाते हुए ही कहना शुरू किया, "जानता है, इण्टरव्यू तो खैर दे आया। अब···"

अरुण ने चैन की साँस ली। उसका गुस्सा फौरन ठण्डा पड़ गया। उसने भी कहा, "यार, मेरे बापू भी हर रोज विज्ञापनों पर लाल निशान लगा-लगाकर ढेर लगाते जा रहे हैं।"

टिकलू ने फिश्यू से माचिस की एक तीली जलायी और होठों में दबी हुई सिगरेट सुलगाते हुए कहा, "हुँह! सिर्फ इण्टरव्यू देने से ही क्या नौकरी मिल जाएगी? मैं कहता हूँ यह सब धन्धा छोड़कर, किसी की पूँछड़ी पकड़ लो···वर्ना कु-च्छ नहीं होगा।"

सुजीत हँस पड़ा, "ठीक कह रहा है। माँ कसम, इण्टरव्यू में उन सालों ने तो कुछ पूछा ही नहीं।" फिर टिकलू की तरफ घूमकर पूछा, "लेकिन यार, तुझे क्या फर्क पड़ता है? तू तो मजे से अपने बाप की गद्दी सम्भाल लेगा।"

"ने-व-र।" टिकलू ने विरोध किया, "तुझको तो मालूम है, माँ से जबर्दस्त झगड़ा चल रहा है। दो-ठो ट्रेडल मशीन लेकर ठुक्-ठुक्। धत्! ···सारे दिन शुभ-विवाह और हैण्डबिल छापते रहो। अरे कोई मुझे लाख रुपया पकड़ा दे···तो साला, मैं दिखा दूँ कि प्रेस किसे कहते हैं।"

अरुण को उसकी यह लाख-दो लाख की बातें कभी अच्छी नहीं लगीं। जब कभी वह अपनी स्थिति के बारे में सोचता है तो टिकलू के उन बड़े-बड़े सपनों से अपना सामंजस्य नहीं बिठा पाता। अतः वह थोड़ी देर को चुप हो रहा। फिर धीरे से कहा, "वैसे अगर मैं चाहूँ तो किसी स्कूल में मास्टरी तो मिल ही सकती है, लेकिन मेरा मन ही नहीं करता।"

सुजीत भी थोड़ी देर चुपचाप उसकी बातें सुनता रहा, फिर कहा, "जानता है अरुण, दरअसल हम लोगों के मन में अब किसी तरह की

महत्वाकांक्षा ही नहीं रह गयी है। सच्ची, कसम से हम लोगों का मन ही नहीं करता कि कुछ बनें।"

"क्यों ? मन क्यों नहीं करता ?" अरुण को लगा सुजीत भी आज बापू की तरह बातें कर रहा है। हो सकता है, बेटे ने अपने बाप से जो कुछ सुन-सुना लिया, उस पर अब खुद भी यकीन करने लगा हो। हुँह ! कुछ बनने का मन नहीं करता ! जैसे चाहने भर से वह बहुत कुछ बन सकता था। अरे, विज्ञापन देख-देखकर, बस, एप्लाई करते जाओ, लेकिन इण्टरव्यू के नाम पर एक भी बुलावा नहीं आता। और यह बेटा समझता है कि इण्टरव्यू देने भर से नौकरी मिल जाएगी। हुँह ! इतना ही दर्द है तो किसी के नाम चिट्ठी लिखवा दो न ! फिर देखो, मुझे नौकरी मिलती है या नहीं। यह सब तो करते नहीं बना···बस, विज्ञापन देख-देखकर दरखास्त लिखे जाओ। भला इनसे पूछो, कि दरखास्त लिखने में कम झमेला है ?

अरुण ने जेब में हाथ डालकर पैसा निकालना चाहा कि एक कागज का टुकड़ा निकल आया। उसे याद आया कि बाहर निकलते हुए दिदिया ने उसे वह कागज थमाया था। नाखून से कुतरा हुआ विज्ञापन का एक टुकड़ा ! कागज का वह टुकड़ा लेकर जब वह माँ के सामने गया तो उसे रुपया माँगने की भी जरूरत नहीं पड़ी। उसने कहा, "लाओ दो, दो ठो रुपया निकालो। बापू ने मेरे सिर, फिर एक दरखास्त का झमेला मढ़ दिया।"

माँ ने उसकी तरफ एक रुपया बढ़ा दिया, लेकिन अरुण ने उनकी तरफ इतने असहाय और निरीह भाव से देखा कि एक रुपया और देना पड़ा।

शुरू-शुरू में अरुण को बापू का विज्ञापनों पर निशान लगाते रहना बिल्कुल पसन्द नहीं था। यह सब करने में कम मुसीबत होती है ? गली की नुक्कड़ पर एक बैंक है, उसकी सीढ़ी के पास टाइपराइटर लिए हुए दो आदमी बैठे-बैठे हर वक्त खट्-खट्-खट् किया करते हैं। एक दरखास्त लिखने का चार आना। सर्टिफिकेट की ट्रू-कॉपी कराने का दो आना। अरे, झमेला जैसा झमेला होता है ? दो-दो

गजटेड अफसरों से सर्टिफिकेट लिखवाकर रख लिया है। उस पर से छिपी-छिपी सी नकल ! उसके बाद एक लम्बा-सा लिफाफा दो। पता टाइप करो। टिकट चिपकाओ। पोस्ट-ऑफिस मे क्यू मारकर खड़े रहो'''यानी एक दरख्वास्त भेजने का मतलब है, दो दिनो की अड्डेबाजी बन्द। इसीलिए शुरू-शुरू मे उसे काफी झुंझलाहट होती थी। अब स्थिति यह है कि इसी बहाने वह माँ से एक-दो रुपए वसूल लेता है। अत: इण्टरव्यू भी दे डालना है। स्साला, दरख्वास्त भेजने से जो होना है, न भेजने से भी वही होगा। यहीं से इण्टरव्यू का बुलावा आने से रहा। चलो, अच्छा है बाप की मेहनत के रुपये, बेटे के ऐश में काम आ रहे हैं।

लेकिन आज का मामला बिल्कुल अलग है। विज्ञापन का टुकड़ा छूते ही उस घर की याद आ गयी।

"एक दरख्वास्त भेजनी है, चलेगा टिबलू ?" अरुण ने उठते हुए पूछा।

टिबलू ने उसको तरफ विस्मय से देखा, "जा, बाबा ! तेरी यह बीमारी तो छूट चली थी ! धन्धे-बिजनेस में मजे से दो पैसा कमा रहा था। अब फिर ।"

"तू चलेगा या नहीं ?"

दरख्वास्त तो टाइप कराना ही होगा। छोटे मौसा ने उसके घर जाकर, जाने कौन सा गुल खिलाया होगा। अगर अब तक उसके खिलाफ रिपोर्ट पहुँच गयी होगी, तो घर के सब लोग फायर हुए बैठे होंगे। दरख्वास्त हाथ में लेकर घर में घुसने से, बाप शायद कुछ ठण्डे पड़ जाएँ !

टिबलू का चेहरा बादल की तरह बुझकर सियाह हो आया, "देख, अरुण, वहाँ अगर कोई लड़की टाइपिस्ट होती तो मैं एक नहीं सौ बार तेरे साथ चलता और एक ही दरख्वास्त को सत्तरह बार टाइप करवाता। लेकिन वहाँ जो दो-दो बेवकूफ शक्लनुमा आदमी बैठे होंगे और खुट्-खुट् करके टाइप करेंगे मॉं कसम, उनके पास बैठे-बैठे मेरी तो कमर लटकने लगती है।

"यह क्या बात हुई रे, टिकलू ?" सुजीत हँस पड़ा, "मैं तो समझता था, तेरे मुंह से ऐसी-वैसी बात, यूँ ही नहीं निकलती।"

टिकलू भी हँस दिया, "अमां यार, अरुण की तरह मैं भी जरा पॉलिश मार रहा हूँ। देख न, यह बेटा पॉलिश लगा-लगाकर रूनू पर अकेले-अकेले ही हक जमाए हुए है।"

अरुण उठ खड़ा हुआ, "मुझे तो, खैर जाना ही होगा। आज अगर दरखास्त नहीं भेजी तो···"

सुजीत ने उँगलियों में दबी हुई सिगरेट का आखिरी कश खींचा और उसे फुटपाथ की तरफ उछालते हुए कहा, "इण्टरव्यू तो मैं भी दे आया, लेकिन कमाल है यार, उन लोगों ने तो कुछ पूछा ही नहीं।"

अरुण ने झुंझलाकर कहा, "अरे, धत्तेरे की ! इस वक्त नौकरी की बात कौन साला सोच रहा है ? इस वक्त सारा घर ज्वालामुखी की तरह भभक रहा होगा। देख न, उसका धुंआ यहाँ तक उड़ रहा है।"

अरुण दरखास्त टाइप करवाकर जल्दी-जल्दी घर लौट आया। इतनी देर में उसमें काफी हिम्मत आ चुकी थी। अब जो होगा, देखा जाएगा। बहुत होगा, वह भी बिगड़ खड़ा होगा और अब्बाजान को हमेशा के लिए खुदाहाफिज कहकर···! बस, 'गुड बाई' जैसा फौलादी हथियार पास में हो, तो फिर किस बात का डर ?

वह घर में कुछ इस अन्दाज से घुसा जैसे कहीं कुछ हुआ ही नहीं। छोटे मौसा ने जिस लड़के को देखा था, वह अरुण नहीं था।

उसने मीलू को खोजते हुए स्टडी-रूम में झांका। अगर वह मिल जाती तो घरवालों के टेम्परेचर के बारे में पहले से ही अन्दाज लग जाता। लेकिन मीलू वहाँ नहीं थी।

कमरे में जाने से पहले, बरामदा पार करना होगा। बरामदे के कोने में ही रसोई है, कहीं···अरे धत्त् ! इतना डरपोक होना, अच्छी बात नहीं है। इस पार या उस पार ! जो होना है, हो जाए !

अरुण ने रसोई घर के दरवाजे पर खड़े होकर जोर से आवाज लगायी, "माँ, जोरों की भूख लगी है। झटपट खाना लगा दो।"

माँ ने उसी तरह मुँह फेरे-फेरे ही कहा, "हुँह। हर वक्त जैसे घोड़े पर सवार आता है।—जा, बुलू से कह थाली लगाने को।" फिर सिर उठाकर उसकी तरफ देखते हुए कहा, "तू जाकर हाथ-मुँह धो ले, तब तक खाना तैयार हो जाएगा।"

उसकी बात सुनने को वहाँ खड़ा कौन था? वह लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ अपने कमरे में चला आया। उसने देखा दिदिया उसके पलंग पर लेटी हुई, उसकी कलम से खत लिखने में मगन है। अरुण एकदम से खीज उठा। वह इतनी बार मना कर चुका है···! क्यों भाई, अपने जिस प्राण-प्यारे को प्रेम-पत्र लिखती हो, वह तुम्हें एक कलम खरीदकर नहीं दे सकता? दिदिया के हाथ में पड़ते ही पेन की निब का बारह बज जाता है।

उसने शर्ट उतारते हुए जान-बूझकर खखारा और तिरछी निगाहों से दिदिया की तरफ देखा। त्ना, लगता है, मुसीबत टल गयी। वह पास हो गया। उसे देखकर माँ ने कुछ नहीं कहा, दिदिया ने भी झल्लाहट नहीं दिखायी।

दरअसल जो हर वक्त हवा में उड़ता रहता है, उसी को हमेशा चौकन्ना रहने की जरूरत पड़ती है। वह दरख्वास्त की कापी लेकर बापू के सामने जा खड़ा हुआ, "जरा, देख दो, एप्लीकेशन ठीक लिखा है न? मेरा एक दोस्त कह रहा था कि इस कम्पनी में, उसकी थोड़ी-सी जान पहचान भी है—"

बापू ने कोई जवाब नहीं दिया। दरख्वास्त लेकर एक बार ऊपर से नीचे तक सरसरी निगाह से देख गये, फिर कहा, "हाँ, ठीक है। न हो इसे कल ही पोस्ट कर देना।"

अरुण वहाँ से हट गया। बापू के सामने वह निहायत लाचारी की हालत में ही जाता है। उनके सामने दो मिनट भी खड़े होने का मन नहीं होता।

अपने कमरे में लौटकर दरख्वास्त को मेज पर रख दिया और रसोई

की तरफ चल दिया। माँ की आवाज सुनकर दिदिया पहले से ही उसके लिए खाना लगाने चली गयी थी। अचानक मीलू दबे-पाँव उसके कमरे में घुसी। उसने एक बार इधर-उधर झाँककर देखा, फिर उसके कानों में फुसफुसाकर पूछा, "क्या हुआ है रे भइया ? छोटी मौसी और उन लोगों में जाने क्या बात हुई, तब से···।"

देखते-ही-देखते नीम का विशाल पेड़ नन्हीं-नन्ही पत्तियों से भर उठा है। नन्हीं-नन्हीं ललछौंही पत्तियों पर हल्की-हल्की हरियाली छाने लगी है।

हवा के हर झोंके के साथ नीम की झालरें जब आरती की चंवर की तरह, धीरे-धीरे हिलती हैं तो जी होता है कि उसे अपलक निहारते रहो।

वैसे यह मुहल्ला निहायत गन्दा है। जहाँ गली खत्म होती है, वहाँ एक डस्टबिन है। उसमें गली-भर का कूड़ा-करकट सड़ता रहता है। ऐसे में कभी-कभी समूची गली में एक अजीब-सी दुर्गन्ध फैल जाती है। खिड़की से बाहर जंग लगे टीन के कई शेड्स दिखाई पड़ते हैं। एक फ्लैट के बरामदे में फटी और गन्दी-सी कथरी सूखती रहती है। कुछ ही दूर पर मोदी की एक छोटी-सी दुकान दिखाई पड़ती है। आस-पास के घरों में रंग-रोगन तक का पता नहीं है। धूप और पानी सहते हुए घरों की दीवारें बदरंग हो आयी हैं।

···हाँ, कहीं कोई रंग नहीं दिखता। रूनू के अलावा कहीं कुछ भी रंगीन नहीं है।

एक जमाना था जब अरुण प्यार-मुहब्बत में जरा भी विश्वास नहीं करता था। सुजीत, अरुण किसी को भी प्यार शब्द पर भरोसा नहीं था। आजकल वही सुजीत जन्म-जन्मान्तरों के बारे में जरा ज्यादा ही अन्धविश्वासी हो उठा है। बेटा, एक के बाद एक इण्टरव्यू देता है और दिन-रात सिर्फ सपने देखता है। कौन-से घर में कौन-से ग्रह का निवास है, यह उसे मुँहजुबानी याद हो गया है। बीच-बीच में वह खुद ही

अपनी रेखाएँ पढ़ने की कोशिश करता है। इतने दिनों में साले ने बायें हाथ से दाहिने हाथ को दबा-दबाकर एक मजेदार भाग्य रेखा भी खोद ली है। वह रेखा भी साली, इतनी साफ और स्पष्ट उभरी है मानो बेम्टांपुर की नहर हो, जिसमें एक गधे को भी तैरा दिया जाए तो वह सीधे शनिश्चर के घर में जा पहुँचेगा।

अरुण को उसकी बातों पर बहुत हँसी आती है। स्साला ! हम जैसे लोगों की किस्मत ! हुँह !

"तू ऐसी बातें मत किया कर अरुण। दरअसल भविष्य तो तेरा ही है।" सुधीन ने कहा।

डिक्लू ने भी हँसकर एक वाक्य जोड़ा, "हाँ उ—भई, वर्तमान भी तेरा है, भविष्य भी तेरा है।"

अरुण सब समझता है। यह सब रन्नू की तरफ संकेत है। यानी उसे जो मिलना था, वह तो मिल ही गया।

सच ही तो, इस उम्र में अब और कौन-सा आकर्षण बच रहा है? उसे अब और क्या पाने की चाह है? इस मामले में वह सचमुच भाग्यवान है। रन्नू की बातें याद करते हुए वह गर्व में भर उठा।

"इसमें तेरा क्या क्रेडिट है, रे? क्रेडिट तो तेरी जन्मकुण्डली का है। स्साली, जिसकी किस्मत में जो लिखा हो..." सुधीन ने क्षुब्ध होकर कहा।

कभी-कभी अरुण को बेहद हँसी आती है। वह इन लोगों को यह बात कभी नहीं समझा पाया, और अब समझाना भी नहीं चाहता कि प्रेम का मतलब सिर्फ लड़की ही नहीं होता। वैसे प्रेम के मामले में थोड़ा-बहुत शरीर भी शामिल है, शरीर के अलावा और भी कई इच्छाएँ जागती हैं, लेकिन फिर भी असली प्रेम कुछ और है। दरअसल यह लोग अभी भी उसी सोलह-सत्रह की उम्र वाले अधकचरेपन में जी रहे हैं। उस उम्र में किसी लड़की पर नजर टिकते ही सब-कुछ बड़ा रंगीन-रंगीन नजर आने लगता है। जब वह उस उम्र में था तो उसने भी दो-एक की तरफ हाथ बढ़ाया था, लेकिन वे लड़कियाँ मछली की तरह छिटककर दूर चली गयीं। वह बुद्धुओं की तरह चुपचाप उन्हें

अभी हो···

देखता रह गया। उन दिनों वह किसी को अपने मन की बात बताता भी नहीं था, लेकिन मन-ही-मन अजब-सी अतृप्ति महसूस करता था।

"यह टिकलू बड़ा हरामी है।" सुजीत ने एक बार नाराज होकर अरुण से कहा था, "और कोई नहीं मिली तो बेटा, अपनी फुफेरी बहन के साथ ही···माँ कसम, मुझे तो शक होता है।"

अरुण को उसकी बातों पर विश्वास तो नहीं हुआ, लेकिन उसने मजा लिया था।

उन दिनों की बात याद आते ही अरुण के तन-बदन में अजब-सी वितृष्णा भर जाती है। अब वह खुद महसूस करने लगा है कि यह सत्तरह-अट्ठारह साल वाली उम्र बेहद बचकानी होती है। अब तो वह और उसके साथी इक्कीस-बाइस साल के होने को आए। इन चन्द सालों में और कोई न सही, लेकिन अरुण अचानक काफी बड़ा हो गया है और काफी बदल भी गया है।

हो सकता है रून ने ही उसे धीरे-धीरे बदल डाला हो।

"अच्छा, अब तू अपने हाल-चाल सुना।"

उर्मि की हर बात ही अनोखी होती है। उस दिन बेहद फुर्सत से फ्रेंजिनीज रेस्तराँ के कोने में जा बैठी और सोफे से पीठ टिकाकर मजे से अपने प्यार के किस्से बयान करती रही। अपनी बात खत्म करके वह थोड़ी देर को बेहद अनमनी हो आयी और फिर एकदम से उदास हो गयी। लेकिन कुछेक पल में ही उसने जैसे उड़ती हुई पतंग की डोर को झटपट समेट लिया और भीगी हुई पलकों में हँसी भरकर कहा, "बस्स, इतनी-सी बात! अब चल, तू अपनी बता।"

अरे वाह! मानो किसी का इण्टरव्यू हो और कोई प्रश्नकर्ता सवाल पूछे जा रहा हो—क्या नाम है? कौन से साल में डिग्री ली? अच्छा ठीक है, कल से काम में लग जाइए।···अरे, प्यार-मुहब्बत की बातें क्या किसी को बतायी जाती हैं? या अपनी बात किसी को समझायी जा सकती है?

अरुण ने तो सोचा भी नहीं था कि वह कभी प्रेम-व्रेम के चक्कर में फँसेगा। हाँ, अपने साथियों की तरह उसके मन में भी एक दबी-घुटी

चाह जरूर थी कि उसका भी किसी लड़की से परिचय हो, थोड़ा घूमना-फिरना हो। वह भी उनके साथ रेस्तराँ में बैठे, अकेले में जरा प्यार-दुलार करे। बस! इतना भर हो।

विराम से दोस्ती कॉलेज के दिनों में हुई थी। उसने उसकी आकांक्षाओं की आग को और भड़का दिया। उन दिनों अरुण का चेहरा लड़कियों जैसा कोमल दिखता था। एक बार कॉलेज के जलसे में एक्टिंग करने पर खूब वाह-वाही भी मिली।...उन दिनों अक्सर ही ऐसा होता था कि संस्कृत कॉलेज के सामने कभी विराम, कभी वह लड़की चहलकदमी करते हुए दिख जाते।

किसी-किसी दिन दोनों निश्चित जगह पर साथ हो लेते थे और उसके बाद जाने कहाँ गायब हो जाते।

अगले दिन क्लास में विराम आखिरी बेंच पर बैठकर, खूब रस ले-लेकर जो कुछ बताता, बाकी लड़के खूब मगन होकर उसकी बातें सुनते, और उसके किस्से, अमृत की बूंद की तरह गले से नीचे उतार लेते थे। कभी-कभार विराम को भी छेड़ने से बाज नहीं आते थे।

...एक दिन टिकलू ने बहुत मजा किया था। उस दिन विराम को पहुँचने में देर हो गयी। वह लड़की फुटपाथ पर सजी हुई दुकानों में किताब देखने के बहाने, उसका इन्तजार कर रही थी।

टिकलू ने कहा, "रुक जा, आज विराम के बच्चे पर एक कैंची मारूँगा।"

वह दनदनाता हुआ उस लड़की के पास जा पहुँचा और कहा, "सुनिए, विराम ने आज आपको लौट जाने को कहा है। टी० के० की क्लास में प्रॉक्सी देते हुए बिचारा पकड़ा गया है।"

कुछ देर बाद विराम भी आ पहुँचा और करीब आध घंटे तक चहलकदमी करता रहा। अरुण, सुजीत और टिकलू दूर खड़े मजा लेते रहे।

अगले दिन विराम को जब सही-सही बात मालूम हुई, तो, वह बुरी तरह झल्लाया था।

टिकलू ने कहा, "हम लोगों के लिए भी एक जुटा दो न, गुरु!

देखता रह गया। उन दिनों वह किसी को अपने मन की वात वताता भी नहीं था, लेकिन मन-ही-मन अजव-सी अतृप्ति महसूस करता था।

"यह टिकलू वड़ा हरामी है।" सुजीत ने एक वार नाराज होकर अरुण से कहा था, "और कोई नहीं मिली तो वेटा, अपनी फुफेरी वहन के साथ ही···माँ कसम, मुझे तो शक होता है।"

अरुण को उसकी वातों पर विश्वास तो नहीं हुआ, लेकिन उसने मजा लिया था।

उन दिनों की वात याद आते ही अरुण के तन-वदन में अजव-सी वितृष्णा भर जाती है। अव वह खुद महसूस करने लगा है कि यह सत्तरह-अट्ठारह साल वाली उम्र वेहद वचकानी होती है। अव तो वह और उसके साथी इक्कीस-वाइस साल के होने को आए। इन चन्द सालों में और कोई न सही, लेकिन अरुण अचानक काफी वड़ा हो गया है और काफी वदल भी गया है।

हो सकता है रूनू ने ही उसे धीरे-धीरे वदल डाला हो।

"अच्छा, अव तू अपने हाल-चाल सुना।"

उर्मि की हर वात ही अनोखी होती है। उस दिन वेहद फुर्सत से फ्रैंजिनीज रेस्तराँ के कोने में जा वैठी और सोफे से पीठ टिकाकर मजे से अपने प्यार के किस्से वयान करती रही। अपनी वात खत्म करके वह थोड़ी देर को वेहद अनमनी हो आयी और फिर एकदम से उदास हो गयी। लेकिन कुछेक पल में ही उसने जैसे उड़ती हुई पतंग की डोर को झटपट समेट लिया और भीगी हुई पलकों में हँसी भरकर कहा, "वस्स, इतनी-सी वात! अव चल, तू अपनी वता।"

अरे वाह! मानो किसी का इण्टरव्यू हो और कोई प्रश्नकर्ता सवाल पूछे जा रहा हो—क्या नाम है? कौन से साल में डिग्री ली? अच्छा ठीक है, कल से काम में लग जाइए।···अरे, प्यार-मुहब्बत की वातें क्या किसी को वतायी जाती हैं? या अपनी वात किसी को समझायी जा सकती है?

अरुण ने तो सोचा भी नहीं था कि वह कभी प्रेम-व्रेम के चक्कर में फँसेगा। हाँ, अपने साथियों की तरह उसके मन में भी एक दवी-घुटी

चाह जरूर थी कि उसका भी किसी लड़की से परिचय हो, थोड़ा घूमना-फिरना हो। वह भी उनके साथ रेस्तरां में बैठे, अकेले में जरा प्यार-दुलार करे। बस्स ! इतना भर ही।

विराम से दोस्ती कॉलेज के दिनों में हुई थी। उसने उसकी आकांक्षाओं की आग को और भड़का दिया। उन दिनों अरुण का चेहरा लड़कियों जैसा कोमल दिखता था। एक बार कॉलेज के जलसे में एक्टिंग करने पर खूब वाह-वाही भी मिली।'''उन दिनों अक्सर ही ऐसा होता था कि संस्कृत कॉलेज के सामने कभी विराम, कभी वह लड़की चहलकदमी करते हुए दिख जाते।

किसी-किसी दिन दोनों निश्चित जगह पर साथ हो लेते थे और उसके बाद जाने कहाँ गायब हो जाते।

अगले दिन क्लास में विराम आखिरी बेंच पर बैठकर, खूब रस ले-लेकर जो कुछ बताता, बाकी लड़के खूब मगन होकर उसकी बातें सुनते, और उसके किस्से, अमृत की बूंद की तरह गले से नीचे उतार लेते थे। कभी-कभार विराम को भी छेड़ने से बाज नहीं आते थे।

'''एक दिन टिकलू ने बहुत मजा किया था। उस दिन विराम को पहुँचने में देर हो गयी। वह लड़की फुटपाथ पर सजी हुई दुकानों में किताब देखने के बहाने, उसका इन्तजार कर रही थी।

टिकलू ने कहा, "रुक जा, आज विराम के बच्चे पर एक कैंची मारूँगा।"

वह दनदनाता हुआ उस लड़की के पास जा पहुँचा और कहा, "सुनिए, विराम ने आज आपको लौट जाने को कहा है। टी० के० की क्लास में प्रॉक्सी देते हुए बिचारा पकड़ा गया है।"

कुछ देर बाद विराम भी आ पहुँचा और करीब आध घंटे तक चहलकदमी करता रहा। अरुण, सुजीत और टिकलू दूर खड़े मजा लेते रहे।

अगले दिन विराम को जब सही-सही बात मालूम हुई, तो, वह बुरी तरह झल्लाया था।

टिकलू ने कहा, "हम लोगों के लिए भी एक जुटा दो न, गुरु !

तब तुम्हें कोई डिस्टर्ब नहीं करेगा।"

अरुण को आज भी जब वे बातें याद आती हैं, तो वह अपनी ही नजर में अपने को बेहद छोटा महसूस करने लगता है। उन दिनों, उसमें इतनी अक्ल ही नहीं थी कि वह प्रेम नामक चीज को पहचान सके। किसी लड़के के साथ किसी लड़की को देखकर, उसे ईर्ष्या होती थी। बचपन के दिनों की तरह अगर उस वक्त भी उसके पास गुलेल होती, तो वह दूर से ही निशाना लगाकर, उन्हें जख्मी कर देता।

···सुजीत ने ही एक दिन सूचना दी थी, "यह विराम का बच्चा, रोज-रोज विक्टोरिया जाने लगा है।"

टिकलू ने कहा, "तो फिर चल, आज उसका पहिया पंक्चर कर आएँ।"

तीनों हँसी-मजाक करते हुए, बस में जा बैठे। विक्टोरिया-मेमोरियल के तालाब के किनारे एक जोड़े को देखते हुए सुजीत ने कहा, "ये लड़कियाँ भी, माँ कसम, बेहद बेवकूफ किस्म की होती हैं। देख, जरा, उधर देख! वह लड़का, साला, सटता जा रहा है, और वह लड़की कुछ समझ ही नहीं रही है।"

अरुण उस जोड़े की तरफ देखते हुए खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसे भी उस लड़की पर दया आने लगी। उसे लगा वह लड़का सिर्फ एक्टिंग कर रहा है। उसकी तुलना में उसने अपने को बेहद शरीफ और भला महसूस किया और मन-ही-मन फैसला कर लिया कि अगर उसे कभी कोई लड़की मिली तो वह उसे झूठमूठ के सब्ज-बाग नहीं दिखायेगा। वह उसे सचमुच ब—होत प्यार करेगा, उसने सोच लिया।

टिकलू रास्ते-भर आस-पास के लोगों को परेशान करता रहा। राहगीरों पर बोली-आवाजें कसते हुए, कभी-कभी अश्लील ठहाके लगाते हुए, वह मानो अपने भीतर की जलन ठण्डी करने की कोशिश कर रहा हो।

अचानक उसने ऊँची आवाज में 'हाय-अल्लाह' कहकर एक लम्बी उसाँस भरी और फिर दो-एक पल की चुप्पी के बाद, एकदम से कह उठा, "ससाला, एक संग दो-दो? माँ कसम, क्या किस्मत पायी है।"

अरुण ने रूनू को वहीं पहली बार देखा था। विराम और नन्दिनी के सामने रूनू घुटने समेटकर बैठी हुई थी और हँसते हुए कुछ कह रही थी।

टिकलू तो जन्मजात बदमाश ठहरा। वह झट से आगे बढ़ आया और विराम के सामने ही नन्दिनी से कहा, "मैडम, हम लोग आपसे माफी माँगने आए हैं।" और वह वहीं घास पर बैठ गया।

अरुण उस वक्त मन-ही-मन संकोच से गड़ा जा रहा था। उसने महसूस किया कि इस वक्त वह भी किसी अड्डेबाज छोकरे से कम नहीं लग रहा है। उन छोकरों में और उसमें क्या फर्क है? वाकई नहीं, कोई फर्क नहीं है। हम सब अपने व्यवहार से नहीं, सिर्फ सर्टिफिकेट या तनख्वाह दिखाकर शरीफ बनने का ढोंग करते हैं—उसने सोचा।

विराम मन-ही-मन बुरी तरह नाराज हो उठा, लेकिन लाचारी थी। उसे परिचय करवाना ही पड़ा। उनमें से सिर्फ अरुण ही ऐसा था, जिसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

सुजीत ने कहा, "चल, जरा चाय-वाय पी आएँ।"

सब लोग एक रेस्तराँ में पहुँचे और एक मेज की चारों तरफ जमकर बैठ गए।

सुजीत लड़कियों के सामने इतने स्मार्ट ढंग से बात कर सकता है, अरुण को नहीं मालूम था। सुजीत मजेदार फुलझड़ियाँ बिखेरता रहा और नन्दिनी खिलखिलाकर हँसती रही।

रूनू टिकलू के बिल्कुल सामने बैठी थी। अरुण मन-ही-मन डर रहा था कि टिकलू मेज के नीचे से पाँव बढ़ाकर, उसके पाँव पर पाँव न रख दे। उसका कोई भरोसा नहीं। अतः उसकी आँखें घूम-फिरकर रूनू के चेहरे पर टिक जातीं।

इतने दिनों तक उसकी आँखों में ऊर्मि ही बेहद खूबसूरत लगी थी। लेकिन आज रूनू भी उसे किसी सपने की तरह मधुर लगी। मानो चारों ओर अस्पष्ट-सा हल्का-हल्का धुंध छाया हुआ हो। वह उसे बर्फ के टुकड़े की तरह पारदर्शी या शरदकालीन गुनगुनी धूप में मुँदी हुई पलकों में तैरने वाले ख्वाब की तरह नाजुक और खूबसूरत लगी।

अभी हो··· :: ३

उस दिन रूनू और अरुण में कोई बातचीत नहीं हुई ।

इधर-उधर की आलतू-फालतू बातें करते हुए सुजीत अचानक ज्योतिषी होने का स्वांग रच बैठा । वह विराम और नन्दिनी की हथेलियों की रेखाएँ पढ़ने लगा । हाथ देखने के बहाने उसे नन्दिनी की चापलूसी करते देखकर, रूनू के होंठों पर बिजली जैसी हँसी थिरक उठी ।

"क्यों, हमारा हाथ नहीं देखेंगे ?" और उसने हँसते हुए उसकी तरफ हाथ बढ़ा दिया ।

सुजीत को रूनू का हाथ पकड़ते देखकर अरुण का दिल धक् से रह गया ।

उसके बाद वह जितनी देर वहाँ रहा, वायलिन पर छेड़ी गयी किसी उदास धुन की तरह, एक तीखा दर्द, उसकी हड्डियों में अन्दर तक समाता चला गया ।

विराम ने कहा, "चलो, अब उठा जाये ।"

रूनू इतनी देर से अपनी हथेलियों की अस्पष्ट रेखाओं को निहारे जा रही थी । अचानक उसने अपनी झुकी हुई पलकें ऊपर उठायीं और पल-भर के लिए अरुण के चेहरे पर टिका दीं ।

नन्दिनी ने जिद की, "अरे, जरा देर और बैठो न !"

रूनू ने कहा, "नहीं रे, बहुत देर हो जाएगी ।"

उस वक्त अरुण को भी यही लग रहा था—देर हो जाएगी, शायद बहुत देर हो जाएगी । उसकी तबीयत हुई कि वह अभी···इसी वक्त कुछ कह डाले । उसे शायद यह डर भी था कि कहीं ऐसा न हो कि उसके बात करने के पहले ही सुजीत या टिकलू कुछ कह बैठें । अगर वे सचमुच कुछ कह बैठे तो अरुण के तमाम सितारे खो जाएँगे और उसके मन की खिड़की किसी खाली चौखट की तरह छोटी हो जायेगी ।

वे लोग काफी धीरे-धीरे चल रहे थे । सुजीत खूब चटखारे ले-लेकर इधर-उधर के किस्से सुनाता रहा । नन्दिनी भी उसी तरह खिल-खिल हँसती रही । रूनू शायद किन्ही ख्यालों में खो गयी थी । टिकलू अपने चोंगे जैसी पैण्ट में बेहद भद्दा दिख रहा था ।

अरुण अचानक ठिठककर रुक गया । उसकी निगाहें नीले रंग के

एक खूबसूरत-से धूपछाँही पंख पर जम गयीं। शायद किसी खूबसूरत-से पंछी का खूबसूरत-सा पंख था। अरुण इतनी देर से सिर्फ रूनू की ओर ही देखे जा रहा था। शिशिर-ओस-कणों से निखरा हुआ रूनू का चेहरा!

इतनी देर बाद उसे अचानक याद आया, उस दिन रूनू ने भी नीली साड़ी पहनी थी। अरुण ने झुककर वह पंख उठा लिया और चुपचाप रूनू की तरफ बढ़ा दिया। रूनू के हाथ में वह पंख और अधिक खूबसूरत लग रहा था। अरुण के हाथों से पंख लेते हुए रूनू ने एक बार उसके चेहरे की तरफ गौर से देखा और बस…

एस्प्लनेड पर नियॉन-साइन में चमकता हुआ विज्ञापन रह-रहकर जल-बुझ रहा था। सारी बत्तियाँ एक झटके में जलती थीं और फिर झटके से बुझ जाती थीं। उन्हें देखते हुए अरुण ने महसूस किया उसके भीतर भी जैसे कहीं कुछ तेजी से घट रहा है। उसके चेहरे पर भी आशा-निराशा के चमकने-बुझने का क्रम चल रहा है। मन के किसी कोने में आशा की कोई किरण चमक उठती है और फिर बुझ जाती है।

सारी घटना जैसे आकस्मिक भाव से घटती चली गयी। उस दिन जब उसने वह खूबसूरत-सा नीला पंख उठाकर रूनू की तरफ बढ़ा दिया, तो किसी असम्भाव्य कल्पना से खुश होने का साहस नहीं कर पाया था।

अब वह अगर सारा किस्सा इन लोगों के सामने दुहराने बैठे तो ये लोग या तो विश्वास ही न करेंगे या फिर गुस्से से बौखलाकर कहेंगे, "साला! बेईमान!"

सुजीत शायद मुँह से कुछ न कहे, लेकिन मन-ही-मन जरूर सोचेगा कि असल में वह चिड़िया उसकी थी और अरुण ने धूर्त चिड़ीमार की तरह आँख में धूल झोंककर उसे हथिया लिया।

टिक्कू और सुजीत को सारी बात बतायी जाए या नहीं, अरुण सोचता रहा। असल में उसे टिक्कू से ही डर लगता है। वही एक

उस दिन रूनू और अरुण में कोई बातचीत नहीं हुई।

इधर-उधर की आलतू-फालतू बातें करते हुए सुजीत अचानक ज्योतिषी होने का स्वाँग रच बैठा। वह विराम और नन्दिनी की हथेलियों की रेखाएँ पढ़ने लगा। हाथ देखने के बहाने उसे नन्दिनी की चापलूसी करते देखकर, रूनू के होंठों पर बिजली जैसी हँसी थिरक उठी।

"क्यों, हमारा हाथ नहीं देखेंगे ?" और उसने हँसते हुए उसकी तरफ हाथ बढ़ा दिया।

सुजीत को रूनू का हाथ पकड़ते देखकर अरुण का दिल धक् से रह गया।

उसके बाद वह जितनी देर वहाँ रहा, वायलिन पर छेड़ी गयी किसी उदास धुन की तरह, एक तीखा दर्द, उसकी हड्डियों में अन्दर तक समाता चला गया।

विराम ने कहा, "चलो, अब उठा जाये।"

रूनू इतनी देर से अपनी हथेलियों की अस्पष्ट रेखाओं को निहारे जा रही थी। अचानक उसने अपनी झुकी हुई पलकें ऊपर उठायीं और पल-भर के लिए अरुण के चेहरे पर टिका दीं।

नन्दिनी ने जिद की, "अरे, जरा देर और बैठो न !"

रूनू ने कहा, "नहीं रे, बहुत देर हो जाएगी।"

उस वक्त अरुण को भी यही लग रहा था—देर हो जाएगी, शायद बहुत देर हो जाएगी। उसकी तबीयत हुई कि वह अभी···इसी वक्त कुछ कह डाले। उसे शायद यह डर भी था कि कहीं ऐसा न हो कि उसके बात करने के पहले ही सुजीत या टिकलू कुछ कह बैठें। अगर वे सचमुच कुछ कह बैठे तो अरुण के तमाम सितारे खो जाएँगे और उसके मन की खिड़की किसी खाली चौखट की तरह छोटी हो जायेगी।

वे लोग काफी धीरे-धीरे चल रहे थे। सुजीत खूब चटखारे ले-लेकर इधर-उधर के किस्से सुनाता रहा। नन्दिनी भी उसी तरह खिल-खिल हँसती रही। रूनू शायद किन्हीं ख्यालों में खो गयी थी। टिकलू अपने चोंगे जैसी पैण्ट में बेहद भद्दा दिख रहा था।

अरुण अचानक ठिठककर रुक गया। उसकी निगाहें नीले रंग के

एक खूबसूरत-से घूपछाँही पंख पर जम गयी। शायद किसी खूबसूरत-से पंछी का खूबसूरत-सा पंख था। अरुण इतनी देर से सिर्फ रूनू की ओर ही देखे जा रहा था। शिशिर-ओस-कणों से निखरा हुआ रूनू का चेहरा!

इतनी देर बाद उसे अचानक याद आया, उस दिन रूनू ने भी नीली साड़ी पहनी थी। अरुण ने झुककर वह पंख उठा लिया और चुपचाप रूनू की तरफ बढ़ा दिया। रूनू के हाथ में वह पंख और अधिक खूबसूरत लग रहा था। अरुण के हाथों से पंख लेते हुए रूनू ने एक बार उसके चेहरे की तरफ गौर से देखा और बस…

एस्प्लानेड पर निओन-साइन में चमकता हुआ विज्ञापन रह-रहकर जल-बुझ रहा था। सारी बत्तियाँ एक झटके से जलती थीं और फिर भक्क से बुझ जाती थीं। उन्हें देखते हुए अरुण ने महसूस किया उसके भीतर भी जैसे कहीं कुछ तेजी से घट रहा है। उसके चेहरे पर भी आशा-निराशा के चमकने-बुझने का क्रम चल रहा है। मन के किसी कोने में आशा की कोई किरण चमक उठती है और फिर बुझ जाती है।

सारी घटना कैसे आकस्मिक भाव से घटती चली गयी। उस दिन जब उसने वह खूबसूरत-सा नीला पंख उठाकर रूनू की तरफ बढ़ा दिया, तो किसी असम्भाव्य कल्पना से खुश होने का साहस नहीं कर पाया था।

अब वह अगर सारा किस्सा इन लोगों के सामने दुहराने बैठे तो ये लोग या तो विश्वास ही न करेंगे या फिर गुस्से से बौखलाकर कहेंगे, "स्साला! बेईमान!"

सुजीत शायद मुँह से कुछ न कहे, लेकिन मन-ही-मन जरूर सोचेगा कि असल में यह चिड़िया उसकी थी और अरुण ने धूर्त चिड़ीमार की तरह आँख में धूल झोंककर उसे हथिया लिया।

टिकलू और सुजीत को सारी बात बतायी जाए या नहीं, अरुण सोचता रहा। असल में उसे टिकलू से ही डर लगता है। अपने एक

रियल वदमाश है। उसकी वात सुनकर खूब ही हुल्लड़ मचाएगा और फिर कॉलेज में जो-सो बकता फिरेगा। सचमुच उसका कोई भरोसा नहीं। पिछली बार कॉलेज यूनियन के इलेक्शन के दिनों में वह पोस्टर फाड़ने की घटना को लेकर सीधे-सीधे मार-पीट पर उतर आया था। अव कोई भला इनसे पूछे कि ये साहव पॉलिटिक्स के वारे में क्या जानते हैं। चाहे किसी भी पार्टी का दलाल हो, उनके कन्धे पर हाथ रखकर जरा याराना तरीके से बात करे, वस, ये लोग उसके लिए अपनी पार्टी बदल लेंगे।

...लेकिन ऐसी खुशखबरी किसी को सुनाए बगैर भी तो चैन नहीं आएगा। अरुण का मन हो रहा था वह दौड़कर सुजीत के पास पहुँच जाए और कहे, "यार, सुजीत, ले मुझे मुबारकें दे। मैंने मैदान मार लिया।"

लेकिन सुजीत से मुलाकात होने पर, उसने इस वारे में कोई वात नहीं की। उसके चेहरे पर वस एक भरी-भरी-सी हँसी विखर गयी।

उसने शब्दों को खींच-खींचकर कहा, "आज रूनू से मुलाकात हुई थी।" और हल्के-से हँस दिया।

"अरे, वाह! कहाँ—? कव? कैसे?..." सुजीत की आँखों में एक साथ वहुत सारे प्रश्न झाँकने लगे। उसी ने कहा, "चल उठ...। उर्मि को भी यह सूचना दे आएँ।" सुजीत उसे खींचते हुए ले चला।

"हाँ—रे, हम लोग काफी देर तक अकेले में वातें करते रहे। विल्कुल अकेले..." अरुण मानो अपनी खुशी दवा नहीं पा रहा था।

सुजीत ने उसकी पीठ पर जोर की एक धौल जमायी, "शावास! उर्मि के सामने अव अपनी प्रेस्टिज वढ़ जाएगी। वह समझती है, हम लोग अपने लिए एक लड़की तक नहीं जुटा सकते।"

उर्मि कॉफी हाउस में इतिहास वाली उस दुवली-पतली लड़की सोमा चैटर्जी के साथ वैठी हुई थी। उनके साथ टिकलू भी जमा हुआ था। सोमा को देखकर सुजीत का सारा मन ही कड़ुवा उठता है। उसे इस लड़की के साथ एक मेज पर वैठने में भी उवकाई आती है। वह वुदवुदा उठा, "यह उर्मि भी अजीव है! अपने को प्रमुख सावित करने के चक्कर

में, कभी किसी खूबसूरत चेहरे के साथ नहीं बैठी।"

सुजीत एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। उसने छूटते ही कहा, "यार टिकलू, तू गुड-फॉर-नथिंग ही रह गया। झूठमूठ के सपनों में खोया रहता है। इधर, अरुण को देख···साले ने रूनू पर हाथ साफ कर दिया।"

अरुण ने कोई बात नहीं की। उसके चेहरे की हँसी एकबारगी गायब हो गयी। मारे वितृष्णा के आँखें मूँद लेने का मन हुआ। 'हाथ साफ कर दिया।'···मानो इससे बढ़िया और कोई बात नहीं हो सकती थी।

अरुण अचानक परेशान हो उठा। इन लोगों ने रूनू को एक पल में अपवित्र कर दिया, हालाँकि वह मन-ही-मन उसे बेहद पावन दर्जा देना चाह रहा था।

उर्मि के बायें हाथ की सैंडविच, उसके मुँह में ही रह गयी। वह उसे चबाने के बजाय पानी के साथ झटपट निगल गयी और छूटते ही पूछा, "यह रूनू कौन है?"

"आउट-साइडर! एक बाहरी लड़की!"

"देखने में कैसी है?"

सुजीत ने चिरैय्या के डैनों की तरह अपनी बायीं पलकें झपकाकर कहा, "टॉप!"

उर्मि ने मासूम-सा चेहरा बनाते हुए अपनी राय दी, "इश्श्! अरुण, सच्ची? वह मुझसे भी ज्यादा खूबसूरत है!"

सुजीत ने जवाब दिया, "हाँ, उर्मि डीयर! सॉरी! अब तेरा डीवैलुएशन हो गया यानी तेरी कीमत घट गयी।"

अरुण मुस्कुराया, "तुम लोग भी जाने क्या-क्या सोच बैठे हो। अभी तो सिर्फ जान-पहचान हुई है, बस! और जान-पहचान तो सुजीत और टिकलू से भी है।"

दरअसल अरुण थोड़ा डर गया। यह हंगामा, यह बातचीत, अगर विराम के कानों तक पहुँची और उसने रूनू को चिढ़ाना शुरू किया या यही कह दिया कि अरुण तुम्हारे बारे में सबके सामने फिकरे कस रहा

था, तो कहीं···

टिकलू ने अब तक कुछ भी नहीं कहा था। वह मुंह फेरकर दूसरी तरफ देख रहा था।

उर्मि ने अचानक जोर का ठहाका लगाया और हाथ बढ़ाकर टिकलू की ठुड्डी छूकर कहा, "अहा! देख, जीत, यह बेचारा तो बिल्कुल काम से गया।"

इतनी देर बाद टिकलू भी हँस पड़ा, "और नहीं तो क्या···? अरुण बेटा रूनू को जहाज दिखाएगा और मैं मारे उत्साह के ट्विस्ट करूँगा?"

"एई, असभ्य कहीं का!" उर्मि ने आँखों से सोमा की तरफ इशारा किया, यानी उसके सामने ऐसी-वैसी बातें करने में उसे आपत्ति है।

टिकलू की हंसी और तेज हो उठी, "तुम लड़कियों की जात···! हर बात में असभ्य खोज लेती हो, अरे, जहाज दिखाना क्या कोई खराब बात है?"

"खराब बात नहीं है?" उर्मि हँसी, "बता तो जरा, इसका क्या मतलब होता है?"

सुजीत ने हँसकर कहा, "इसका मतलब है, तू इस कॉलेज से दफा हो और अपने उस माइनिंग इन्जीनियर के साथ फोर्ट विलियम कॉलेज में नाम लिखा ले।"

उर्मि यूं खिलखिला पड़ी, मानो किसी ने उसे गुदगुदा दिया हो। उसने हँसते-हँसते ही कहा, "उप्स! उस बेचारे से भी इतनी जलन?" अचानक उसने हँसी रोककर कहा, "देख, मैं चाहे जहाँ भी चली जाऊँ ···लेकिन हमेशा पवित्र और विशुद्ध रहूँगी।"

अभी तक वह काली लड़की सोमा सिर झुकाए बैठी थी। अचानक उसके सूखे चेहरे पर भी दबी हँसी बिखर गयी। वैसे उसकी अँगूठी का मूँगा मानो इस बात की साक्षी दे रहा हो कि वह कभी जी खोलकर उन्मुक्त हँसी नहीं हंसती है।

"मैं पवित्र! मैं विशुद्ध!"

उर्मि की बात सुनकर सोमा ने भी आहिस्ते से एक वाक्य जोड़ दिया, "और इस बात को झूठा साबित करने वाले को एक-हजार-एक रुपए का नकद इनाम ! ठीक है ?"

टिकलू जैसे मौका ढूंढ रहा था। कहा, "वह तो भाई, एस० के० एम० के अलावा और कोई साबित नहीं कर पाएगा।"

उर्मि ने जोर का ठहाका लगाया। उसके साथ बाकी लोगों की हँसी भी गूंज उठी।

उर्मि ने हँसते हुए कहा, "देख···आखिर वह अपना प्रोफेसर है। अगर उस बिचारे के मन में भी थोड़ा-बहुत प्यार-मुहब्बत या ममता उमड़ पड़े तो······।"

सुजीत ने उसकी बात बीच में ही काटते हुए कहा, "तू ठीक कह रही है। भूमावश में अगर वह किसी तस्वीर का मतलब समझाते हुए, पीठ पर हाथ रख भी देता है, तो क्या हुआ ?"

उसकी बातों पर सोमा भी अपनी लाज-हया झटककर जोर से हँस पड़ी, "और नहीं तो क्या ? उस बिचारे के दिल में लड़कियों के लिए इतनी ममता है ! उस दिन झमाझम बारिश हो रही थी। हम सब लड़कियों ने मिलकर छुट्टी की माँग की। लेकिन उन साहब ने सिर्फ उर्मि को निहारते हुए पूछा—"क्यों, उर्मिला ! क्लास करोगी या छुट्टी दे दें ?—क्या बात है ? मानो समूची क्लास में एक अकेली उर्मिला ही तो थी।"

उर्मि भी उसकी बातों पर हँस दी और निरीह आँखों से अरुण की तरफ देखते हुए कहा, "एई अरुण, तू ही जरा डिफेन्ड कर न मुझे !"

"आँ···?" अरुण जैसे वहाँ था ही नहीं। उर्मि की आवाज पर वह चौंककर जागा, "तूने क्या कहा, मुझे सुनाई नहीं दिया।"

उसे अप्रतिभ होते देखकर सबने जोर का ठहाका लगाया।

सुजीत ने सिर्फ इतना ही कहा, "तेरे तो बारह बज गये, यार !"

टिकलू ने भी अपनी राय दी, "साला अरुण, किस्मत वाला है ! अब उसके सामने वक्त गुजारने की समस्या नहीं होगी।"

अरुण अपनी अन्यमनस्कता के लिए मन-ही-मन काफी शर्म महसूस कर रहा था। अपना संकोच मिटाने के लिए उसने कहा, "हट ! मैं तो कोई और ही बात सोच रहा था।"

"अबे, यह क्यों नहीं कहता कि हवा में उड़ रहा था। फर्र ! फर्र !" सुजीत ने आवाज कसी।

सचमुच ही अरुण रास्ते से उठाए हुए उस नीले पंख की तरह—नीले पंछी की तरह—बादलों में, हवाओं में कुलांचे भर रहा था।

हरी-हरी घास ! पेड़-पौधे ! तलैया ! दूर से आती हुई घू-घू पक्षी की आवाज ! रूनू के मासूम चेहरे पर हर वक्त कैसी मुलायम और धीर-गम्भीर सौम्यता चमकती रहती है या हो सकता है अरुण को ही ऐसा लगा हो।

उस दिन रास्ते में उससे अचानक ही मुलाकात हो गयी।

रूनू उसे देखकर हल्के से मुस्करा दी और रुक गयी। कहा, "···कॉलिज से लौट रही हूँ ! मैंने लाइब्रेरी-साइन्स का कोर्स लिया है।"

"चलिए न—थोड़ी देर कहीं बैठा जाए।" अरुण ने आत्मीय लहजे में कहा, मानो वह यह मौका हाथ से खोना नहीं चाहता हो।

आज ही वह धोबी-धुली शर्ट-पैण्ट पहनकर बाहर निकलने की सोच रहा था। हत्तेरे की ! बहुत बड़ी बेवकूफी हो गयी। अरुण ने अपने क्रीज विहीन कपड़ों की ओर देखकर सोचा।

रूनू ने अपनी घड़ी की तरफ निगाह डालकर कहा, "अच्छा, सिर्फ पन्द्रह मिनट के लिए ! क्यों ?" फिर हँसकर कहा, "घर जल्दी जाना है न।"

अरुण आहत हो उठा। उसे लगा, रूनू दरअसल उसकी उपेक्षा करना चाहती है लेकिन बहुत निर्मम नहीं हो पा रही है। उसका मन हुआ कि वह मना कर दे, "तो फिर आज रहने दो !"

लेकिन वह चाहकर भी कुछ नहीं कह पाया। जिस दिन से उसने रूनू को देखा है, वह हर घड़ी उसके बारे में सोचता रहा है।

उसे कभी-कभी विराम पर ही झुंझलाहट हुई है। कौन जाने वही उसे छुपाकर रखना चाहता हो। उसे तो यह भी शक होने लगा कि भीतर-ही-भीतर वह रुनू से भी खिलवाड़ न कर रहा हो।

"आओ, बाहर ही बैठते हैं!" रेस्तराँ की खुली जगह में कई एक मेज-कुर्सियाँ पड़ी थीं। रुनू वहीं बैठ गयी। उसने केबिन की तरफ इशारा करते हुए कहा, "आओ यहीं बैठें! वहाँ तो दम घुटने लगता है।"

अरुण को बुरा लगा। उसे लगा रुनू उसका बार-बार अपमान करना चाहती है। वह उसका विश्वास नहीं करती है। उसे लगा रुनू उसे भी टिकलू समझ रही है।

लेकिन उसके बाद बातों का जो दौर शुरू हुआ, तो बातें ही बातें।...दोनों जाने कब एक-दूसरे के इतने करीब आ गये। अरुण ने गौर किया पन्द्रह मिनट की मियाद तो बहुत पहले ही बीत गयी।... वह मन-ही-मन डर रहा था कि रुनू को जाने की याद न आ जाए।

रुनू तो बस एक सुर में अपनी ही बातें किए जा रही थी, "जानते हैं मिलने-जुलने को तो मेरा भी मन करता है...लेकिन आऊँ कैसे? मुझे अगर लौटने में जरा भी देर हो जाती है तो मामी परेशान हो उठती हैं। मैं जब तक घर नहीं पहुँचती मेरी ममेरी बहन भी पढ़ने नहीं बैठती।"

रुनू अपने घरवालों के बारे में अनर्गल सूचनाएँ दिए जा रही थी। उसके बापू कैसे गाँव में रहकर गृहस्थी चलाते हैं। काका लोगों को उसका कॉलेज जाना बिलकुल पसन्द नहीं है। मामा डाक्टरी करते हैं, अतः वह उसे अपने साथ कलकत्ते ले आए। "देखिए, पढ़-लिखकर मैं भी अगर कोई नौकरी-चाकरी कर लूँ तो घरवालों को थोड़ा सहारा..."

यह सब बताते हुए रुनू का चेहरा बेहद सहज और सरल हो आया। अचानक उसने पूछा, "उस दिन मुझे ठहाका लगाते देखकर, आपने सोचा होगा, मैं बहुत बुरी लड़की हूँ न?" रुनू यह पूछते हुए अचानक शरमा उठी।

अरुण ने कहा, "नहीं, मुझे तो गुस्सा आ रहा था। सुजीत ने

अभी हो..

आपका हाथ जो छू लिया था।"

"धत्त् ! जलाघुर कहीं के।"

अरुण हँस पड़ा, "आपको दूसरों की बातों पर हँसते देखकर मुझे जलन होती है, यह भी क्या मेरा कसूर है ?"

रूनू गम्भीर हो उठी, "उस दिन आपने जो पंख दिया था, मैंने घर के तमाम लोगों को दिखाया है, वाकई वह पंख बहुत खूबसूरत है।"

तमा—म लोगों को दिखाया है। तमा—म लोगों को। अरुण ने उसे कुछ दिया या कहा था, वह इसलिए तो नहीं कि वह और लोगों को दिखाती या बताती फिरे। उसे यह सुनकर शायद अधिक खुशी होती, अगर वह यह कहती कि वह पंख उसने किसी को नहीं दिखाया।

रेस्तरां से निकल कर भीड़ भरे रास्ते पर साथ-साथ चलते हुए अरुण कई बार रूनू की देह से टकरा गया। अरुण को यह सोचते हुए अच्छा लग रहा था कि यह स्पर्श अनिश्चित या आकस्मिक नहीं है। उसे इस ख्याल से खुशी हो रही थी कि रूनू भी उसे प्रश्रय दे रही है।

अरुण का मन हो रहा था वह ढेर-ढेर बातें करे। उसका जी हुआ कि वह उससे अभी, इसी दम कहे, "देखो, हम लोगों के सामने भविष्य का कोई नक्शा नहीं है। हममें कहीं कोई सामंजस्य भी नहीं है। ऐसे में हमें जो दिख जाए, उसे फौरन उसी वक्त उठा लेना होगा, वरना इस अफरातफरी, इस भीड़ में सब गुम हो जाएगा—सब्ब !"

रूनू से अलग होते हुए अरुण ने कहा, "पता नहीं क्यों, आपसे बातें करते हुए बहो—त अच्छा लगता है। जी होता है आपसे घंटों बातें करता रहूँ। इतनी देर आपके साथ था, बेहद अच्छा लगा।"

रूनू ने शरमाकर निगाहें झुका लीं।

अरुण को समझ नहीं आया कि उसका पागलपन भरा प्रलाप सुनकर वह मन-ही-मन नाराज हो उठी है या सिर झुकाकर हँसी दबाने की कोशिश कर रही है। अतः उसने फौरन एक वाक्य और जोड़ दिया, "अलबत्ता, आपको कोई एतराज हो तो···" कहते-कहते उसकी आवाज अभिमान से भारी हो आयी।

रूनू ने उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। उसकी ओर पलट

कर देखा भी नहीं। अस्फुट आवाज में सिर्फ इतना भर कहा, "अच्छा, कल···इसी वक्त।" और वह बस की भीड़ में ओझल हो गयी।

बस, और कुछ नहीं, सिर्फ "कल···इसी वक्त।"

गली से दिखता हुआ, आसमानी फीता अचानक फैलकर बड़ा-सा आकाश बन गया।

एक बार सुजीत ने कहा था, "हम लोगों के पास कहीं कोई रंग नहीं होता। जो है सब नकली! सब झूठ!"

लेकिन आज अरुण रंगों की दुनिया में डूबता चला गया। नीम का विशाल वृक्ष अचानक बेहद खूबसूरत लगने लगा। पत्तियों का गहरा हरा रंग आँखों को ठंडक दे गया। आज उसे ट्राम की आवाज भी बड़ी मीठी लगी। कहीं दूर से आते हुए दमकल की तेज घंटियाँ! घंटियों की तीखी आवाज मानो उसकी उत्तेजना की प्रतिध्वनि हो। वह खुद भी मानो एक दमकल बन गया हो···दौड़ रहा है··· दौड़ता जा रहा है। लेकिन सुजीत और टिकलू उसे कभी नहीं समझ पाए। वे सोचते हैं, प्यार-मुहब्बत जैसे कोई हँसी-मजाक की चीज है।

कमाल है! अरुण भी उन्हें कुछ समझा नहीं पाता है। अब तो उनसे कुछ कहने की भी तबीयत नहीं होती है। कितनी भी सहज और सुन्दर बातें हों, उन्हें बताने का मन भी नहीं करता। सब छुपा लेने का मन होता है। यूँ भी हर बात, हर किसी को बतायी भी तो नहीं जाती।

···उस दिन छोटे मौसा उसे रुनू के साथ हॉल से निकलते हुए देख लेते, तो? हुँह, अब वह परवाह भी नहीं करता। अरुण अचानक बेपरवाह हो आया। घर वाले उसे रुनू के साथ देख भी लें, तो क्या हुआ।

असल में रुनू के मन का खौफ तोड़ते हुए वह खुद लापरवाह हो उठा।

"अरे, पागल राम, रास्ते में खड़े बात करते हुए या किसी चाय की दूकान में बैठे हुए, अगर कोई देख भी ले, तो कोई बहाना बनाया जा

सकता है।" रूनू उसकी दीवानगी पर हँस पड़ी, "लेकिन पार्क-वार्क में कोई देख ले तो क्या सफाई दूंगी ?"

यह उसके मन का भय है या शरारत, अरुण समझ नहीं पाया।

···लेकिन मजेदार बात तो यह है कि रूनू के संग फिल्म देखते हुए उस पर किसी की भी निगाह नहीं पड़ी। वही जब उर्मि के साथ सिनेमा गया तो सबने देख लिया।

"यार, अपन जिन्दा हैं या नहीं, कभी-कभी तो यह भी पता नहीं चलता। साली, जूते में बालू भरी हो तो, माँ कसम, चलने में बड़ा मजा आता है।" टिकलू एक दिन बाप से झगड़कर आया था और जुबान से खाली-पीली कड़वाहट बिखेर रहा था।

वैसे उसने झूठ नहीं कहा था। अरुण ने भी राह चलते हुए यही महसूस किया था कि पैरों के नीचे बालू खिसखिसा रहा है। घरवालों के सामने वह अपराधी बना खड़ा है—शातिर खूनी ! बापू गरज-गरज कर धमकियाँ दे रहे हैं। जब यह नहीं हुआ तो माँ ही अगर चीख-पुकार मचाती तो भी गनीमत थी। तब तो वह भी दो-चार बातें सुना देता। लेकिन घर में सबकी जुबान सिली हुई थी, सब चुप ! मानो कुछ हुआ ही न हो। छोटी मौसी आयी और चली गयी मानो उन्होंने किसी से कुछ भी नहीं कहा।

और दिदिया ? कहने को उससे सिर्फ चार साल बड़ी है, लेकिन धौंस ऐसा जमाती है, मानो, उसकी माँ की उम्र की हो। हर वक्त लम्बे-लम्बे लेक्चर !

"माँ कितनी दुखी हो रही थी। आजकल उन्हें फिर बुखार रहने लगा है। माथे का दर्द भी बढ़ गया है। कभी-कभार ही सही, तू उनकी तबीयत के बारे में पूछ तो सकता है !"

अरुण तो खुद भी चाहता था कि वह माँ से उनकी तबीयत के बारे में पूछताछ करे। लेकिन माँ सोचेगी कि वह छोटी मौसी की निगाहों में पकड़ा गया है, इसी से चापलूसी कर रहा है, अतः वह अपना यह इरादा टाल गया। लेकिन दिदिया की बात सुनकर वह झुंझला उठा, "अरे जा ऽ—जा तुझे सलाह देने की जरूरत नहीं है।"

···दिदिया को 'जल हस्ती' नाम उसी ने दिया है—एकदम सटीक ! दिन-रात सिर्फ घाँव-घाँव किया करती है। मजे से खा-पीकर खर्राटे भरती है और मुटियाती जा रही है,! जब सोती है तो घर्र ! घर्र ! खर्राटे भरती है। उसके चेहरे-मोहरे मे, बातचीत मे, कही जरा-[illegible] भी [illegible] नहीं है ! ठेठ ! जैसे कोई गँवार बहुरिया मेले में चकला-

ा ! सुना है, अक्षय दा ने उसे देखते ही
ब्याह के ले गये थे। अरुण को तो यह
अक्षय दा को उसमें आखिर ऐसी कौन-सी
न ही जाने। हो सकता है, उनकी निगाह
मे रुपये भी तो कम नही लुटाये गये।
लड़की के हमेशा कर्जदार बने रहे।
करी है। जब एक जगह से दूसरी जगह
रने से पहले, वे दो-चार महीने के लिए
। इन दिनो भी वह ड्राइंग-रूम पर कब्जा
वह इतना गन्दा रखती है कि अगर कभी
उन्हे उस कमरे मे बैठाया तक नही जा
के लिए उसके बापू भी जिम्मेदार हैं।
नदीक एक कस्बे मे रहते थे। तनखाह भी
है कॉलिज भी नही था। उन्हें लड़की को
थी। अतः इतनी छोटी उम्र मे ही बापू

ाखा चीज तैयार हो रही है—यह मीलू
दुलार ने उसका दिमाग खराब कर दिया
जँचती है, जरूरी है, कि तुम पर भी
वार की लड़की। अठारह साल की धींग
ाउज पहनती है—आधे पेट का ! कितनी

[illegible] मीलू उसके यहाँ आ जाते हैं, तो वह खुद ही शर्म से गड़ जाता है। वे सब मीलू को लेकर आपस मे जाने क्या-

क्या कहते-सुनते होंगे ! लेकिन गनीमत है कि मीलू दिदिया की तरह फूहड़ नहीं है।

मीलू कम-से-कम मीठी-मीठी बातें करना जानती है। वैसे उसका मन काफी खुला है। वह अरुण को अपनी सब बातें बता देती है। बकवादी भी तो कम नहीं है।

एक दिन घर पर उसके कॉलेज की सहेलियाँ आयी थीं। मीलू अरुण को खींच ले गयी और उनसे परिचय कराते हुए कहा, "ये मेरे भइया हैं ! लेकिन जानती है टूलू, यह मेरा पक्का दोस्त भी है। मैं इसे अपनी सब बातें बता देती हूँ।" वह हँसने लगी।

"तूने वो ऽ—बात भी बता दी ?" टूलू नामक लड़की ने इशारे-इशारे में जाने क्या पूछा।

मिलू हँसते हुए लोट-पोट हो गयी, "अरे हाँ, भइया वह बात तो तुझे बतायी ही नहीं—जानता है, उस दिन हम लोगों ने खूब मजा किया—"

अरुण उन लोगों के बचपने पर हँस पड़ा। पूछा, "क्यों ? क्या किया था ?"

"उस दिन दोपहर को मैं इन लोगों के यहाँ गयी थी। वहाँ क्या करूँ—क्या न करूँ, इसी उधेड़-बुन में पड़ी थी। अचानक टेलीफोन की डाइरेक्टरी देखकर न···" मीलू अचानक हँसते हुए लोट गयी। उसका हँसी के मारे बुरा हाल था।

टूलू भी हँस रही थी। उसने हँसते-हँसते उसकी बात काटते हुए कहा, "उसके बाद की बात मैं बताती हूँ। हम लोग नाम चुन-चुनकर नम्बर मिलाते रहे। नाम तो खैर, हमें भी नहीं मालूम था। बस, नम्बर मिलाकर बतियाते रहे। और वो बुड्ढे-बुड्ढे लोग हम लोगों का पता-ठिकाना जानने को, हमसे मुलाकात करने को बुरी तरह बेचैन हो उठे।"

अरुण सारा मामला समझ गया। लेकिन उस समय मीलू की सहेली के सामने हँसना ही पड़ा। वह मन-ही-मन मीलू पर नाराज हो उठा। उसे इन मामलों में पड़ने की क्या जरूरत है ?

लेकिन वह सख्त आवाज में मीलू से भी कुछ नहीं कह पाया। सारा घर उसके खिलाफ है, कोई उसे समझने को राजी नहीं है। कोई उसे समझने की कोशिश भी नहीं करता। सिर्फ तोहमतें और अभियोग! यह मीलू ही उसे थोड़ा-बहुत समझती है। उसके लिए सिर्फ मीलू के दिल में ही थोड़ी-बहुत माया-ममता है। उस दिन अगर उसे नाराज कर देता तो उसे पता ही न चलता कि आज छोटी मौसी उसके खिलाफ क्या-क्या लगाई-बुझाई कर गयीं।

मौसी ने क्या कहा होगा, अरुण यह अन्दाज लगा सकता था। लेकिन उस बात को लेकर माँ और बापू में उसके विरुद्ध क्या कहा-सुनी हुई यह पता नहीं चल सका।

मीलू से खबर लेने के लिए वह उसके स्टडी-रूम में घुसा। उसके कदमों की आहट पाकर मीलू ने झट से कुछ छुपा लिया। वह शायद कुछ लिख रही थी। कहीं प्रेम-पत्र वगैरह तो नहीं लिख रही थी?

मीलू कागज छुपाते हुए अरुण की तरफ घूमकर खड़ी हो गयी, "एई, भइया!" उसने दबी आवाज में कहा, "तेरे गले में जल्दी ही फाँसी का फन्दा लगने वाला है।"

"मतलब?" अरुण सिहर उठा।

"तेरे कन्धे पर जबर्दस्त जिम्मेदारी लादी जाने वाली है।"

मानो घर भर की जिम्मेदारी अपने सिर पर लेने के लिए ही तो अरुण इस घर में पैदा हुआ है। बाप-माँ का दिल खुश करते हुए चलो, उनकी बातों को हुक्म मानकर चलो। अपनी इच्छा अनिच्छा स्पष्ट करने का कोई हक नहीं है। अरुण खीज उठा। अच्छा, वे लोग अब बड़े नहीं हो गये? उन लोगों में जैसे कोई अक्ल ही नहीं है। उन्हें हर वक्त यही भय खाए जाता है कि उनके लड़के किसी झूठी लड़की के प्रेम में न पड़ जाएँ। अगर रुनू जैसी कोई लड़की इस घर में आ गयी तो उनकी गरीबी और नंगी हो जाएगी। धुँए और धूल से अँटी दीवारों पर सफेदी फिर जाएगी। अरे, हटो, इस घर में भला कभी सफेदी होगी? यहाँ बिजली के तार तक तो वही बाबा आदम के जमाने के हैं। इतने बरसों में कभी कुछ बदला ही नहीं गया। जरा-सा कुछ होता है

और फट् से फ्यूज हो जाता है। कौन-सा तार कहाँ से शॉर्ट हो जाता है, पता ही नहीं चलता। फ्यूज का तार वदल देने से भी कोई फायदा नहीं होता। अव दौड़ो, साले विजली मिस्त्री की तलाश में।

"अमाँ, यार! अगर हम सव कोई मिस्त्री-विस्त्री भी वने होते तो किसी काम के होते।" सुजीत ने कहा था, "पाँच-पाँच वार साले मिस्त्री को वुलाने जाओ, तव कहीं वह आएगा।···वस, जरा-सा पेंचकस घुमायेगा और झट् से दो रुपये सटक लेगा।"

"···और ऊपर से क्या रौव!" टिकलू ने तेज आवाज में कहा, "तू अपनी रून्नू को लेकर एक रुपये पचास पैसे में ही फ्लैट हो जाएगा, लेकिन वह खट् से तीन रुपये वाली टिकट खरीदकर शान से हॉल में घुसेगा।"

सुजीत ने क्षुब्ध आवाज में कहा, "तू ठीक कह रहा है। हम लोग हैं कि चकरघिन्नी की तरह नौकरी ढूँढ़ते फिर रहे हैं और···।"

सुजीत के पास नौकरी के अलावा जैसे और कोई वात ही नहीं है। उसकी वातें सुनते हुए अरुण अपने को जाने कैसा असहाय महसूस करता है। एक दिन माँ ने कहा था, "नवीन वावू का वेटा रतन है! रतन!! जितना शरीफ है, उतना ही तेज़! अव तो नौकरी भी करने लगा है। साढ़े पाँच सौ रुपये तन्खाह है।" हो सकता है, माँ ने यूँ ही कहा हो, लेकिन उनकी वात सुनकर, अरुण का मन हुआ था कि इमामदस्ता में अपना सिर कूट ले। हुँह! सव साले रतन हैं। माँ तो जिसे भी देखती है, सव भले नजर आते हैं—वस सिर्फ अरुण ही वुरा है। वचपन से यही एक वात सुनते-सुनते अव तो उसे अपने से और अपने साथ-साथ शायद माँ से भी नफरत होने लगी है।

सुजीत की वात सुनकर उसका वही पुराना गुस्सा फिर उभर आया, "क्यों? विना तन्खाह की गुलामी तो करते ही हैं। घर का सारा तार वदलना है—चलो, मिस्त्री की खुशामद करो। साला, प्रीमियम देने में देरी हो जाए तो लिफ्टमैन से लेकर काउण्टर तक खिसियानी-सी मुस्कान विखेरो।"

अरुण के मन में विजली के तार वदलने को लेकर जितना गुस्सा

नहीं है, उससे अधिक उसे मिस्त्री की खुशामदें करना बुरा लगता है। "उस पर से ग्राहक लोग उन्हें सिर पर बिठाकर नाचते हैं। हुँह ! नाचने दो न ! बउआ, अगले आठ महीनों में ही उनको मर्दानगी की आजमाइश हुई जाती है।"

"ठीक कह रहा है।" टिकलू हँसा, "मर्दानगी के टेस्ट में सब साले पकड़े गये···सबकी लाइन बिलकुल शॉर्ट सर्किटवाली थी।"

सुजीत ने विरोध किया, "साले, सूली पर चढ़ाकर जिसे चिर-मुक्ति देने को बुलाया था, उसकी जात पूछने से क्या फायदा ?"

"हुँह ! चूल्हे में जाए पॉलिटिक्स।" अरुण को इन सब विषयों में सिर-दर्द मोल नहीं लेना है। असल में बेकार के झूठ-झमेले उसे अच्छे नहीं लगते। उसने बापू से भी कई बार कहा है कि समूचे घर का तार बदलवा डालें। बापू को तो बस, एक ही रट है—

"····अरे किराये का मकान है—यहाँ आज हैं कल नहीं ! यह सब करवाकर आखिर क्या होगा ?"

···घर—घर है ! किराये का है या पैतृक·· यह सोचने से क्या फायदा ? अरे, उनको तो वह तब समझता, जब वह जमीन-जगह खरीद कर, कोई और इन्तजाम करते। यहाँ रहना तो हमें ही है न ?···जरा निश्चिन्त होकर आराम से रहना चाहें तो इसमें बुराई क्या है ?···माँ भी उसी तरह की हैं। अरुण ने कुछ पर्दे खरीदने का आग्रह किया, तो झट से कह दिया, "किराये के घर में इतनी साहबी किस काम की ?"··· सारे बल्ब नंगे-नंगे दिख रहे थे, शेड लाने को कहा तो जवाब मिला, "पराये घर में यह करने से क्या फायदा ?"

गुस्से से उसकी सारी देह गनगना उठी। वह बेहद असहाय और रुआँसा हो आया, "जानती है मीलू, यह लोग जीवन जीना नहीं जानते। अरे, हम लोगों ने अगर अभी ही जीवन को भरपूर नहीं जिया, तो क्या बुड्ढे होकर···? बस, एक मकान खड़ा कर लो और जिन्दगी भर उसकी खिड़की-दरवाजों की धूल झाड़ने में अपने को खत्म कर डालो ? इन सबसे हमें आखिर क्या मिलेगा ?"

मीलू ने भी उसकी हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा—"सचमुच ! यह

लोग तो बस, पैन्डोरा का बक्सा खोलने में लगे हैं। इन सबसे उन्हें आखिर क्या मिलेगा ? सिर्फ कोरे सपने ! आशा ! इसके बजाय, हमें जो मिलना है, वह अभी···बिल्कुल अभी ही मिल जाए, चाहे थोड़ा-थोड़ा करके ही सही, बस, मिलता रहे, तो इसमें क्या बुराई है ?"

अरुण भी तो यही चाहता है। सब कुछ चाहे थोड़ा-थोड़ा मिले लेकिन टुकड़ों-टुकड़ों में हमेशा मिलता रहे। ऐसे में जो कुछ बूंद-बूंद भी मिलता है, उसी में आदमी कितनी तृप्ति महसूस करता है। यह रूनू भी तो उसे थोड़ी-थोड़ी करके मिल रही है···लेकिन, अभी···इसी दम मिल तो रही है !

···फिर भी जाने कहाँ, थोड़ा-सा असन्तोष रह जाता है !

मीलू से जिम्मेदारियों का आभास पाते ही, अरुण को रूनू की बातें याद आने लगीं।

रूनू की भी यह अजीब आदत है ! मुलाकात करने आएगी तो कहीं दो पल एकान्त में बैठकर बातें करने के बजाय बार-बार सिर्फ घड़ी देखती रहेगी। मानो वह अरुण के पास जाने के लिए ही आती है।

"देख रहा हूँ। यह घड़ी ही मेरी दुश्मन निकली।" अरुण ने हँस-कर कहा, "मेरी तरफ तो तुम एक बार भी नहीं देखती, उसका मुखड़ा मिनट-मिनट में निहारती हो।"

रूनू हँस पड़ी, "इश्श्···क्या गुस्सा है ! लेकिन, मेरा क्या घर-द्वार नहीं है ?···मुझे लौटना नहीं है ?"

अरुण आखिर क्या करे ?···बस, मन-ही-मन हल्का-सा अभिमान जाग उठा।

रूनू ने पलकों में संवेदना की स्निग्ध छाँह बिखेरकर कहा, 'एई, सुनो, परसों मैं तुम्हारे पास बहुत देर तक रहूँगी। देखना,···ब—होत देर तक।"

उसी परसों वाली उजली-धुली शाम को माँ किसी पुराने पर्दे की तरह, एक बारगी चिथड़े-चिथड़े करके बाहर फेंक देगी—यह उसने सोचा भी नहीं था।

मीलू से सारी खबर पाकर, वह गुस्से से तिलमिला उठा। उसके जीवन का ऐसा अविस्मरणीय दिन! ऐसे मुहूर्त में अचानक कोई बाधा न आती तो क्या दुनिया का सारा काम बन्द हो जाता? यह दिदिया भी न एक नम्बर की आफत है। न्यूसेंस!···अगर पाँच दिन बाद चली जाएगी, तो जैसे कुछ बिगड़ जाएगा।

'जबरदस्त जिम्मेदारी' अरुण गुस्से में भी हँस पड़ा। जल-हथिनी जैसी दिदिया को कन्धे पर चढ़ाकर पहुँचा आना होगा। सचमुच जबरदस्त जिम्मेदारी ही तो है।

वह अपने कमरे में आकर ट्राउजर उतारकर पायजामा पहन ही रहा था कि माँ मुस्कराते हुए सामने आ खड़ी हुईं। उन्हें मुस्कराते देखकर, वह सिर-से-पाँव तक जल-भुन गया।

उनकी तरफ न देखते हुए भी अरुण ने गौर किया, माँ बाएँ हाथ से माथा दबाए हुए हैं। और कोई वक्त होता तो वह फौरन पूछता, "तुम्हारा सिर-दर्द क्या बढ़ गया है? न हो, चलो एक दिन पी० जी० अस्पताल में दिखा लाऊँ।"

लेकिन आज यह सब बातें करने की तबीयत नहीं हुई।

माँ ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा, "तुझे परसों पटना जाना होगा!"

"क्यों?" सब कुछ जान-बूझकर भी वह मार खाए कुत्ते-सा झुँझला उठा।

माँ ने कहा, "अक्षय को छुट्टी नहीं मिली। उसने लिखा है, बुलू को तेरे साथ भेज दिया जाए। उसके न आने से·······।"

"मुझसे नहीं होगा!"

"अरे, यह क्या कहता है रे! अगर तू उसे नहीं ले जाएगा, तो वह और किसके साथ जाएगी?" माँ की आवाज में अनुनय ढुलक पड़ा।

अरुण ने खीजकर कहा, "मुझसे नहीं होगा! नहीं होगा!! नहीं होगा!!! इस वक्त मैं कहीं नहीं जा सकता।"

माँ थोड़ी देर को चुप हो रही। सिर्फ अवाक् नजरों से अरुण की

तरफ देखती रहीं। धीरे-धीरे उनके चेहरे पर तीखी खीज झलक उठी। जितनी जोर से अरुण चिल्लाया था, वह उससे भी अधिक जोर से चीख उठीं, "हाँ—हाँ, मैं जानती थी। तुझसे कु—च्छ नहीं होगा! तू बिल्कुल रसातल में जा चुका है! बिल्कुल रसातल में!"

अरुण का जी हुआ, वह रो दे। उर्मि के साथ एक दिन सिनेमा चला गया, इसीलिए बिल्कुल रसातल में चला गया? अगर माँ उससे साफ-साफ बात कर लेतीं तो वह भी अपनी तरफ से उन्हें कोई सफाई दे पाता।

अक्षय को लेकर, यही एक झमेला है। तबादले की नौकरी आज यहाँ, कल वहाँ। हुक्म मिलते ही झटपट चल देना पड़ता है। जितने दिन घर-बार का इन्तजाम नहीं होता, बुलू को मायके भेज देता है या हो सकता है, बुलू ही ससुराल में न रहना चाहती हो।

उसके आने से कनकलता खुश हो जाती हैं। इसी बहाने बड़ी बेटी बीच-बीच में उनके पास रहने चली आती है। वैसे भी वह पराये घर जा चुकी है, इस वजह से उसके आदर-सम्मान में कहीं कोई कमी नहीं आती। कनकलता समझती हैं, बहुत बढ़िया ब्याह न दे पाने के बावजूद, बुलू ने कभी कोई उलाहना नहीं दिया। बल्कि माँ-बाप पर सबसे अधिक उसी की ममता है।

कनकलता की तबीयत दिनोदिन गिरती जा रही थी। माथे में भीषण दर्द और आजकल शाम होते-न-होते हरारत हो आती है। वैसे वह काम-काज सब करती हैं। रसोई का काम भी वही सम्हालती हैं, लेकिन बुरी तरह थक जाती हैं। बेटे को ही क्यों दोष दें, सगा पति ही आधे से अधिक वक्त उनकी खोज-खबर नहीं लेता।

"बीमारी को दबाए रखना तुम्हारी खास आदत है!" एक दिन प्रकाश बाबू ने उलाहना दिया था।

कनकलता ने कोई जवाब नहीं दिया। मारे अभिमान के उनकी आँखें छलछला आयीं। "बीमारी को दबाए रखना, तुम्हारी आदत

है",······अगर दबाए न रखें, तो क्या करें ? पाँच सालों से तो इस रोग को अन्दर-ही-अन्दर पाल-पोस रही हैं।

पहले-पहले उन्हें यही लगा था कि आँखें खराब हो गयी हैं। आँख के डाक्टर को भी दिखाया गया। दवा-दारू भी करके देख लिया। किसी से कोई फायदा नहीं हुआ। इसके अलावा वह और कर भी क्या सकती हैं ? हमेशा सबके सामने अपने रोग का रोना रोती रहें ? आदमी बाहर से थक-हारकर घर आता है, पाँच तरीके की और झंझटें ! उसके आगे हर वक्त अपनी देह का रोना भला लगता है ? नहीं, अरुण को भी भला नहीं लगेगा। अरुण को भी कहने की क्या जरूरत है ? अगर उसे दर्द होता, तो वह खुद भी किसी बड़े डॉक्टर का इन्तजाम कर सकता था।

बीच-बीच में बुलू ने ही अरुण को टोका है, "अरुण, माँ को अस्पताल ले जाकर, उन्हें एक बार दिखा ला न···।" वह जितने दिन यहाँ रहती है, माँ से जोर-जबरदस्ती करके आधा काम अपने जिम्मे छीन लेती है। काफी रात गये तक वह माँ का माथा दबाती है। दोपहर को चटाई बिछाकर माँ के पास लेटी-लेटी बातें किया करती है। बुलू के न रहने पर कनकलता इस घर के लिए खुद को बेहद परायी-परायी महसूस करती हैं।

इस वक्त सारी समस्या बुलू को पहुँचाने की है। घर ठीक-ठाक करके, अक्सर अक्षय ही आकर उसे लिवा ले जाता है। पुराने घर से सर-सामान उठाकर, नये घर में नये तरीके से सजाने की जरूरत आ पड़ती है। ऐसे में बुलू के गये बिना काम नहीं चलता।

अक्षय का खत पढ़कर प्रकाश बाबू ने कहा, "ऐसा करो, अरुण ही जाकर उसे छोड़ आए। अभी तो उसे काम भी नहीं है। इसके बाद इण्टरव्यू वगैरह का झमेला आ पड़ेगा।"

कनकलता अरुण को यही समझाने गयी थीं। वैसे उनका भी मन था कि बुलू को चार-पाँच दिन और रोक लें लेकिन अक्षय ने उन्हें दिन—तारीख और समय भी लिख दिया है। उस वक्त वह स्टेशन पर मौजूद रहेगा, यह भी लिख दिया है। इसके अलावा वे दामाद से

कहीं डरती भी हैं। कैसा गरम मिजाज का आदमी है वह !

कनकलता गुस्से में बड़बड़ाती हुई वापस लौट आयीं और पति को सुनाकर कहा, "तुम्हारे सुपुत्र ने साफ जवाब दे दिया है।...वह नहीं जा सकेगा।"

बुलू प्रकाश बाबू के पास ही बैठी थी। कहा, "मुझे पता था। मेरे साथ जाने में उसे शर्म आती है। मैं आजकल की लड़कियों की तरह फैशनेबल जो नहीं हूँ......।"

प्रकाश बाबू को यह बात चुभ गयी। उन्हें लगा, बड़ी बेटी को गाँव-गढ़ी में रखकर बड़ा किया, बहुत पढ़ा-लिखा भी नहीं सके, शायद इसीलिए बुलू अपने पिता के खिलाफ उलाहने दे रही है। अतः उसकी बातों को नजरअन्दाज करते हुए तेज आवाज में कहा, "क्यों ? वह क्यों नहीं जा सकेगा ?"

"अब यह सब तुम ही पूछ देखो !" कहते हुए कनकलता सिर-दर्द से परेशान होकर तख्त के एक किनारे जा लेटीं।

प्रकाश बाबू ने आवाज दी, "अरुण !" उसके आते ही कहा, "परसों बुलू को पटना पहुँचा आओ ! अक्षय को अभी छुट्टी नहीं है।"

अरुण ने सिर झुकाए हुए कहा, "देखा जाएगा !" और वह उनके सामने से हट आया। यद्यपि वह जुबान से कह आया है, 'देखा जाएगा !' लेकिन मन-ही-मन यह भी समझ गया कि बापू की बात काटने का अब सवाल ही नहीं उठता। अगर वह उसी वक्त उनसे कोई बहाना जड़ देता, तो भी कोई बात थी।

अरुण अचानक बेहद असहाय हो आया। वह जैसे खुद ही अपने को माफ नहीं कर पा रहा है। मारे गुस्से के उसका मन हो रहा है कि वह खुद ही अपने को नोंच-खसोटकर टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

"बहुत देर तक रहूँगी तुम्हारे पास !...ब—होत देर तक।" अरुण मारे

अभिमान के टाला-टैंक[1] की तरह तन गया। लेकिन अगले दिन सुबह से ही उसके सिर पर एक नयी चिन्ता सवार हो गयी। रून् को सूचना देने का भी कोई उपाय नहीं है। वह आएगी, उसकी प्रतीक्षा करेगी और फिर लौट जाएगी। हो सकता है, वह उसे गलत समझ बैठे और फिर उससे कभी मुलाकात न करे। हो सकता है, वह उसे भी सुजीत और टिकलू की तरह हल्का-फुल्का समझ ले।

रून् का पता उसने कहीं सुना तो जरूर था, उसे याद भी है। लेकिन उसके घरवाले जाने कैसे स्वभाव के होंगे? उर्मि के घरवालों की तरह? अरुण को उन लोगों के बारे में कुछ भी नहीं मालूम, वरना उसे एक खत ही भिजवा देता।

अरुण का मन हुआ, वह टिकलू को सारी बात बता दे। उसकी जगह वह रून् से मिलकर, उसके न आ पाने का कारण बता देगा। लेकिन, नहीं! अरुण को यह बात भी नहीं जंची।

एक दिन टिकलू ने मजाक-मजाक में ही कहा था, "साले, दो-एक दिन अपनी जगह मुझे प्रॉक्सी देने दे न! माँ कसम···।"

सुजीत ने हंसते हुए बीच में ही टोक दिया, "अरे···अगर इतनी बड़ी छूट नहीं दे सकता, तो एक बार अपने साथ ही ले चल।"

अरुण उस बात को गोल कर गया।

उन लोगों का यह सस्ते किस्म का मजाक, उसे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। वह नहीं चाहता कि रून् के बारे में कोई किसी तरह की सस्ती बातें करे। रून् को वह सच ही प्यार करने लगा है। बे-हद बुरी तरह प्यार करने लगा है। इसीलिए तो वह उन लोगों के ये टुच्चे हंसी-मजाक बर्दाश्त नहीं कर पाता है।

"कोई बात नहीं! तू घबड़ा मत अरुण! उस लड़की ने विराम से पहले ही ट्रेनिंग ले ली है।" टिकलू ने फब्ती कसी।

अरुण का जी हुआ, उसे एक जोर का तमाचा जड़ दे। गिरी

१. टाला टैंक—कलकत्ते के पास का एक स्थान, जहाँ की बड़ी-बड़ी टंकियों में शहरभर के लिए पानी भरा रहता है।

हुई ! बुरी ! तुम लोगों की नजर में तो हर लड़की ही बुरी और गिरी हुई है। किसी लड़की की अगर किसी लड़के से जान-पहचान है, या किसी के साथ वह घूमती हुई दिखाई पड़ी···कि वह बुरी हो गयी। ब्याह करने के लिए साले सब-के-सब मॉडर्न लड़कियाँ चाहते हैं। उस समय कोई लड़की बुरी नहीं लगती।

···लेकिन कौन जाने···? रून् के प्रति शायद उसके मन में ही थोड़ा-बहुत अविश्वास है। दरअसल लड़कियों का मन तो चिड़िया होता है···एक डाल से उड़कर, दूसरी डाल पर जा बैठने में उन्हें कितनी देर लगती है ?··· विराम न हो तो कोई और सही ! अरुण के मन में हर वक्त यह डर समाया रहता है कि टिकलू या सुजीत रून् को कभी किसी और लड़के के साथ न देख लें। नहीं, उसे ईर्ष्या या जलन नहीं होगी। रून् को वह जानता है। लेकिन वह अपने उन दोस्तों के आगे छोटा हो जाएगा।

"भइया जी···कउनो एक भले मानुस आयन हैं। उनके साथ एक लड़की भी है !" सोना माँ ने अपने खुरदुरे हाथों को अपनी गन्दी साड़ी से पोंछते हुए, खबर दी।

अब कौन आ पहुँचा, मेरे बाप ? कहीं उसके स्कूल का दोस्त रोण्टू तो नहीं है। हो सकता है वही अपनी बीवी के साथ आया हो। इससे पहले भी वह एक दिन आया था। साले ने दाढ़ी-मूँछ निकलने के पहले ही ब्याह रचा डाला और मोटा रुपया लूट लाया। दहेज के रुपयों से मजे में बिजनेस कर रहा है और बेतहाशा रुपया पीट रहा है। बात-बात में वह अरुण को सलाह देने चला आता है—साला।

अरुण ने अपनी चप्पलों के लिए इधर-उधर नजर दौड़ायी। सोना-माँ ने कमरा पोंछते समय जाने कहाँ हटाकर रख दिया। किसी-किसी दिन चप्पल के लिए कितनी चीख-पुकार मचती है।

वह पाँवों में चप्पल डालकर धीरे से कमरे से बाहर निकल आया। इतनी देर में उसने सोच लिया कि वह उन्हें कहाँ बैठाएगा। जल-हथिनी दिदिया तो सारे घर पर कब्जा जमाए बैठी है। वह टले, तो जान बचे। लेकिन वह क्या इतनी आसानी से टलेगी···? जाने से पहले

थोड़ा-बहुत तकलीफ जरूर देगी।

"अरे, वह मसल है न···भूत पेड छोड़ने के पहले, और कुछ नहीं तो दो-एक डाल ही तोड़ जाएगा···दिदिया भी···।" अरुण ने एक दिन हँसी-हँसी में मीलू से भी कहा था।

"धत्···भइया! तू क्या है रे!" मीलू भी हँस पड़ी, "कुछ भी हो आखिर वह अपनी दिदिया है।"

"हाँ—सो तो ठीक है।" आखिर ये लोग उसके भी बाप-माँ हैं। सिर्फ ब्याह हो जाने से उसे परायी कैसे मान लें? इसमें हमारा भी क्या आता जाता है? लेकिन दिदिया बात-बात में जो खिट-खिट करती है, अपनी जाहिल-गँवार आदतों से बाज नहीं आती, इसीसे जहर चढ़ता है। अगर वह मीलू की तरह होती तो वह दिदिया को भी खूब प्यार करता···या अगर दिदिया ही उसे सचमुच खूब प्यार करती, तो वह भी उसे जरूर प्यार करता।···हुँह! बोगस! सब फालतू बात है! जब सगे बाप-माँ ही प्यार नहीं करते, तो दिदिया का क्या सवाल?

अरुण ने मीलू के स्टडी-रूम में झाँककर देखा। क्या खूब! मीलू को एक बुड्ढा-सा मास्टर पढ़ा रहा था। हुँह, बी० ए० में पढ़ रही है और अभी भी उसके लिए मास्टर लगे हैं।

अरुण बाहर दरवाजे तक आते-आते चौंक उठा, "अरे तुम लोग! मुझे तो अन्दाज ही नहीं था···।"

वह विराम और नन्दिनी को देखकर अचरज में पड़ गया। अब लो, माँ उससे पूछेंगी, "वो कौन लोग थे रे, अरुण?" तो वह क्या जवाब देगा? विराम की प्रेमिका?···काश, इन लोगों को जरा-सा भी दीन-दुनिया का ख्याल होता।

"बात क्या है? चल, बाहर चलें!" अरुण झटपट घर से बाहर निकल आया। वे लोग उसके पीछे-पीछे आ रहे हैं या नहीं, यह देखे बिना ही, वह जल्दी-जल्दी दो-चार कदम आगे निकल गया। घरवालों की नजर से दूर निकल आए, तो जान बचे।

विराम और नन्दिनी को उम्मीद थी कि अरुण उन्हें अपने यहाँ

बिठाएगा। बाहर से तो वह कितना मॉडर्न और आधुनिक बनता है, उर्मि के साथ हो-हुल्लड़ करता फिरता है।

उसके घर जाना इतनी बड़ी बेवकूफी है, उन्हें नहीं मालूम था। —खासकर नन्दिनी थोड़ा अप्रतिभ हो आयी।

गली का मोड़ पार करते ही, अरुण ने जुबान खोली, "तुम लोग अचानक कैसे ? चल, हम लोग किसी चाय-वाय की दुकान में चलकर बैठें !"

और कहाँ जाए ? चाय की दुकान ही उसके लिए ड्राइंग-रूम है। वैसे दुकान के बाहर गैलरी में भी बैठ सकते थे। लेकिन वहाँ बैठकर मन मुताबिक जी भरकर बातें नहीं हो सकतीं। टिकलू ठीक ही कहता है, "पॉलिश चढ़ा-चढ़ाकर अपनी बातें चमकाना, अपने बश की बात नहीं।"

विराम ने चाय की दुकान में कदम रखते हुए कहा, "चल, तुझसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं !"

विराम की आवाज और बोलने के लहजे से अरुण घबड़ा गया। ये लोग रूनू के बारे में तो कुछ कहने नहीं जा रहे हैं ? किसी तरह का तू-तड़ाक तो नहीं कर बैठेंगे ? हो सकता है, ये लोग एकदम से कहें, "तू इतना गिर चुका है अरुण ?" या कहें, "देख रूनू मेरी सगी बहन की तरह है···।"

अरुण का दिल धड़क उठा। वे लोग एक केबिन में जाकर बैठ गये। अरुण ने सामने का पर्दा खींचते हुए कहा, "हाँ, अब बता—"

इतनी देर बाद उसने नन्दिनी की तरफ निगाह डाली। नन्दिनी के चेहरे और आँखों में ऐसी गम्भीर चुप्पी थी कि उसे लगा कोई अतिशय गम्भीर बात है।

विराम ने अरुण की तरफ देखते हुए, अपनी बात शुरू की, "नन्दिनी, अपने घर से चली आयी है।"

"अरे क्यों ?" उसे दूसरे तरह के आतंक ने घर दबाया।

विराम ने ही दुबारा कहा, "कह रही है, अब वापस नहीं जाऊँगी।

अरुण, दो-चार दिन के लिए कहीं उसके रहने का इन्तजाम करना होगा।"

अरुण बिल्कुल स्तब्ध रह गया। विराम आखिर उसे समझता क्या है ? वह क्या नन्दिनी को उसके यहाँ ठहराने के ताल मे था ? कही वह पागल तो नहीं हो गया ? लेकिन उससे साफ-साफ तो कुछ कहा भी नही जा सकता ! रूनू ने क्या नन्दिनी को कुछ बताया नही होगा ? विराम भड़क जाएगा तो उसके बाप-माँ से चुगली जड़ देगा। नही ! नही ! वह ऐसा नही करेगा। लेकिन रूनू से उसकी कन्नी कटवाने में उसे कितनी देर लगेगी ? हो सकता है वह उससे झूठमूठ ही कह दे, अरुण गिरा हुआ आदमी है। शराब पीता है। गन्दी जगहो मे घूमता-फिरता है या उसकी तो बहुत-सी लड़कियो से लन्द-फन्द है…। हो सकता है, उसके साथ उर्मि का नाम ही लपेट दे।

उसने नन्दिनी की तरफ यूँ हँसकर देखा मानो वह सारी जिम्मेदारी लेने को तैयार हो। फिर कोमल आवाज मे कहा, "ऐसा पागलपन क्यों कर रही हैं आप ? मेरे ख्याल से आप घर लौट जाएँ।"

नन्दिनी को उससे शायद किसी आश्वासन की अपेक्षा थी। उसने सुनकर कहा, "मुझे आप लोगो के उपदेश की जरूरत नही है। अब मैं उस घर मे लौट कर कभी नही जाऊँगी।"

विराम थोड़ी देर चुप रहा, फिर अचानक कहा, "तू नही जानता, अरुण, उसका बड़ा भाई उसे…"

अपनी बात अधूरी छोड़कर विराम ने नन्दिनी की तरफ देखा। शायद वह यह जानना चाहता था कि यह बात उसे बता दे या नही। ·

अरुण को नन्दिनी की आँखों में फन काढ़े हुए सर्पिणी की छाया नजर आयी।

उसी क्षण नन्दिनी की आँखो मे आँसू आ गये, "देखिए, यह देखिए !" उसने एक झटके से कन्धे पर से साड़ी हटा दी, स्लीवलेस ब्लाउज के नीचे उजली बाहो पर कई नीले-नीले निशान उभरे हुए थे।

अरुण उन्हें देखकर सिहर उठा।

"मुझे भइया ने जूतों से पीटा है। फिर भी आप कहते हैं कि मैं लौट जाऊँ ?"

अरुण सोच रहा था, जाने किस मुसीबत में आ फँसा। यहाँ से छुटकारा मिले तो जान बचे लेकिन अचानक उसके तन-बदन में अजीब-सी उत्तेजना आ समायी। उसे लगा उनके लिए कुछ करना ही होगा।

विराम ने एक लम्बी-सी उसाँस भरकर कहा, "वाकई अजीब मुसीबत आ खड़ी हुई ! बोल न क्या किया जाए।"

"जी नहीं, मैं किसी के लिए मुसीबत नहीं बनना चाहती।" नन्दिनी की आवाज में झुँझलाहट थी।

अरुण को लगा इतनी मुसीबत के दिनों में भी, उसमें अतिशय अभिमान है।

विराम सहम गया। उसने अप्रतिभ होकर कहा, "नहीं-नहीं ! मेरा मतलब यह नहीं था···"

विराम ने शुरू से अन्त तक सारी घटना सुना डाली, फिर कहा, "लगता है, इसके भाई को हमारे मेल-मुलाकात की भनक पड़ गयी है। वह बात-बात में नन्दिनी को डाँट-फटकार दिलाता था। हर रोज उसे जल्दी घर लौट आने की हिदायतें देता था। सुबह बातों ही बातों में जोर की कहा-सुनी हो गयी···"

"मैंने भी उन्हें नहीं छोड़ा। जो मुँह में आया बोलती रही।" नन्दिनी ने लापरवाह लहजे में कहा।

अरुण थोड़ी देर को चुप रहा। कोई उपाय खोज निकालने की कोशिश में, वह मानो हताश हो आया। कहा, "मैं तो कहता हूँ, आप लौट जाएँ। मान लीजिए, आप लोगों के खिलाफ अगर कोई पुलिस-केस कर दे ?"

"मैं अब नाबालिग नहीं रही।" नन्दिनी ने पर्स खोलकर दिखाया, "देखिए, मैं अपना सर्टिफिकेट भी साथ लायी हूँ।" थोड़ी देर चुप रह कर उसने फिर कहा, "इसके अलावा अगर और कुछ नहीं कर पायी तो—कम-से-कम आत्महत्या तो कर सकती हूँ।"

अरुण मन-ही-मन और डर गया। उसे छुपाने के लिए एक जोर

का ठहाका लगाते हुए कहा, "···आप भी क्या आल्तू-फाल्तू बातें सोच रही हैं।"

विराम को देखकर लगा वह भी परेशान और निराश हो आया है, "जानता है अरुण, यह बिल्कुल सुबह-सुबह···पैदल-पैदल ही मेरे घर पहुँच गयी। कितना अपमानित हुई होगी तभी···"

"घर ?" अरुण ने सिर्फ कहने के लिए कहा। लेकिन साथ ही उसे अपने घर का ख्याल आ गया। 'वह लड़की कौन है और वह लड़का तेरा वही कॉलिजवाला दोस्त है न ? वह दोनों यहाँ क्यों आये थे ?'— साला, एक झंझट है ? किसी दिन रूनू तो कहीं ऐसा कांड नहीं कर बैठेगी ?···हटाओ अब प्रेम-प्रेम करने की जरूरत नहीं है। बिना बात के झमेला बढ़ जाता है।

"···तो फिर कोई होटल-वोटल···।" अरुण ने जैसे कुछ कहने के लिए कहा।

"ना बाबा ! उन जगहों में मुझे डर लगता है।" नन्दिनी ने फौरन मना कर दिया।

विराम ने अपनी हथेलियाँ नचाते हुए पूछा, "इसके लिए रुपया भी कहाँ है ?"

अरुण ने अपनी घड़ी पर निगाह डाली। सिटी ऑफिस जाकर, कल का टिकट खरीदना है, दिदिया के साथ पटना जाना है। इधर इस समस्या का कोई हल नहीं दिख रहा है।

अरुण ने चाय की प्याली रखते हुए, पैसे गिनकर प्लेट में रख दिए और उठ खड़ा हुआ, "चल, टिकलू को बुला लाएँ। इन सब मामलों में उसका दिमाग बहुत तेज दौड़ता है।"

टिकलू अपने दाँतों पर ब्रश रगड़ता हुआ बाहर निकल आया। खाली बदन। उसके पायजामे का नाड़ा घुटनों तक झूल रहा था।

अरुण ने संक्षेप में सारी कहानी सुनाकर कहा, "नुक्कड़ पर वे लोग खड़े हैं। चल जल्दी से शर्ट पहनकर आ।"

टिकलू सारी कहानी सुनकर हँस पड़ा जैसे किसी ने बहुत बड़ा मजाक किया हो। उसने हँसते-हँसते कहा, "तो यह बात है !···दरोगा

बाबू गोश्त सटकेंगे, इसके लिए मुर्गी मैं पालूं ?"

"स्टुपिड् !" अरुण के तन-बदन में आग लग गयी। उसे याद आया, अभी थोड़ी देर पहले उसने नन्दिनी की आँखों में आँसू देखा था। "और कुछ नहीं होगा, तो आत्महत्या तो कर सकती हूँ," उसके वे शब्द अरुण के कानों में दुबारा बज उठे।

"देख टिकलू। यह बहुत सीरियस मामला है।" अरुण ने कहा।

टिकलू फिर हँस दिया। कहा, "अरे, धत्त् !···सारा मामला सोडे की बोतल की तरह आसान है। अबे, अँगूठा लगाकर ब्याह कर ले और दुअन्नी का सेंधुर लाकर उसकी माँग में भर दे और घर चला जा। जाकर माँ के पैरों पर गिर जाना, माँ···माँ तेरे लिए एक दासी ले आया हूँ।"

उर्मि को सारी रिपोर्ट टिकलू ने दी। उर्मि मारे हँसी के बेहाल हो गयी। उसने पर्स की चेन खोली—चुर्र-र्-र्—झट् से पाँच पैसे का एक सिक्का निकालकर टिकलू के हाथ पर रख दिया। उन लोगों में यह खास नियम था। उनमें से कोई भी जब कोई चटपटी-सी बात कहेगा, उसे पांच पैसे इनाम में दिये जाएँगे।

टिकलू ने कहा, "इस बार पाँच पैसे से काम नहीं चलेगा, जी० एफ० ! कुछ ज्यादा छोड़ना होगा।"

अन्त में टिकलू ने ही सुधा के यहाँ नन्दिनी के लिए कुछेक दिनों रहने का इन्तजाम कर दिया। कहा, "लेकिन भई, माँ कसम, वे लोग भी बिना शादी-ब्याह के इस हुज्जत में पड़ने को राजी नहीं हैं।"

विराम ने कहा, "भई, ब्याह तो हम लोग खैर, कर ही लेंगे। लेकिन दो-चार दिन···मेरा मतलब है, रजिस्ट्री-ब्याह के लिए भी पहले से नोटिस देनी होगी। इसके लिए रुपया चाहिए···"

टिकलू ने हँसकर कहा, "नोटिस ?···साला ! साला, ये रुपये फिर कब काम आएंगे।" उसने जेब से एक बिल निकालकर दिखाया। उसके बाप ने उसे तगादा लाने को दिया है। रुपयों की वसूली कर पाया, तो उसने सोचा था, उसमें से दो पाँच रुपये झाड़ देगा।

लेकिन जिसके पास रुपया बाकी था, उसने चुकाये ही नहीं।

अन्त में पोस्ट-ऑफिस से उर्मि को फोन किया, "सुन, बहुत जरूरी काम है। फौरन कॉफी-हाउस चली आ।"

सुजीत ने राय दी, उर्मि रुपये का इन्तजाम जरूर कर देगी।

टिकलू ने कहा, "कल अगर उस साले ने बकाया रुपयों में से थोड़ा बहुत भी नहीं दिया तो या तो वह जिन्दा रहेगा या मैं। कल परसों में ही इन दोनों का ब्याह कर देना है।"

सारा दिन दौड़-धूप और आशंकाओं में कट गया। इधर पुलिस का भी डर था, कौन जाने नन्दिनी के भाई ने थाने में रिपोर्ट न लिखवा दी हो।

अरुण और टिकलू जब नन्दिनी को सुधा के घर छोड़कर वापस लौटे तो अरुण को याद आया। सारे दिन की दौड़-धूप और जिन्दगी के अनिश्चित भविष्य की बात सोचकर, नन्दिनी का चेहरा जाने कैसा तो हो आया था। लग रहा था उसकी आँखें बिल्कुल ब्लैंक हैं। अब वह कुछ भी देख-सुन नहीं रही है। अजीब बुद्धू-बुद्धू-सी भावहीन और जड़ होकर रह गयी है।

अरुण को उसका चेहरा देखकर तकलीफ हुई। उस पर बहुत ममता भी हुई "अहा, बे—चारी!"

उसको लगा सिर्फ एक दिन के तूफान में यह तेज-तर्रार लड़की बिल्कुल निस्तेज हो आयी है। जिसके लिए इतना सब कांड हुआ, वह प्रेम भी मर गया है—बिल्कुल बेजान हो गया है।

टिकलू ने लौटते हुए कहा, "कसम से, यह बिराम साला बड़ा लकी है, यार! मजे से लड़की को सपोट लिया। तुझसे सच्ची बात कहूँ, उसकी लड़की को देखकर एक बार तो···मेरा भी ईमान डगमगाने लगा···।"

"अरे, तू किस मिट्टी का बना है, बताएगा?" अरुण ने झुंझलाहट और हिकारत से कहा।

लेकिन घर लौटते हुए अकेले में उसकी आँखों के आगे सुबहवाली नन्दिनी की भरी-भरी देह उभर आयी। अपनी साड़ी हटाकर जब वह अपनी बाँहों के नीले निशान दिखा रही थी, तो···स्लीवलेस ब्लाउज

बाबू गोश्त सटकेंगे, इसके लिए मुर्गी मैं पालूँ ?"

"स्टुपिड् !" अरुण के तन-वदन में आग लग गयी। उसे याद आया, अभी थोड़ी देर पहले उसने नन्दिनी की आँखों में आँसू देखा था। "और कुछ नहीं होगा, तो आत्महत्या तो कर सकती हूँ," उसके वे शब्द अरुण के कानों में दुबारा बज उठे।

"देख टिकलू। यह बहुत सीरियस मामला है।" अरुण ने कहा।

टिकलू फिर हँस दिया। कहा, "अरे, धत्त् !···सारा मामला सोडे की बोतल की तरह आसान है। अबे, अँगूठा लगाकर ब्याह कर ले और दुअन्नी का सेंधुर लाकर उसकी माँग में भर दे और घर चला जा। जाकर माँ के पैरों पर गिर जाना, माँ···माँ तेरे लिए एक दासी ले आया हूँ।"

उर्मि को सारी रिपोर्ट टिकलू ने दी। उर्मि मारे हँसी के बेहाल हो गयी। उसने पर्स की चेन खोली—चुर्र-र्-र्—झट् से पाँच पैसे का एक सिक्का निकालकर टिकलू के हाथ पर रख दिया। उन लोगों में यह खास नियम था। उनमें से कोई भी जब कोई चटपटी-सी बात कहेगा, उसे पाँच पैसे इनाम में दिये जाएँगे।

टिकलू ने कहा, "इस बार पाँच पैसे से काम नहीं चलेगा, जी० एफ० ! कुछ ज्यादा छोड़ना होगा।"

अन्त में टिकलू ने ही सुधा के यहाँ नन्दिनी के लिए कुछेक दिनों रहने का इन्तजाम कर दिया। कहा, "लेकिन भई, माँ कसम, वे लोग भी बिना शादी-ब्याह के इस हुज्जत में पड़ने को राजी नहीं हैं।"

विराम ने कहा, "भई, ब्याह तो हम लोग खैर, कर ही लेंगे। लेकिन दो-चार दिन···मेरा मतलब है, रजिस्ट्री-ब्याह के लिए भी पहले से नोटिस देनी होगी। इसके लिए रुपया चाहिए···"

टिकलू ने हँसकर कहा, "नोटिस ?···साला ! साला, ये रुपये फिर कब काम आएँगे।" उसने जेब से एक बिल निकालकर दिखाया। उसके बाप ने उसे तगादा लाने को दिया है। रुपयों की वसूली कर पाया, तो उसने सोचा था, उसमें से दो पाँच रुपये झाड़ देगा।

लेकिन जिसके पास रुपया बाकी था, उसने चुकाये ही नहीं।

अन्त में पोस्ट-ऑफिस से उर्मि को फोन किया, "सुन, बहुत जरूरी काम है। फौरन कॉफी-हाउस चली आ।"

सुजीत ने राय दी, उर्मि रुपये का इन्तजाम जरूर कर देगी।

टिकलू ने कहा, "कल अगर उस साले ने बकाया रुपयों में से थोड़ा बहुत भी नहीं दिया तो या तो वह जिन्दा रहेगा या मैं। कल परसों में ही इन दोनों का ब्याह कर देना है।"

सारा दिन दौड़-धूप और आशंकाओं में कट गया। इधर पुलिस का भी डर था, कौन जाने नन्दिनी के भाई ने थाने में रिपोर्ट न लिखवा दी हो।

अरुण और टिकलू जब नन्दिनी को सुधा के घर छोड़कर वापस लौटे तो अरुण को याद आया। सारे दिन की दौड़-धूप और जिन्दगी के अनिश्चित भविष्य की बात सोचकर, नन्दिनी का चेहरा जाने कैसा तो हो आया था। लग रहा था उसकी आँखें बिल्कुल ब्लैंक हैं। अब वह कुछ भी देख-सुन नहीं रही है। अजीब बुद्धू-बुद्धू-सी भावहीन और जड़ होकर रह गयी है।

अरुण को उसका चेहरा देखकर तकलीफ हुई। उस पर बहुत ममता भी हुई "अहा, बे—चारी!"

उसको लगा सिर्फ एक दिन के तूफान में यह तेज-तर्रार लड़की बिल्कुल निस्तेज हो आयी है। जिसके लिए इतना सब कांड हुआ, वह प्रेम भी मर गया है—बिल्कुल बेजान हो गया है।

टिकलू ने लौटते हुए कहा, "कसम से, यह विराम साला बड़ा लकी है, यार! मजे से लड़की को सपोर्ट किया। तुझसे सच्ची बात कहूँ, उसकी लड़की को देखकर एक बार तो···मेरा भी ईमान डगमगाने लगा···।"

"अरे, तू किस मिट्टी का बना है, बताएगा?" अरुण ने झुंझलाहट और हिकारत से कहा।

लेकिन घर लौटते हुए अकेले में उसकी आँखों के आगे सुबहवाली नन्दिनी की भरी-भरी देह उभर आयी। अपनी साड़ी हटाकर जब वह अपनी बाँहों के नीले निशान दिखा रही थी, तो···स्लीवलेस ब्लाउज

में कसी हुई देह खूबसूरत सी उन्मुक्त और गोरी-गोरी बाहें ! गले से लेकर काफी नीचे तक अनावृत्त देह !—कुल मिलाकर उस मनमोहनी के प्रति उसने अजीब-सा खिचाव महसूस किया। लेकिन यह लोभ उसके मन में अभी-अभी जगा था। वह भी शायद इसलिए कि इस वक्त वह अपने को बूढ़े जहाजी सिन्दबाद की तरह मुक्त महसूस कर रहा था। उसकी गर्दन पर अब कोई समस्या बोझ बनकर नहीं पड़ी है।

गली के मोड़ पर लड़कों का एक स्कूल है। झुंड के झुंड निकम्मे लड़के अपनी-अपनी पैण्ट की जेब में हाथ घुसेड़े हुए दाद के जख्म की तरह गोलाकार घेरा बनाकर खड़े रहते हैं। उस रास्ते से लड़कियों का आना-जाना मुश्किल है। रूनू का छोटा भाई अगर आज जिन्दा होता तो उन्हीं लोगों की उम्र का होता। वह अगर कोई कसूर करता तो रूनू उसे डाँट देती। लेकिन इन लड़कों को डाँटने वाला क्या कोई नहीं है?

साल-हर-साल फेल होने वाले दो-चार लड़के तो काफी बड़ी उम्र के दिखते हैं। शेव किए हुए गालों पर शिरीष के पत्ते की तरह कड़ी-कड़ी दाढ़ी। असल में यही लड़के छोटे लड़कों को खराब करते हैं। ये लड़कियों को देखकर सीटियाँ बजाते हैं, आवाजें कसते हैं, फूहड़ ढंग से इशारे करते हैं। मुहल्ले वालों ने हेडमास्टर साहब से शिकायतें भी कीं, लेकिन उन पर कोई असर ही नहीं हुआ। असर कहाँ से हो ! मास्टरों की आपस में ही पार्टीबन्दी है। अपनी-अपनी धाक जमाये रखने के लिए वे लोग इन्हीं लड़कों से काम निकालते हैं। आते-जाते इन मास्टरों से भी मुठभेड़ हो जाती है। रूनू ने भी गौर किया, दो-चार मास्टरों की नजर भी बहुत बुरी है।

लड़के सब तो बदमाशों के नाना हैं !

एक बार तो इन बदमाशों ने एक काले-कलूटे भिखमंगे बच्चे को उसके पीछे लगवा दिया ! "अबे···उधर जा न···! वोऽ देख, तेरी अम्मी जा रही है। जा, उसे जाकर धर दबा।"

वह बच्चा सचमुच ही उसके पीछे लग गया। अपने गन्दे-गन्दे हाथों

से रूनू के घुटने छूकर पैसे माँगने लगा। कितनी मुसीबत हुई थी। उसका मन करता है, उन निकम्मे लड़कों को एक लाइन से खड़ा कर दे और सटा-सट कोड़े बरसाये।

रूनू ने तेज-तेज कदमों से वह रास्ता पार किया और सोचा कि नन्दिनी के यहाँ उसकी खोज-खबर लेती चले। छोड़ो, रहने दो। कोई सूचना मिलेगी तो परम भाई खुद ही आकर बता जाएँगे।

···हैरान है! नन्दिनी उसकी इतनी पक्की सहेली थी। रूनू से शायद ही कभी कोई बात छुपाती थी। और···वही इस तरह उड़न छू हो गयी और उसको जरा-सी सूचना भी नहीं दी?

कल से ही उसे भाभी को मुँह दिखाने में शर्म आ रही है! शीश जैसी लड़की और घर छोड़कर निकल गयी? कौन जाने भाभी ने क्या सोचा होगा? वह जरूर रूनू को भी बुरी समझ रही होगी।'' तेरी ही तो सहेली थी—सच ही, उसे नन्दिनी पर शर्म भी आ रही है और गुस्सा भी! कहीं ऐसा तो नहीं कि नन्दिनी गुस्से में कुछ कर बैठी हो? कहीं आत्महत्या वगैरह तो नहीं कर बैठी?

कल परम भाई काफी देर तक मामा से नन्दिनी के बारे में बातें करते रहे।

अन्त में उन्होंने निराशा और दुःख से कहा, "अरी रूनू, तुझे भी वह कुछ बताकर नहीं गयी या तुझसे सब कह गयी है लेकिन बताने को मना कर गयी है?"

इतने दु:ख में भी यह एक और मन्त्रणा। सब शायद यही सोच रहे हैं कि रूनू को सब पता है, वह उसकी इतनी पक्की सहेली थी, उसे बिना बताये नहीं गयी होगी! यह नन्दिनी भी अजीब लड़की थी! माँ-बाप के मरने के बाद, जिस भाई ने पाल-पोसकर इतना बड़ा किया, उसने अगर तेरे किसी कसूर पर डाँट भी दिया तो सब छोड़-छाड़कर चल देगी?

"दरअसल, कसूर मेरा ही है।" उसने परम भाई को मामा से कहते हुए सुना, "अब वह बड़ी हो चुकी थी। कभी कुछ गड़बड़ न हो जाए, कहीं कोई गलती न कर बैठे···इस बात का डर तो लगता है न?"

फिर लड़कियों की तरह आँसू पोंछते-पोंछते उन्होंने अपना कहना जारी रखा, "इधर वह अक्सर बहुत देर-देर से घर लौटती थी। इसीलिए उसे डाँटा था। गृहस्थी में ऐसे ही पाँच तरह की झंझटें! सुबह नींद खुलते ही उसकी मामी ने बताया कि कल रात वह नौ बजे लौटी थी। बस, मैं गुस्सा काबू नहीं कर पाया, उसे दो-चार गालियाँ दे डालीं।"

रूनू को लगा, परम भाई ने कोई अन्याय नहीं किया। लेकिन नन्दिनी सिर्फ उनकी डाँट सुनकर चली गयी होगी, ऐसा क्या हो सकता है? परम भाई से असल में उससे क्या कहा-सुनी हुई, शायद अब बता नहीं पा रहे हैं! शायद कोई बुरी-सी गाली दे डाली होगी।

कोई गन्दी गाली? छिः! छिः!!

इन लोगों को विराम की बात बता दे या नहीं, रूनू यह तय नहीं कर पायी। अब अगर वह बता भी दे कि विराम और नन्दिनी का चक्कर वह जानती थी, तो उसके मामा-मामी छिः, छिः करेंगे। उन्हें लगेगा रूनू भी उन्हीं की तरह है! इसके अलावा···

अरुण से मुलाकात हो तो नन्दिनी की शायद कोई खोज-खबर मिले।

अरुण क्यों नहीं आया, वह समझ नहीं पा रही थी। शायद उसे सारी बात मालूम हो। हो सकता है, नन्दिनी ने उसे मिलने को मना कर दिया हो या वह खुद ही इस दुविधा में हो कि मिलने पर नन्दिनी की बात चली, तो वह क्या जवाब देगा! अरे वाह! अरुण को क्या उस पर विश्वास नहीं? वह क्या परम भाई को बताने जा रही है?

घर के निचले हिस्से में मामा की डिस्पेंसरी है। मामा सुबह के वक्त डिस्पेंसरी में ही दो-चार रोगी देखते हैं, और शाम के वक्त दो-चार मरीजों के घर विजिट देने जाते हैं।

सीढ़ियाँ चढ़ते हुए, रूनू को मामा की आवाज सुनाई दी। यानी आज मामा को किसी खास जगह नहीं जाना था। वह बरामदे में बैठे-बैठे अपने दूसरे डॉक्टर-मित्रों से बातचीत कर रहे थे।

"मामी, डबलरोटी है? बहो—त भूख लगी है।" रूनू ने ऊपर आते ही पूछा।"

शाम के वक्त वह डबल रोटी के दो टुकड़ों के साथ चाय लेती है। आज शाम को वह घर पर नहीं थी, अतः उसने सोचा कि डबल रोटी शायद मँगायी ही न गयी हो।

"इतनी जल्दी लौट आयी? फंक्शन क्या इतनी जल्दी खत्म हो गया?" मामी ने पूछा।

रूनू ने हँसकर कहा, "नहीं। अच्छा नहीं लगा। बिल्कुल बकवास था।" वह अपने कमरे में चली गयी। उसे लगा, मामी से अगर उसकी आँखें मिल गयीं, तो वे शायद उसका झूठ पकड़ लेंगी।

यहाँ रूनू का कोई अलग कमरा नहीं है। उसके कमरे में उसके साथ उसकी ममेरी बहनें भी पढ़ती हैं। उसी के साथ सोती भी हैं। कमरे में रूनू की एक छोटी-सी अलग मेज है। उसमें ताला-चाबी लगाने लायक एक ड्रॉअर भी है।

रूनू कपड़े बदलने लगी। चारखाने की एक साड़ी पहनकर मुँह-हाथ धो डाला। फिर एक कुर्सी खींचकर मेज के सामने आ बैठी।

नहीं, अभी वह दराज नहीं खोलेगी। मामी उसके लिए चाय-डबल रोटी लेकर आती होंगी। किसी-किसी दिन वे अपनी तरफ से ही कहती हैं, "तुम्हें चाय बनाने की जरूरत नहीं। कॉलेज से थकी-हारी लौटी हो, लाओ मैं ही बनाये देती हूँ।"

मामी उसे ब···होत अच्छी लगती हैं। सचमुच वे इतनी अच्छी और प्यारी हैं···। उनकी गृहस्थी में पैसे की इतनी खींच-तान है, लेकिन फिर भी वे रूनू को अपने साथ ले आयीं। वहीं उसकी पढ़ाई का खर्च भी जुटाती हैं।···

रूनू ने चाय की प्याली एक ओर सरका दी और थोड़ी देर को बिस्तर पर लेटी रही। आज उसका मूड बहुत खराब था। उसे रह-रहकर अरुण की याद आ रही थी।

बीच-बीच में उसके मन में अरुण को देखने की तीखी चाह जाग उठती है। कहीं वह उसे प्यार तो नहीं करने लगी?···यहा रे! प्यार

क्या इतना सस्ता है ? हाँ, अरुण से बातें करना उसे अच्छा लगता है। उसका मन होता है, उससे घण्टों बातें करती रहे। बस्स ! यह प्रेम-व्रेम जैसी रईसी उसके लिए नहीं है। लेकिन बेचारा अरुण···? हाँ, लगता है अरुण जरूर प्यार···अगर यह बात सच न होती तो उससे मिलने के लिए, देर-देर तक ठहरने के लिए, उसे इतनी छटपटाहट क्यों होती ? उसे जब पहले-पहल देखा था, वह सीधे-सादे कपड़ों में था। अब हर वक्त फर्स्ट क्लास प्रेस की हुई शर्ट, क्रीजलेस पैंट पहनता है। अब उसके कपड़े में कहीं कोई नुक्स नजर नहीं आता। रूनू के लिए कभी किसी ने ऐसा नहीं किया !

लेकिन अरुण आज आया क्यों नहीं ? उसे बिल्कुल समझ नहीं आ रहा है।

रूनू ने काफी आगा-पीछा सोचकर कहा था, "हाँ, आऊँगी ब···होत देर तक···ब···होत देर रुकूँगी।" क्या इसीलिए अरुण की नजरों में उसकी कीमत घट गयी ? इसीलिए उसने उसे बहुत हल्की समझ लिया ? अरुण कभी उसे बहुत हल्की समझ सकता है, इस ख्याल से रूनू के मन में कहीं कुछ दर्द कर उठा। अचानक उसे ख्याल आया—धत् ! यह सब कोई बात नहीं है। वह जरूर किसी काम में अटक गया होगा।

अच्छा, यह भी तो हो सकता है कि अरुण किसी और को प्यार करता हो···रूनू के साथ महज खिलवाड़ कर रहा हो। हो सकता है, जिसे वह सचमुच प्यार करता है, आज उसके साथ सिनेमा जाने का या कोई और प्रोग्राम बन गया हो। शायद इसीलिए उससे मिलने की बात, उसे याद न रही हो।

अरुण के साथ ज्यादा देर तक रहकर, उसे खुश करने के लिए, आज उसे कितना-कितना झूठ बोलना पड़ा, "आज कॉलेज में फंक्शन है, मामी ! लौटने में देर होगी।"

वह झूठ भी किसी काम नहीं आया। इतनी मेहनत से वह तैयार हुई, फिर भी अरुण नहीं आया।

रूनू को लौटते हुए बहुत बुरा लग रहा था। उसने सोच लिया कि

इसके बाद अरुण अगर रिरियाते हुए सफाई देने आएगा, तो वह उसे बुरी तरह डाँट देगी। उस दिन अरुण को इतना दुःखी देखा, इसीलिए आज ज्यादा देर तक ठहरने का वादा कर बैठी थी।

रुनू बिस्तर छोड़कर उठ खड़ी हुई। क्या किया जाए, यह सोचते हुए उसने अपने पर्स से चाबी निकाल ली।

यही उसका एकमात्र छुपा हुआ स्वर्ग है। उसे एक यही नशा है। उसने चाबी लगाकर ड्रॉअर खोला। उसका चेहरा खुशी से चमकने लगा।

अरुण आज नहीं आया तो क्या हुआ! उसके इस ड्रॉअर में टुकड़ो-टुकड़ों में जिया हुआ सुख संकलित है। जीवन के आनन्द के असंख्य पलों में, बूँद-बूँद सहेजा हुआ सुख!

रुनू ड्रॉअर खोलकर बैठ गयी। कागज की छोटी-छोटी चिटें, और भी बहुत-सी छोटी-मोटी चीजें। रुनू की दृष्टि में ड्रॉअर की हर चीज असाधारण थी।

आह! रुनू के मन में अजब-सी स्फूर्ति जाग उठी। वह सिमटकर, इत्ती-सी···सात-आठ या नौ साल की नन्हीं-सी लड़की बन गयी। दराज में से चाबी की एक रिंग उठाकर देखती रही, फिर उसे अँगूठी की तरह उँगलियों में पहन लिया। यह अंगूठी उसे रास्ते में पड़ी हुई मिली थी। हाथीदांत जैसी एक जोड़ी सफेद सलाइयाँ! स्कूल के दिनों में नीमा दीदी ने दी थीं। वे उसे बेहद प्यार करती थीं। स्टील के तारों का बना हुआ गोरखधंधा···जब वह रथ के मेले में गयी थी, तब खरीदा था। रुनू ने वे सब चीजें दराज में सहेजकर रख छोड़ी हैं।

कागज उलटते-पलटते, उसकी परीक्षा का सर्टिफिकेट निकल आया। इस ड्रॉअर में अल्हड़ मस्ती के बेलौस दिनों की कहानियाँ छुपी पड़ी हैं।

रुनू एक-एक को छू-छूकर देखती रही।

अनुराधा के भइया का वह खत कहाँ गया? वह कागजों के ढेर में वह खत ढूंढ़ती रही। खत निकालकर, एक बार उसे खोलकर

—उसके चेहरे पर हँसी विखर गयी। अनुराधा के हाथ वह खत भेजा गया था। रूनू उसे पढ़कर वुरी तरह नाराज हो उठी थी। उसने कोई जवाव नहीं दिया। लेकिन उस खत को फाड़कर नहीं फेंक सकी। उसे उसी तरह रख छोड़ा। शायद उसे मन-ही-मन अच्छा लगा था। उसने उस वाक्य को दुवारा पढ़ा—अनगढ़ राइटिंग में लिखा हुआ—"आज तक ऐसी कोई लड़की मेरी नजर में नहीं आयी, जो तुम से अधिक खूबसूरत हो।" रूनू मन-ही-मन हँस पड़ी।

जव भी उसका मूड ऑफ होता है, या उसे खाली-खाली लगता है, वह ड्रॉअर खोलकर वैठ जाती है, और उन सुखद यादों को छू-छूकर महसूस करने की कोशिश करती है।

अचानक उसके मन में अरुण को छूने की साध जाग उठी। वह हड़वड़ाकर वह खत ढूंढ़ने लगी। कहाँ गया वह लिफाफा? मानो कोई वहुत जरूरी खत खो गया हो। उसने वेसब्री से खोजना शुरू किया।

लो, वह खत मिल गया। कहीं खराव न हो जाए, इसलिए उस नीले पंख को एक सफेद लिफाफे में सहेजकर रख दिया था। उसने लिफाफे में से वह पंख निकाल लिया। वहुत देर तक उसे मुग्ध भाव से देखती रही। थोड़ी देर तक उस पंख को होले-होले अपने चेहरे पर घुमाती रही, फिर उसे लिफाफे में सहेज कर रख दिया।

उसके वाद ड्रॉअर वन्द करके चावी जड़ दी और दुवारा अपने विस्तर पर आकर लेट गयी।

अरुण के वारे में सोचते हुए उसे अच्छा लग रहा है।

"यह नोवल पेशे-वेशे का जिक्र अव नहीं सुहाता। वस, तुम्हारी वात कोई भी नहीं सोचता—न मरीज, न सरकार! तुम वस, सेवा किए जाओ। आज के जमाने में यह सव अव नहीं चलता।"

"हाँ, रुद्र! तुम ही वुद्धिमान निकले! पैसा तो गाइनाकॉलोजी में ही वना सकते हैं! क्यों महितोष?"

"हाँ—सही रास्ते से न सही, गलत रास्ते से ही सही, पैसा तो आता है डॉक्टर!" डॉक्टर सेन की आवाज थी।

मामा और उनके दोस्तों की आवाजें रूनू को सुनायी दे रही थीं।

अचानक उन लोगों का जोरदार ठहाका गूँज उठा।

हुँह, क्या ऊँचे विचार हैं? उनकी दबी आवाज में चल रही बातचीत का अस्पष्ट स्वर कभी-कभी रून् तक भी पहुँच रहा था। इन लोगों में उसके मामा ही एक शरीफ आदमी हैं।

लेकिन अरुण अद्भुत आदमी है। शरीफ भी और भला भी।

···रास्ता पार करने के पहले ही उसने दूर से ही अरुण को देख लिया। उस पल वह अपनी ही नजर में बेहद कीमती लगी थी।

रून् को देखते ही, अरुण के चेहरे और आँखों में खुशी की एक लहर उमड़ आयी, लेकिन उसे छुपाते हुए उसने अपने चेहरे को सख्त बना लिया, मानो वह बेहद नाराज हो।

"आज मुझे काफी देर हो गयी न? आप कितनी देर से खड़े हैं?" रून् ने क्षमा-याचना के लहजे में पूछा।

अरुण ने बनावटी गुस्से से कहा, "साढ़े-तीन बजे से।"

"अरे वाह, इतनी देर पहले आने की क्या जरूरत थी?"

अरुण हँस पड़ा, "अच्छा मान लो तुम अगर दस-पन्द्रह मिनट पहले ही पहुँच जातीं और यूँ खड़ा रहना पड़ता, तो तुम्हें बुरा न लगता?"

रून् को उसकी बातों का लहजा अच्छा लगा। देखा, अरुण सिर्फ अपने बारे में ही नहीं सोचता। उसके सुख-सुविधा का भी ख्याल रखता है।

रून् को बिस्तर पर लेटे-लेटे तकिये में मुँह गड़ाए हुए चुप्पे-चुप्पे यह सब सोचना बहुत अच्छा लग रहा था···

"एई, तुम्हें 'तुम' कहा करूँ?" अरुण ने एक दिन अचानक ही रून् से सवाल किया था।

वह सकपका गयी थी।

विक्टोरिया-मेमोरियल की उस मखमली घास पर वे एक-दूसरे के आमने-सामने बैठे थे—ठीक उसी तालाब के किनारे, जहाँ वह विराम और नन्दिनी के साथ बैठी थी जब टिकलू की बदतमीजी पर

उसका सिर भन्ना गया था। अरुण तो उसी दिन शरीफ लगा था—टिकलू की तुलना में जरा अधिक शरीफ !

"...एई, बताया नहीं ? तुम्हें 'तुम' कहूँ न ?"

रूनू चौंक उठी, अगले क्षण बुरी तरह शरमा गयी। उस वक्त वह घुटने समेटे बैठी थी ! घुटनों पर चेहरा टिकाए हुए उसने झट से पलकें झुकाकर, घास की तरफ देखा। एक हाथ से घास की फुनगी तोड़ते हुए सिर हिलाकर सहमति जतायी ! रूनू को आज भी याद है, उस वक्त उसे इतनी लाज आ रही थी कि बस सिर नहीं उठा पायी थी।

उसके बाद काफी देर तक वे दोनों बातों में डूबे रहे। लेकिन यह बात वह अच्छी तरह समझ रही थी कि अरुण को 'आप' कहने की ऐसी आदत पड़ चुकी है कि 'तुम' कहने में उसकी जबान लड़खड़ा रही है।

लौटते समय अरुण ने अचानक ही कहा, "धत्तेरे की ! आप ही ठीक था। भला यह भी कोई बात हुई ? कोई मुझे आप-आप कहता रहे और सिर्फ मैं ही..."

रूनू हँस पड़ी, फिर लापरवाही से कहा, "मान लो कि दूसरे पक्ष का 'तुम' कहने का मन न हो, तो...?"

"..." लगा अरुण आहत हो उठा है।

"क्यों—क्या हुआ ? रूनू ने अरुण के चेहरे की तरफ देखते हुए, परेशान होकर पूछा।

उसकी बातें सुनकर अरुण पलभर को मुरझा गया। शायद उसे कोई जबर्दस्त चोट लगी हो या वह बेहद अपमानित महसूस कर रहा हो।

उसने कोई बात नहीं की, गुमसुम-सा बैठा रहा। शायद गुस्से, तिलमिलाहट, शर्म या परेशानी से, बिल्कुल चुप हो आया।

रूनू का मन हुआ, वह कहे, "देखो मुंह से कही हुई बात कुछ नहीं होती...कुच्छ भी नहीं।" उसकी तबीयत हुई कि वह अपना दिल चीरकर अरुण के सामने रख दे। वह मन-ही-मन बुदबुदा उठी, 'देखो, तितली को कभी मुट्ठी में कैद करने की कोशिश मत करना। अगर उसके पंख टूट जाएँगे तो वह सिर्फ भुनगा बनकर रह जाएगी।'

तीन ओर से तीन अलग-अलग रास्ते। एक-दूसरे को काटते हुए। बीच की जगह में एक छोटा-सा तिकोन बन गया है। रेलिंग से घिरी हुई जगह पर ऊबड़खाबड़ घास! अचानक एक दिन देखा गया, वहाँ किसी ने सुन्दर सा फव्वारा बिठा दिया है। फव्वारे के तीनों किनारों पर रंग-बिरंगे फूलों के पेड़ और फव्वारे के जल में लाल-नीली रोशनी की बौछार।

ठीक उसी तरह सब-के-सब किसी आकस्मिक सुख में जैसे बेसुध हो उठे थे।

टिकलू, सुजीत और उर्मि! विराम भी खुश-खुश लग रहा है। शुरू-शुरू में जो खोलकर हँसने में कहीं कुछ चुभता था।

उर्मि ने ही उसे तसल्ली देते हुए कहा, "अरे, तू फिक्र क्यों करता है? कोई-न-कोई नौकरी मिल ही जाएगी। चल, प्रोफेसर सेन को पकड़ा जाए..."

उसके बाद से विराम के होंठों पर भी हँसी खिल उठी।

सिर्फ नन्दिनी ही खुश नहीं हो पायी। वह जैसी बेहद चुप-चुप आयी थी, वैसी ही बनी रही। उसके चेहरे पर कोई खुशी या उम्मीद की चमक नहीं दिखी। लगता है उसकी आँखों से सारा प्रेम मिट गया है, मर गया है। अब तो उनका ब्याह भी हो गया। माँग में लाल-लाल सिन्दूर! माथे पर सिन्दूर की बड़ी-सी बिन्दी! लेकिन फिर भी वह मानो कोई पत्थर हो।

उर्मि ने अचानक कहा, "जीत, इस वक्त अपना अरुण भी होता तो ज्यादा मजा आता।"

सुजीत ने हँसकर कहा, "अरे, यह बोल न कि तुझे अपने [illegible] इन्जिनियर की याद आ रही है। लड़कियों का तो ब्याह का [illegible] ही, दिल की धड़कन तेज हो जाती है।"

उर्मि हँस पड़ी, "हाँ, जो तो ठीक है। लेकिन अरुण [illegible]

टिकलू बोल उठा, "...अरे, इस वक्त वह [illegible] रहा होगा।"

नन्दिनी के कानों तक कोई बात नहीं पहुँच रही है। वह जड़-मूर्ति की तरह गुमसुम बैठी रही। उसकी आँखों की चंचल पुतलियों की जगह मानो शीशा फिट कर दिया गया हो।

उन्हीं स्थिर आँखों से उसने विराम की ओर देखा। उसकी आँखों में ऐसा निर्विकार भाव था, मानो वह किसी से जुड़ी ही नहीं। मानो वह खिड़की से सुदूर आकाश देख रही हो।

टिकलू की आँखों ने उन दोनों को देख लिया। कहा, "क्यों जनाब! चोरी-चोरी आँखें मिला रहे हैं?" उसने नन्दिनी को हँसाने की कोशिश की।

नन्दिनी के होंठों पर एक रुआँसी-सी हँसी आयी।

असल में टिकलू नन्दिनी की सहमी हुई सूरत सह नहीं पा रहा था। वह किसी तरह उसे हँसाने की कोशिश कर रहा था।

टिकलू ने सुझाव दिया, "एई चल, अपन सब मिलकर दक्षिणेश्वर चलें। नन्दिनी लोगों की तरफ से प्रसाद तो चढ़ा दें।"

सब उत्साहित भाव से उठ खड़े हुए, "हाँऽ···हाँ, यही ठीक है। चल, वहाँ खूब हो-हुल्लड़ मचाएँगे।"

नन्दिनी ने विराम से सटते हुए, धीमे स्वर में कहा, "रूनू को भी एक फोन कर लेते···"

नन्दिनी के बड़े भाई पर विराम मन-ही-मन बुरी तरह नाराज था। मानो इतने सारे फसाद के लिए उसका भाई ही जिम्मेदार हो। अतः नन्दिनी के घरवालों के प्रति उसके मन में तीखी उपेक्षा भर गयी थी। रूनू को भी वह नजरअन्दाज करना चाहता है।

नन्दिनी ने एक बार फिर सिर उठाकर विराम की तरफ देखा, "जरा फोन कर लेते···"

विराम ने यूँ हाथ हिलाया, मानो भिखारियों को दुत्कार रहा हो, "नहीं! नहीं! कोई जरूरत नहीं है।"

नन्दिनी की आँखों में एक हल्की-सी रोशनी झिलमिलायी थी—अचानक बुझ गयी।

मन्दिर का दरवाजा खुलने में अभी काफी देर थी। अतः वह लोग सब गंगा के किनारे-किनारे चलते हुए काफी दूर निकल आए। सबने एक पक्के घाट हर अपना अड्डा जमाया।

पास ही, दो नावें बँधी थीं—लेकिन उनमें कोई आदमी नजर नहीं आया।

उर्मि सुजीत से बिल्कुल सटकर बैठ गयी।

सुजीत ने उर्मि को कुहनियाते हुए मजाक किया, "आ, चल, चलें! तेरे साथ जरा नौका-विहार कर आएँ। बहुत दिनों से मन हो रहा है। एई, चल न!"

उर्मि ने हँसकर कहा, "तेरे साथ कितने ही दिनों तो घूम चुकी हूँ। सूने नाव पर बैठकर कितनी सारी मीठी-मीठी बातें की थीं, याद नहीं? वह सब दिन जाने कहाँ गुम हो गये, जीत! अब तो लगता ही नहीं कि हम-तुम इन्सान हैं।"

टिकलू ठहरा शातिर बदमाश। वह फौरन बोल उठा, "माँ कसम, मैं भी तुझे खूब मीठी-मीठी बातें सुनाऊँगा···न होगा तो सैन्डिल मिला दूँगा। चल, चलेगी···?"

सबने जोर का ठहाका लगाया। सिर्फ नन्दिनी ही नहीं हँस पायी। वह उदास आँखों से गंगा नदी का अगला छोर निहारती रही।

दूर कहीं से घण्टे बजने की आवाजें आने लगीं।

विराम ने कहा, "लगता है मन्दिर का पट खुल गया।"

सुजीत ने सिर हिलाया, "नहीं, नहीं।"

विराम उठ खड़ा हुआ। कहा, "तुम लोग बैठो, मैं देख आता हूँ।"

उनमें से कोई बात नहीं कर रहा है। नन्दिनी उसी तरह चुप। गम्भीर! पत्थर बनी रही।

घर्र···र···र! अचानक चेन खोलने की आवाज सुनायी दी।

टिकलू ने पलटकर देखा, सुजीत उर्मि के पर्स से एक लिफाफा निकालकर भाग खड़ा हुआ।

उर्मि भी उसके पीछे-पीछे दौड़ी, "एइ, जीत! देख अच्छा नहीं होगा। मैं कहती हूँ मेरा खत वापस कर दे। जीत, सुन तो सही···"

अभी हो··· :

नन्दिनी के कानों तक कोई बात नहीं पहुँच रही है। वह जड़-मूर्ति की तरह गुमसुम बैठी रही। उसकी आँखों की चंचल पुतलियों की जगह मानो शीशा फिट कर दिया गया हो।

उन्हीं स्थिर आँखों से उसने विराम की ओर देखा। उसकी आँखों में ऐसा निर्विकार भाव था, मानो वह किसी से जुड़ी ही नहीं। मानो वह खिड़की से सुदूर आकाश देख रही हो।

टिकलू की आँखों ने उन दोनों को देख लिया। कहा, "क्यों जनाब! चोरी-चोरी आँखें मिला रहे हैं?" उसने नन्दिनी को हँसाने की कोशिश की।

नन्दिनी के होठों पर एक रुआँसी-सी हँसी आयी।

असल में टिकलू नन्दिनी की सहमी हुई सूरत सह नहीं पा रहा था। वह किसी तरह उसे हँसाने की कोशिश कर रहा था।

टिकलू ने सुझाव दिया, "एई चल, अपन सब मिलकर दक्षिणेश्वर चलें। नन्दिनी लोगों की तरफ से प्रसाद तो चढ़ा दें।"

सब उत्साहित भाव से उठ खड़े हुए, "हांऽ···हां, यही ठीक है। चल, वहाँ खूब हो-हुल्लड़ मचाएँगे।"

नन्दिनी ने विराम से सटते हुए, धीमे स्वर में कहा, "रूनू को भी एक फोन कर लेते···"

नन्दिनी के बड़े भाई पर विराम मन-ही-मन बुरी तरह नाराज था। मानो इतने सारे फसाद के लिए उसका भाई ही जिम्मेदार हो। अतः नन्दिनी के घरवालों के प्रति उसके मन में तीखी उपेक्षा भर गयी थी। रूनू को भी वह नजरअन्दाज करना चाहता है।

नन्दिनी ने एक बार फिर सिर उठाकर विराम की तरफ देखा, "जरा फोन कर लेते···"

विराम ने यूँ हाथ हिलाया, मानो भिखारियों को दुत्कार रहा हो, "नहीं! नहीं! कोई जरूरत नहीं है।"

नन्दिनी की आँखों में एक हल्की-सी रोशनी झिलमिलायी थी—अचानक बुझ गयी।

मन्दिर का दरवाजा खुलने में अभी काफी देर थी। अतः वह लोग सब गंगा के किनारे-किनारे चलते हुए काफी दूर निकल आए। सबने एक पक्के घाट हर अपना अड्डा जमाया।

पास ही, दो नावें बँधी थीं—लेकिन उनमें कोई आदमी नजर नहीं आया।

उर्मि सुजीत से बिल्कुल सटकर बैठ गयी।

सुजीत ने उर्मि को कुहनियाते हुए मजाक किया, "आ, चल, चलें! तेरे साथ जरा नौका-विहार कर आएँ। बहुत दिनों से मन हो रहा है। एई, चल न!"

उर्मि ने हँसकर कहा, "तेरे साथ कितने ही दिनों तो घूम चुकी हूँ। सूने नाव पर बैठकर कितनी सारी मीठी-मीठी बातें की थीं, याद नहीं? वह सब दिन जाने कहाँ गुम हो गये, जीत! अब तो लगता ही नहीं कि हम-तुम इन्सान हैं।"

टिकलू ठहरा शातिर बदमाश। वह फौरन बोल उठा, "माँ कसम, मैं भी तुझे खूब मीठी-मीठी बातें सुनाऊँगा···न होगा तो सैक्रिन मिला दूँगा। चल, चलेगी···?"

सबने जोर का ठहाका लगाया। सिर्फ नन्दिनी ही नहीं हँस पायी। वह उदास आँखों से गंगा नदी का अगला छोर निहारती रही।

दूर कहीं से घण्टे बजने की आवाजें आने लगीं।

विराम ने कहा, "लगता है मन्दिर का पट खुल गया।"

सुजीत ने सिर हिलाया, "नहीं, नहीं।"

विराम उठ खड़ा हुआ। कहा, "तुम लोग बैठो, मैं देख आता हूँ।"

उनमें से कोई बात नहीं कर रहा है। नन्दिनी उसी तरह चुप। गम्भीर! पत्थर बनी रही।

चर्र···र···र! अचानक चेन खोलने की आवाज सुनायी दी।

टिकलू ने पलटकर देखा, सुजीत उर्मि के पर्स से एक लिफाफा निकालकर भाग खड़ा हुआ।

उर्मि भी उसके पीछे-पीछे दौड़ी, "एइ, जीत! देख अच्छा नहीं होगा। मैं कहती हूँ मेरा खत वापस कर दे। जीत, सुन तो सही···"

सुजीत कहाँ रुकने वाला था ! आगे-आगे खत लिए हुए सुजीत और उसके पीछे-पीछे भागती हुई उर्मि !

टिकलू का ख्याल था, वह दोनों अभी लौट आएंगे। लेकिन वे नहीं आए। अचानक ही उसे महसूस हुआ कि वह और नन्दिनी वहाँ अकेले हैं। उनके आस-पास कहीं कोई नहीं है। चारों तरफ निर्जन निःशब्द मौन !

"चलिए, हम लोग भी चलें।" टिकलू ने कहा। लेकिन दरअसल उसका वहाँ से उठने का मन नहीं था। नन्दिनी के पास एकान्त में बैठे हुए, उसके मन का पुराना लोभ मानो फिर जाग उठा। लोभ और भय से उसका शरीर थर-थर काँपने लगा।

"चलिए !" उसे मानो अपने से ही डर लगा। अतः उसने दुबारा चलने को कहा।

नन्दिनी उसी तरह भाव-शून्य-सी उठ खड़ी हुई।

दोनों साथ-साथ चलते रहे। साथ चलते हुए बीच में शिरीष के बड़े-बड़े पेड़ उन दोनों को अलग-अलग किए रहे।

अचानक टिकलू को जाने क्या हुआ। वह ठिठक कर रुक गया। नन्दिनी के चेहरे की तरफ देखते हुए कहा, "आज आप बेहद खूबसूरत लग रही हैं।"

नन्दिनी ने अपनी भावहीन पलकें उठाकर उसकी तरफ देखा। और उसी क्षण टिकलू को जाने क्या हुआ, उसने नन्दिनी का हाथ थाम लिया।

"एइ—एइ !" नन्दिनी ने चौंककर उसका हाथ झटक दिया और खिलखिलाकर हँस पड़ी। अपनी खिलखिल हँसी को अपने आँचल से दबाते हुए, वह मन्दिर की तरफ तेज-तेज कदमों से दौड़ चली।

टिकलू उसकी हँसी में साथ नहीं दे पाया। उसे शर्म आ रही थी। बे···हद शर्म !

आखिरकार नन्दिनी के चेहरे पर भी हँसी खिल आयी।

अरुण ने ये दिन जाने कैसे गुजारे हैं। यह वही जानता है। वह

जब लौटा, तो काफी रात हो चुकी थी। ट्रेन के सफर की वजह से वह थककर चूर हो रहा था।

बाथरूम से नहाकर निकलते ही, उसका जी हुआ, वह फौरन सो जाए। लेकिन उसका मन 'कोजीनुक' की ओर ही लगा था। नन्दिनी का हाल-चाल जानना जरूरी है। वह लोग सोच रहे होंगे कि अपने कन्धे से जिम्मेदारी का बोझ उतार फेंकने के लिए वह लापता हो गया। अरुण के वश में होता, तो वह इस मुसीबत के दिनों में ऐसी सहायता करता कि उसकी कृतज्ञता का कर्ज थोड़ा-बहुत चुक जाता। हाँ, वह विराम और नन्दिनी के प्रति कृतज्ञ है। अगर वह लोग न होते तो रूनू से उसकी जान-पहचान कैसे होती?

लेकिन रूनू से बातचीत करने की कोई राह समझ नहीं आ रही है। असल में वह विराम और नन्दिनी से सारा किस्सा छुपाए रहा, इसी से मुश्किल हो रही है। वरना वह नन्दिनी से ही उसका हाल-चाल पूछ लेता। लेकिन रूनू यह बात सबसे छुपाना क्यों चाहती है? उसका तो मन करता है, वह दुनिया भर को यह बात बताता फिरे। इसीलिए कभी-कभी उसे यह शक भी होता है कि रूनू के लिए यह सब महज खिलवाड़ तो नहीं है?

"अबे, दोपहर को मेरा बाप जब घर पर खाना खाने को आता है, उस समय तू उसे फोन पर लाइन-क्लीयर होने की सूचना दे सकता है।" टिकलू ने कहा।

सुजीत ने हँसकर कहा, "खबरदार अरुण, ऐसा भूलकर भी मत करना। कभी मौका मिला तो किसी दिन यह बेटा फोन की लाइन जोड़कर अपना दिल बहलाने लगेगा।"

टिकलू के प्रेस में फोन है। टिकलू के बापू दोपहर के वक्त जब खाना खाने जाते हैं, उस समय मौका निकालकर रूनू अगर अरुण को फोन कर पाती तो वह घड़ी का काँटा देखते हुए प्रेस में उसके फोन का इन्तजार किया करता। यह रूनू भी अजीब है। वह टिकलू को ही फोन करके बता तो सकती थी वह कब और किस जगह उसका इन्तजार करे।

अरुण को लगा, अगर वह टिकलू को यह बात न बताता तो द बेहतर था। टिकलू पर तो उसे एक बूंद भी विश्वास नहीं।

लेकिन यह सब तो बहुत बाद की बातें हैं।

…अगले दिन सुबह उठते ही अरुण का 'कोजीनुक' की तरफ जाने मन हो आया। उसे लग रहा था, सारा कलकत्ता शहर ही उसे सी पर लटकाकर इन कई दिनों के अन्दर ही बहुत आगे बढ़ या है।

मीलू को चाय बनाते देखकर अरुण ने पूछा, "क्या बात है रे मीलू, आज तू चाय बना रही है ?"

"क्यों, मैं क्या चाय नहीं बना सकती ?" मीलू हँसी।

"तो फिर दो की जगह चार चम्मच चीनी मिलाना! तेरे हाथ की चाय तो ऐसे ही कड़वी होती है।"

मीलू ने भी बनावटी गुस्से से कहा, "चीनी के लिए तो आजकल यूँ ही अकाल पड़ने लगा है। ऐसा कर कि तू ही किसी मीठे हाथवाली को पकड़ ला न।" अचानक वह गम्भीर हो आयी, "वैसे भी अब लाना ही होगा। जानता है, माँ को क्या हुआ है ?"

"क्या हुआ है ?"

"भयानक बुखार और उस पर से सिर-दर्द।"

अब जाकर सारा रहस्य स्पष्ट हुआ। कल रात पटना से लौटने पर माँ सिर्फ दो-चार बातें ही पूछकर चुपचाप लेट गयी थीं। और कोई दिन होता तो उसे इतनी जल्दी रिहाई मिलती ? उससे वकील की तरह जिरह किया जाता—ट्रेन में जगह मिल गई थी ? स्टेशन का खाना खाकर बुलू की तबीयत तो नहीं खराब हो गयी ? उनका नया घर कैसा है ? कितने कमरे हैं ? अक्षय मजे में है न ? मुहल्लेवाले कैसे हैं ? मकान का मेन गेट बन्द कर देने से ही निश्चिन्त हुआ जा सकता है या सीढ़ी लगाकर किसी के घर में घुस आने का डर है ? आजकल चोर-उचक्कों का उपद्रव भी तो है…वगैरह-वगैरह !

अक्सर वह जवाब देते-देते झुंझला उठता है।

अरुण सोचता रहा कि एक बार माँ के पास जाकर उनकी तबीय

का हाल पूछे या न पूछे। उसका बहुत मन हुआ कि वह थोड़ी देर उनके पास बैठे, माथे पर हाथ रखकर बुखार देखे। लेकिन इससे पहले उसने यह सब कभी नहीं किया, अतः उसे शर्म आयी। कहीं माँ ही उसे दुत्कार न दे, "जा-जा···अब यह सब चोंचले दिखाने की जरूरत नहीं है।"

···तुझसे कुछ नहीं होगा। तू अब बिलकुल रसातल में जा चुका है···घोर रसातल में! यह बात याद आते ही उसके माथे पर जैसे खून चढ़ गया। जब वह घोर रसातल में ही जा चुका है, तो फिर उनकी देह-माथा सहलाकर क्या होगा? माँ तो यही सोचेंगी कि कोई मतलब निकालने के चक्कर में वह उनकी खुशामद कर रहा है।

नौ बजे वह 'कोजीनुक' की तरफ जाने के लिए तैयार हो रहा था कि बापू ने आवाज दी—"अरुण!"

उनके सामने जाते ही उन्होंने कहा, "तेरे छोटे मौसा ने तुझे एक बार मिलने के लिए कहा है। आज ही जाकर मिल आना।"

छोटे मौसा?···अरुण की और कुछ पूछने की हिम्मत न हुई। उनका नाम सुनते ही वह संकोच से सिमट आया। उर्मि के साथ फिल्म देखने वाला मामला क्या इतने दिनों बाद, एजेण्डा में उठा है?

"अच्छा···।" वह लौटने को हुआ।

"अच्छा नहीं, आज ही चले जाना।"

अपने कमरे में लौटकर देखा, मीलू उसके बिस्तर पर पसरकर पैर का अंगूठा नचाते हुए कहानी की किताब पढ़ रही है।

इस लड़की का वक्त-बेवक्त बिस्तर पर पसरकर कहानी की किताब पढ़ना, उसे फूटी आँखों नहीं सुहाता। चिड़िया···की तरह शक्ल-सूरत! साड़ी का पल्ला भी कभी ठीक नहीं रहता! नीम के पेड़ के इधरवाले फ्लैट का वह छोकरा साला अक्सर कनि-कनि आँखों से कुछ न देखने का भाव जताते हुए भी हर वक्त इधर ही घूरता रहता है। कौन जाने, मीलू भी उसकी ओर देखती है या नहीं।·· शायद नहीं! उसका टेस्ट इतना खराब नहीं हो सकता।

अरुण ने अचानक मीलू को गुदगुदा दिया।

"एइ, भइया !···" मीलू खीजते हुए उठ बैठी।

अरुण ने दबी आवाज में पूछा, "मौसा ने मुझे मिलने को क्यों कहा है, रे ?"

मीलू ने लापरवाही से कहा, "जाने कौन-सी एक नौकरी··· टेम्पोरेरी नौकरी।"

"ओऽ···"

"क्यों, तू जा नहीं रहा है ?"

"एक बार तो खैर, जाना ही पड़ेगा।"

"मैं भी चलूंगी तेरे साथ ! उस दिन मौसी कितना बुला गयी थीं।" मीलू ने कहा।

अरुण की जैसे जान बची। अकेले में छोटे मौसा उस दिन की बात को लेकर जाने क्या-क्या पूछेंगे। मीलू साथ रहेगी तो शायद उसे थोड़ी-बहुत रिहाई मिल जाए। कहा, "अच्छी बात है ! चलना ! शाम को चलेंगे।"

अभी तो समूची दोपहर पड़ी है। उसके पहले कॉफी-हाउस ! कोजीनुक में इतनी-इतनी देर तक यार-दोस्तों का इन्तजार करने के बाद भी किसी को न पाकर उसका मूड खराब हो गया। उस पर से रूनू के बारे में अलग परेशानी। वह इतनी सहजता से उसके इतने करीब आ गयी है। शायद इसीलिए हर वक्त उसे खो देने का भय घेरे रहता है। कभी-कभी अरुण को यह लगता है कि रूनू उसे गलती से प्यार कर बैठी है। किसी भी दिन उसे अपनी गलती का अहसास हो सकता है और तब वह उसकी नजर में टिकलू जैसा ही साबित होगा।

कॉफी-हाउस में कदम रखते ही अरुण ने देखा, वहाँ सभी लोग हैं। समूचे हॉल में सिगरेट का धुआँ ! हवा में कॉफी की तुर्शी ! और बातों का शोर ! बातों को मानो कॉफी के दानों की तरह परकोलेटर में डालकर भूना जा रहा हो।

"हुँह ! देखा जाएगा।" इतनी देर बाद उसे लगा कि कलकत्ते ने उसे फिर से वापस बुला लिया है।

उसने उन लोगों को दूर से ही देख लिया। उफ ! आज उर्मि ने

क्या बढ़िया मेक-अप किया है।

अरुण को देखते ही चार जोड़ी बाँहें, उसके स्वागत में आँधी-तूफान में काँपती हुई पेड़ की नाजुक टहनी की तरह हवा में लहरा उठीं।

एक नन्दिनी ही फीकी-सी हँसी बिखेर कर रह गयी। उसने हाथ भी नहीं हिलाया।

अरुण कुर्सी खींचकर बैठा ही था कि सुजीत ने कहा, "आज हम लोग नन्दिनी-विदाई समारोह मना रहे हैं। इनका ब्याह हो गया और आज से यह विराम की दीदी के यहाँ जा रही है। उसकी दीदी ने इन्हें एक्सेप्ट कर लिया है। सिर्फ उसके दादा ही···।"

विराम ने झुँझलाहट भरी आवाज में कहा, "दादा साला!··· नीच है।"

नन्दिनी ने भौंहें सिकोड़कर विराम की ओर बरजती हुई आँखों से देखा। वह मुँह से कुछ नहीं बोली।

अरुण का ध्यान उन सब की ओर नहीं था। वह तो एकटक उर्मि को देख रहा था। फिर हँसकर कहा, "एइ, उर्मि, आज तू बला की खूबसूरत लग रही है।" फिर दूर बैठे उस मूँछवाले लड़के की ओर इशारा करते हुए कहा, "तुझे निहारते हुए···उस बौद्धिक के दुम के सीने में अब तक कैंसर हो गया होगा।"

उर्मि ने हँसकर कहा, "कहीं तुम लोग तो इस मर्ज के मरीज नहीं हो गये?"

टिकलू हँस पड़ा, "अलबत्ता हो गया है। लग रहा है सीने में साला कोई तक्षक साँप कुर्र···कुर्र करके पसलियों को कुतर रहा है।"

सुजीत ने कहा, "सच्ची, यह तेरी बहन की सास आज बिल्कुल सोफिया लॉरेन लग रही है।"

सबने एक जोर का ठहाका लगाया। विराम चाहकर भी अपनी कोई राय नहीं दे पाया। वह बोल भी कैसे सकता था? अगर वह कुछ कहता तो नन्दिनी अकेले में उसकी खबर न लेती।

उर्मि आज सचमुच बहुत अच्छी लग रही थी। बैक कौम्बिंग करके

पार्क स्ट्रीट की फैशनेवल लड़कियों की तरह जूड़ा बनाया था, खींच-खींचकर भौंहें बनायी गयी थीं। संगमरमरी गर्दन। गाल से लेकर गर्दन तक मानो पुरी के तट की सीपिया ढलानें हों। कंधे से जुड़ी हुई लम्बी-लम्बी बाँहें मानो अनावृत दरख्त हों या फिर नाइलॅन की साड़ी में लिपटी हुई सारी देह-यष्टि ही मानो एक विशाल दरख्त हो, यहाँ-वहाँ से जिसके छिलके उतर गए हों। उसे सिर्फ दूर से देखते रहने का ही मन नहीं हो रहा था, छूने की भी तबीयत हो आयी।

उर्मि ने अचानक ही सवाल किया, "एइ, अरुण, तूने कभी ड्रिंक किया है ?"

अरुण के कुछ कहने के पहले टिकलू ने दूसरा सवाल किया, "क्यों बे, कितनी दफा ?"

"जीत, तू ?"

सुजीत ने हँसकर कहा, "बीयर पी है।"

टिकलू ने नाक सिकोड़कर कहा, "सोडा हो या बीयर, माँ कसम, मैं नीट नहीं पी सकता।" उन लोगों को कुछ समझ न आते देखकर, उसने अपनी बात साफ की, "मेरा मतलब है···साथ में थोड़ी-बहुत व्हिस्की न हो तो···।"

उर्मि हँस पड़ी। फिर कहा, "सुन, एक दिन मैं भी थोड़ा-सा टेस्ट करना चाहती हूँ। मुझे ले चलेगा ?"

"आज ही चल न !" टिकलू सबसे अधिक उत्साहित हो उठा।

उर्मि की आँखें पलभर को चमक उठीं, "येस, चल नन्दिनी-विदाई के उपलक्ष में आज ही जश्न मना डालें।" और वह हँस पड़ी।

नन्दिनी का चेहरा डर से सहम गया, "नहीं ! नहीं ! मैं नहीं जाऊँगी।"

विराम ने कहा, "ना बाबा, हम लोगों को आज दीदी के यहाँ जाना है।"

इतनी देर बाद अरुण ने कहा, "आज रहने ही दिया जाए।"

टिकलू नाराज हो उठा, "साले, बीच में ट्राम की रस्सी काटने की आदत तेरी अभी गयी नहीं ?"

थोड़ी देर के लिए सब गुमसुम हो गए।

"तो फिर आज का प्रोग्राम ड्रॉप ही किया जाए।" कहकर उर्मि भी जो चुप हुई, तो दुबारा कोई बात नहीं की। दरअसल किसी नयी घुराफात की उम्मीद में सब उत्साहित हो उठे थे लेकिन ऐन मौके पर कोई-न-कोई लँगड़ी मारेगा ही।

टिकलू ने क्षुब्ध होकर कहा, "हम लोगों की किस्मत ही बुरी है। सोने जाओ तो, नींद भी कैसे आए? साले बिस्तर में रूई से अधिक रूई के बीज भरे रहते हैं।"

विराम उसकी झुंझलाहट देखकर हँस दिया। कहा, "अच्छा, अब हम लोग चलें।"

सब उसे बस तक पहुँचाने आए।

अरुण नन्दिनी से अकेले में मिलने का मौका ढूँढ रहा था ताकि विराम से भी छुपकर, रूनू को टेलीफोन करने का इन्तजाम हो सके।

जाने क्यों उसे लग रहा था कि नन्दिनी उन दोनों के बारे में थोड़ा-बहुत जानती है। हाँ, उसने विराम को कुछ बताया है या नहीं उस विषय में थोड़ा शक था।

शायद विराम के कानों में भी उसकी बातों की भनक पड़ चुकी थी। उसने कहा, "देख, तू सबसे यही कहना कि नन्दिनी के बारे में तुझे कुछ भी नहीं मालूम है।"

अरुण ने भी हँसकर कहा, "हाँ-हाँ, इस बात के लिए तू बे-खौफ रह! मैं कहूँगा मुझसे मुलाकात ही नहीं हुई।"

रूनू को किस वक्त और कैसे फोन किया जा सकता है, यह जानकर वह खुश हो उठा। उसे अब रूनू पर गुस्सा आने लगा। उसकी करतूत देखो, कैसा गुड गर्ल जैसा मुँह बनाकर उस दिन कहा था कि विराम और नन्दिनी को कुछ नहीं मालूम। अरुण ने भी उन्हें कुछ बताने को मना किया था। गजब! इन लड़कियों का कोई भरोसा नहीं। सच-मुच, उन पर इत्ता-सा कोई भरोसा नहीं। सचमुच उन पर इत्ता-सा भी विश्वास नहीं किया जा सकता।

टिकलू जितनी गहराई से सोच रहा था, उसे उतना ही मजा आ रहा था।

"उर्मि के सामने, आज तू खूब बढ़-बढ़कर पम्प कर रहा था, मानो नम्बर वन पियक्कड़ है। इधर मैं साली जेब से ठनठन गोपाल था।" सुजीत ने लौटते हुए टिकलू को ताना मारा।

अरुण ने कहा, "कुछ भी हो, नन्दिनी के सामने ऐसी बातें करना अनुचित है।"

टिकलू भड़क गया। उसने गुस्से में भरकर कहा, "अबे, जाऽ! जा! उर्मि मटन-समोसा बनी तेरी आँखों के आगे बैठी रहे, तो कुछ नहीं! मैंने जरा शराब की बात कर दी तो गुनाह हो गया। अरे, जरा-सा पिला देता उसके बाद देखता, 'मैं पवित्र! मैं विशुद्ध!'—सारे मुगालते चिरैया की तरह फुर्र से उड़ जाते।"

अरुण ने बात आगे नहीं बढ़ायी। उसने यूँ मुँह बनाया मानो नीम की पत्तियाँ चबा रहा हो।

इसीलिए तो टिकलू को आजकल सुजीत और अरुण असहनीय लगने लगे हैं। साले, सब मिलकर जब अड्डा देते हैं, फिकरे कसते हैं, सपने देखते हैं, तो कुछ नहीं, एक उसी के सन्दर्भ में सब ऐसा मुँह बनाते हैं, मानो टिकलू बहुत नीच और गिरा हुआ इन्सान है। वह मानो सचमुच ही गली-चबूतरों पर अड्डा देने वाला छोकरा है।

हुँह: कौन कितना शरीफ है, उसे सब मालूम है। साले, सब रहते हैं किराए के मकान में और···

पार्क के पीछे के तीस फुटिया रास्तों पर खड़े तमाम मकान अचानक उसकी आँखों को नए-नए लगे। किसी ने पुराना मकान बिल्कुल ढहाकर नयी ग्रिल फिट कर ली है, किसी ने बरामदे को बढ़ाकर नयी-नयी खिड़कियाँ निकलवा ली हैं और मकानों की बिल्कुल नयी शक्ल निकल आयी है। कोई-कोई मकान तो सचमुच नये हैं। उन सब के बीच टिकलू का मकान ही जमीन में धँसा हुआ लगता है। जंग लगे हुए लोहे के खम्भे! वह कभी-कभी अपने इस मकान प

गर्व महसूस करता है। कभी निहायत शर्मिन्दगी। बचपन से ही उसके मन मे बापू के खिलाफ एक क्षोभ जमा होता रहा है। जिन्दगी भर बापू ने आखिर क्या किया ? पैतृक मकान मिलने पर भी, उसे माँज-घिसकर जरा शरीफ शक्ल तक नही दे पाये और अपने बेटे के सामने उपदेश झाड़ते हैं। उसे बिल्कुल अपनी मुट्ठी में रखना चाहते हैं।

टिकलू को अपने बापू के प्रति इत्ती-सी भी श्रद्धा नही है। जब उसकी माँ ही उनकी इज्जत नही करतीं, तो वह क्यो करे ? बापू ने कितनी पढ़ाई-लिखाई की या कभी की भी थी या नहीं, टिकलू को ठीक-ठीक नहीं मालूम। लेकिन उसे पक्का विश्वास है कि बापू अगर उसकी बात मान कर चले होते तो इत्ते दिनों मे, बिजनेस के पैसो से बिल्कुल लाल हो जाते। हर वक्त 'प्रेस! प्रेस!' किया करते हैं। जायदाद के नाम पर बाजार के पास, एक मकान के ग्राउण्ड फ्लोर मे दो अँधेरे कमरे। उसमे दो ट्रेडल मशीन फिट कर ली हैं। 'घटाग! घटांग!' करके सिर्फ हैण्डबिल और रसीद-बुक छापते रहते हैं, बहुत हुआ तो कभी-कभार श्राद्ध के कार्ड की छपाई का काम भी मिल जाता है। प्रेम मे कोई नया ग्राहक आता है, तो बापू उसकी ऐसी खुशामद करते हैं, मानो उनके घर समधी आया हो। जब वे सफेद टूइल की गन्दी-सी शर्ट पहने बैठे होते हैं, तो उनका परिचय देते हुए भी उसे शर्म आती है।

उसकी माँ ने एक बार कहा था, "आवारों की तरह इधर-उधर भटकने की अपेक्षा छापाखाने का कामकाज तो देख सकता है।"

टिकलू ने नाक सिकोड़कर कहा, "आजकल के जमाने मे दो-ठो टुटपुँजिया मशीन को छापाखाना नही कहते माँ!"

माँ ने नाराज होकर कहा, "इन्हीं मशीनों से दोनों जून का खाना मयस्सर होता है। न हो, तू ही कुछ कर दिखा न! चल तू ही दिखा दे कि छापाखाना किसे कहते हैं।"

टिकलू के मन में कभी-कभी सचमुच यह इच्छा जागती है कि वह कोई बहुत बड़ा काम कर डाले।

"जानता है, मेरे दिमाग में बहुत-सारे प्लान भी आते हैं। पैसेवाला

छोकरा भी फँस जाता है, लेकिन माँ कसम, उसके फौरन बाद ही जाने क्या हो जाता है कि बातचीत पक्की होते-होते साला मछली की तरह सड़ से हाथ से फिसल जाता है।"

सुजीत ने उसकी हँसी उड़ाते हुए कहा, "तू साला, हमेशा इसी चक्कर में रहता है कि कैसे दूसरों के रुपयों पर मैनेजरी का रोब जमाया जाए···।"

"अबे, छोटा-मोटा मैनेजर भी नहीं, सीधे मैनेजिंग डाइरेक्टर बनने का ख्वाब देखता है, जब बगल में एक सजी-सजायी स्टैनो होगी···।" अरुण ने भी उसकी हँसी उड़ाते हुए कहा।

इन्हीं सब कारणों से तो आजकल सुजीत और अरुण उसे असहनीय लगने लगे हैं। वे लोग कोई बड़ी बात जैसे सोच ही नहीं सकते। सिर्फ डेढ़-दो सौ रुपल्ली की नौकरी के लिए इधर-उधर भटक रहे हैं। अगर कोई नौकरी मिल भी जाए, तो कौन-सा तीर मार लेंगे। डलहौजी में हर रोज दोपहर को गरम चने ही तो चबाया करेंगे।

माँ भी कुछ नहीं समझती हैं। उस दिन फौरन पूछा, "इधर-उधर अड्डेबाजी करने के बजाय, कोई काम क्यों नहीं करता ?"

हुँहः, उसके अड्डेबाजी करने पर सब मानो बिच्छू हो उठे हैं।

वह कहीं अड्डा न दे तो आखिर वक्त कैसे कटे ? अब साली ऐसी आदत पड़ चुकी है कि अपने अड्डे पर न जाए, तो लगता है जैसे कहीं कुछ होने से रह गया है। कहीं कुछ छूट गया है।

"अच्छा, तू ही बता सुजीत, क्या सच ही ऐसा नहीं लगता ? ये बूढ़े-खूसट लोग, कसम से कुछ समझने को ही तैयार नहीं। अरे, अड्डे-बाजी न करता तो इतने दिनों में सड़-गलकर खत्म हो जाता।"

सुजीत ने हँसकर कहा, "हम सब में एक अरुण ही खुशकिस्मत है। उसके लिए वक्त गुजारने की कोई समस्या नहीं है।"

अरुण ने कोई जवाब नहीं दिया। "खुशकिस्मत ! अबे, तूने कभी प्यार किया है ? प्रेम किसे कहते हैं, जानता भी है ? तकलीफ होती है रे, सिर्फ तकलीफ ! वक्त गुजारने की कोई समस्या नहीं है—रूनू से जरा दिल खोलकर बातें होने के बाद से ही जानता है, क्या मन

होता है ? मन होता है कि हर वक्त वह मेरे करीब ही बनी
दो-दो, तीन-तीन दिनों बाद मुलाकात होती है। ऐसे में समय कट
बात कौन कहे, लगता है, घड़ी की सुइयों को मानो मूर्छा का रो
गया है ! आगे खिसकती ही नहीं।"

"एह, मामला कित्ती दूर बढ़ा ?" अचानक टिकलू ने प्रश्न कि

"प्रेम क्या आगे बढ़ने या पीछे हटने की चीज़ है ?" अरुण
झुँझलाकर कहा, मानो उनकी पीठ में किसी ने आलपिन चुभो दी
"तेरी अक्ल में कुछ नहीं आने का !···तू कुछ नहीं समझेगा।"

सुशांत हँस पड़ा, "अबे, तू आगे भी नहीं बढ़ा, पीछे भी नहीं,
मामला क्या बिल्कुल ठप्प होकर जम गया है। उस छोकरी को देखक
तो लगा था, बड़ी चालू चीज है।"

अरुण ने असह्य दर्द से आँखें मूँद लीं।

टिकलू ने हँसी का मानो पहाड़ ही उठा दिया।

वह लड़की चालू है ! बुरी है ! उसे अपनी उँगलियों पर नचा
रही है—यह सब सुनते-सुनते अरुण के कान पक गए। उनके सामने
वह कुछ कह भी तो नहीं सकता। जो उसकी नितान्त गोपनीय बातें
हैं, उन्हें वह सरे-बाजार कहे भी कैसे ? सारी बातें इतनी दबी-ढँकी हैं,
तभी तो इतनी खूबसूरत लगती हैं।

टिकलू को अरुण की यह बात बड़ी चुभ गयी,—"तेरी अक्ल में
कुछ नहीं आने का···तू कुछ नहीं समझेगा !"···हुँह: वह कुछ नहीं
समझता। जितनी समझदारी है, साले अरुण में ही है। रूनू के साथ
अकेले-अकेले ज़रा घूम-फिर लिया, रेस्तराँ में बैठकर जेब खाली कर
आया, पार्क में बैठकर बैल की तरह घास चबाता रहा और दो-एक
मीठी-मीठी बातें क्या कर आया—बस ! अरे, टिकलू में तुझसे ज्यादा
अक्ल और समझदारी है, यह तुझे नहीं मालूम। टिकलू की मजबूरी
यही है कि वह सब कहने लायक बातें नहीं हैं। वह लोग सुनकर छी-
छी करेंगे, इसी से वह चुप है।

कौन जाने यह पाप है या नहीं। टिकलू खुद भी नहीं जानता।
यूँ वह अपने बाप से भी सिर्फ इसी वजह से डरता है। उन्हें कभी शक

न हो जाए। जाने यह उसके मन का कोरा भय है या सिर्फ संकोच। कौन जाने उसकी बात सुनकर सुजीत और अरुण भी मजाक उड़ाएँ या लानत भेजें।

कुछ भी हो यह प्रेम-प्यार क्या बला है, वह भी जान गया है। अलबत् जानता है ! विराम या अरुण से उसकी स्थिति में फर्क कहाँ है ? उसके दिल में क्या कम छटपटाहट है ? उसे क्या कम तकलीफ है ? किसी को पाने के लिए वह कम बेचैन है ? अच्छा, किसी को सिर्फ अपना तन देकर प्यार नहीं किया जा सकता ? फिर इतनी छटपटाहट क्यों होती है ?

टिकलू के मन में भी तरह-तरह के रंगीन ख्याल आते हैं। उसका भी मन होता है कि वह किसी के साथ घूमे-फिरे, जरा देर मुलायम घास पर बैठे, हावड़ा-पुल पर खड़ा होकर गंगा की लहरों पर चमकते हुए पानी की लहरें गिने। किसी के साथ सटकर बैठे, उसके चेहरे पर अपनी मुग्ध दृष्टि टिकाकर निहारा करे। सच्ची, उसकी हँसी बहुत जानमारू लगती है। टिकलू की तबीयत होती है वह भी लोगों के सामने से छाती फुलाकर चले।

अरुण ठीक ही कहता है। हम लोगों में बात करने की तमीज नहीं है। हमें सचमुच बात करना नहीं आता। जब दिन-रात मन के भीतर खुशी के लावे फूट रहे हों, ऊपर से उन्हें दबाए रखो—इस डर से छुपाए रहो कि दुनिया सुनेगी तो थू-थू करेगी ! हुँहः !

उसका बहुत बार मन हुआ कि वह भी अरुण और सुजीत को थोड़ा-बहुत आभास दे। लेकिन वह कहते-कहते हिचक गया ! हालांकि, सब साले कहीं न कहीं···।

"अच्छा, तेरा कभी मन भी नहीं करता कि किसी से थोड़ी देर बातें करें ?"

जा ब्बाबा ! टिकलू का मन जिसके लिए इतना बेचैन रहता है, वह सब कुछ नहीं है ? अपने ही सीने में मुंह गड़ाकर, वह अपने दिल की आग बुझाने की कोशिश करता है। यह कोई गुनाह है ? कौन जाने, हो सकता है प्रेम-प्यार कुछ और हो। टिकलू को ही समझ न

आया हो। उसका प्रेम शायद चहारदीवारी में दब-घुटकर रह गया है, शायद इसीलिए उसे ऐसा लगता है।

चलो मान लिया वह प्रेम-प्यार कुछ नहीं समझता। उसे जो मिल जाता है, वही ठीक है, उससे अधिक कहीं कुछ मिलने वाला नहीं है। इसके अलावा कभी-कभी उसके मन में एक और रंगीन सपना जागता है।

पहले-पहल जब उसने रूनू को देखा था, बाद में जब नन्दिनी को देखा, उसी समय से उसके मन में एक अजीब-सा सपना जागा था। लेकिन उसके लिए तो कहीं कुछ प्राप्य नहीं है। बाईस साल की जिन्दगी में कभी किसी ने खुद हाथ बढ़ाकर उसे कुछ नहीं दिया। अतः जहाँ से जितना-सा भी मिले, छीन-झपट लो। यह सब सोचते हुए टिकलू अपनी ही नजरों में छोटा हो आया। उसे लगा, "मैं···मैं शायद एक भयंकर स्काउण्ड्रल हूँ।"

सच्ची, उसे समझ नहीं आया अचानक ही वह ऐसी बेवकूफाना हरकत क्यों कर बैठा। हालांकि इस विषय में उसने पहले से कुछ नहीं सोचा था। उसके मन में जब जो आता है, वह बक देता है, लेकिन वह सब उसके मन की असली बात थोड़े ही न है। विराम और नन्दिनी को देखकर उसे अच्छा ही लगा था। फूलदान में सजे हुए फूलों की तरह खूबसूरत! उन्हें देखकर उसे लगा था, मैं तो साला, सुख का मुँह देखने से रहा, कम-से-कम ये लोग तो सुखी हो लें। लेकिन आज अचानक उसे क्या हो गया था···?

वह जानता है, शराब पीना बुरी बात है। उसने भी दो-चार बार सिर्फ चखकर देखा है। एकाएक उसका मन हुआ कि वह खुद ही अपने चेहरे पर कालिख पोत ले। वह नन्दिनी की निगाहों में तो बुरा आदमी साबित हो ही गया। अच्छा है, वह उसे और बुरा समझ ले! हर कोई उसे बुरा आदमी समझता है। अब लो, देख भी लो, वह किस हद तक गलीज है।

कौन जाने नन्दिनी ने विराम को क्या रिपोर्ट दी होगी। विराम को उसने हर पल ही टटोलती हुई निगाहों से देखा है। विराम की

न हो जाए। जाने यह उसके मन का कोरा भय है या सिर्फ संकोच। कौन जाने उसकी बात सुनकर सुजीत और अरुण भी मजाक उड़ाएँ या लानत भेजें।

कुछ भी हो यह प्रेम-प्यार क्या बला है, वह भी जान गया है। अलबत् जानता है! विराम या अरुण से उसकी स्थिति में फर्क कहाँ है? उसके दिल में क्या कम छटपटाहट है? उसे क्या कम तकलीफ है? किसी को पाने के लिए वह कम बेचैन है? अच्छा, किसी को सिर्फ अपना तन देकर प्यार नहीं किया जा सकता? फिर इतनी छटपटाहट क्यों होती है?

टिकलू के मन में भी तरह-तरह के रंगीन ख्याल आते हैं। उसका भी मन होता है कि वह किसी के साथ घूमे-फिरे, जरा देर मुलायम घास पर बैठे, हावड़ा-पुल पर खड़ा होकर गंगा की लहरों पर चमकते हुए पानी की लहरें गिने। किसी के साथ सटकर बैठे, उसके चेहरे पर अपनी मुग्ध दृष्टि टिकाकर निहारा करे। सच्ची, उसकी हँसी बहुत जानमारू लगती है। टिकलू की तबीयत होती है वह भी लोगों के सामने से छाती फुलाकर चले।

अरुण ठीक ही कहता है। हम लोगों में बात करने की तमीज नहीं है। हमें सचमुच बात करना नहीं आता। जब दिन-रात मन के भीतर खुशी के लावे फूट रहे हों, ऊपर से उन्हें दबाए रखो—इस डर से छुपाए रहो कि दुनिया सुनेगी तो थू-थू करेगी! हुँहः!

उसका बहुत बार मन हुआ कि वह भी अरुण और सुजीत को थोड़ा-बहुत आभास दे। लेकिन वह कहते-कहते हिचक गया! हालांकि, सब साले कहीं न कहीं···।

"अच्छा, तेरा कभी मन भी नहीं करता कि किसी से थोड़ी देर बातें करें?"

जा व्वाबा! टिकलू का मन जिसके लिए इतना बेचैन रहता है, वह सब कुछ नहीं है? अपने ही सीने में मुँह गड़ाकर, वह अपने दिल की आग बुझाने की कोशिश करता है। यह कोई गुनाह है? कौन जाने, हो सकता है प्रेम-प्यार कुछ और हो। टिकलू को ही समझ न

आया हो। उसका प्रेम शायद चहारदीवारी में दब-घुटकर रह गया है, शायद इसीलिए उसे ऐसा लगता है।

चलो मान लिया वह प्रेम-प्यार कुछ नहीं समझता। उसे जो मिल जाता है, वही ठीक है, उससे अधिक कहीं कुछ मिलने वाला नहीं है। इसके अलावा कभी-कभी उसके मन में एक और रंगीन सपना जागता है।

पहले-पहल जब उसने रुनू को देखा था, बाद में जब नन्दिनी को देखा, उसी समय से उसके मन में एक अजीब-सा सपना जागा था। लेकिन उसके लिए तो कहीं कुछ प्राप्य नहीं है। बाईस साल की जिन्दगी में कभी किसी ने खुद हाथ बढ़ाकर उसे कुछ नहीं दिया। अतः जहाँ से जित्ता-सा भी मिले, छीन-झपट लो। यह सब सोचते हुए टिकलू अपनी ही नजरों में छोटा हो आया। उसे लगा, "मैं···मैं शायद एक भयंकर स्काउण्ड्रल हूँ।"

सच्ची, उसे समझ नहीं आया अचानक ही वह ऐसी बेवकूफाना हरकत क्यों कर बैठा। हालांकि इस विषय में उसने पहले से कुछ नहीं सोचा था। उसके मन में जब जो आता है, वह बक देता है, लेकिन वह सब उसके मन की असली बात थोड़े ही न है। विराम और नन्दिनी को देखकर उसे अच्छा ही लगा था। फूलदान में सजे हुए फूलों की तरह खूबसूरत! उन्हें देखकर उसे लगा था, मैं तो साला, सुख का मुँह देखने से रहा, कम-से-कम ये लोग तो सुखी हो लें। लेकिन आज अचानक उसे क्या हो गया था···?

वह जानता है, शराब पीना बुरी बात है। उसने भी दो-चार बार सिर्फ चखकर देखा है। एकाएक उसका मन हुआ कि वह खुद ही अपने चेहरे पर कालिख पोत ले। वह नन्दिनी की निगाहों में तो बुरा आदमी साबित हो ही गया। अच्छा है, वह उसे और बुरा समझ ले! हर कोई उसे बुरा आदमी समझता है। अब लो, देख भी लो, वह किस हद तक गलीज है।

कौन जाने नन्दिनी ने विराम को क्या रिपोर्ट दी होगी। विराम को उसने हर पल ही टटोलती हुई निगाहों से देखा है। विराम की

बातों से तो कोई आभास नहीं मिला। वह मन ही मन फैसला कर चुका था कि अगर वह जान गया होगा तो वह और बेशर्मी पर उतर आएगा, ताकि उसके मुंह पर और कालिख पुत जाए।

वह शायद इसलिए शराब के नशे में गर्क होना चाहता है कि अपने भीतर के अपराध-बोध से मुक्ति पा सके। शराब के नशे में भी नन्दिनी से माफी तो नहीं मांगी जा सकती, हां, अपने को बेधड़क कोड़े लगाए जा सकते हैं। कसम से मैं साला, सूअर का बच्चा हूं। कब क्या कर बैठता हूं, पता नहीं।

टिकलू ने अपने ख्यालों को दूसरी तरफ मोड़ने की कोशिश की—दरअसल वह निहायत शरीफ और भला आदमी है···उसकी बाहरी वेश-भूषा से लोग जाने क्यों उसे बुरा समझ लेते हैं। अचानक उसे नन्दिनी पर थोड़ा लोभ हो आया था, सिर्फ इसी वजह से क्या वह बुरा हो गया? अब विराम को जब सारा किस्सा मालूम होगा तो वह भी यही सोचेगा कि वह शायद इसी वजह से नन्दिनी को सुधा लोगों के घर ले गया था। हो सकता है उसे नन्दिनी पर भी शक होने लगे। वह सोचेगा···टिकलू सोचता रहा। उसने मारे अभिमान और दुःख के रो देना चाहा, लेकिन इस वक्त वह रो भी नहीं पा रहा है। दरअसल उसकी सुपारी जैसी आंखों का सारा पानी सूख चुका है। अब साला वह दो बूंद रो भी नहीं सकता।

अरुण ने टैक्सी-ड्राइवर को टोका, "जरा आहिस्ते चलाइए न। बिल्कुल आहिस्ते-आहिस्ते!"

उसकी आंखें बस-स्टॉप की भीड़ में रूनू को खोजती फिरीं। रूनू भीड़ से हटकर और कहीं इन्तजार करने को कभी राजी नहीं होती। कहीं कोई जान-पहचान का आदमी उसे देख ले तो? अतः वह भीड़ में घुसकर ही निश्चिन्त हो पाती है। इधर इन टैक्सीवालों का भी क्या मिजाज होता है! पैसेंजर से यूं पेश आते हैं मानो किसी भिखारी से पीछा छुड़ाना चाह रहे हों। रूनू अगर फौरन नहीं मिली, तो टैक्सी

छोड़ देनी होगी। उसके आने पर दुबारा टैक्सी ढूँढनी होगी। उफ! कहीं तो थोड़ी-सी सच्ची शान्ति मिलती! रुनू इतनी देर से आती है कि उस वक्त बस-ट्रामों में भी जगह नहीं मिलती।

अचानक उस भीड़ में उसकी आँखें रुनू से जा टकरायीं। अरुण खिड़की से हाथ निकालकर उसे आवाज देने ही जा रहा था, कि वह खुद ही आगे बढ़ आयी।

अरुण ने कहा, "आओ, जरा जल्दी करो!"

रुनू टैक्सी में बैठते हुए सकोच से गड़ गयी। संकोच तो होगा ही! इस वक्त अगर कोई उसे देख ले, तो कोई बहाना भी नहीं कर पाएगी। हो सकता है मामा उसे डाँटें-फटकारें भी नहीं, लेकिन उसे खुद तो शर्म आएगी। इन टैक्सियों से तो उसे नफरत-सी हो गयी है। आजकल दिन-रात जो हो रहा है, वह अपनी आँखों से ही देख रही है…।

नन्दिनी के जाने के बाद से ही रुनू जरा सहमी-सहमी रहती है। नन्दिनी के भाई सचमुच शरीफ आदमी हैं, इस हादसे के बाद कैसे टूट गए हैं! अगर उसे विराम का पता मालूम होता, तो वह खुद ही उसे सारा हाल बता आती। अभी ही कितनी मुश्किल हो रही है, उसने विराम का नाम तक नहीं लिया। अगर वह बता देती तो मुमकिन है, उसके कॉलेज से उसका पता-ठिकाना मिल जाता। लेकिन मामी सोचेंगी, रुनू को सब मालूम था। क्या जाने भीतर-ही-भीतर वह भी कोई गुल खिला रही हो।

अरुण की निगाहें बार-बार टैक्सी के मीटर की तरफ उठ जाती थीं।

रुनू ने कहा, "बाप रे! कितनी हिम्मत है तुम में!"

अरुण हँस दिया, "क्या करता? तुम्हें खबर तो देनी ही थी!"

"उस दिन क्या हुआ था?" रुनू ने अरुण के चेहरे पर आँखें टिकाए हुए पूछा, मानो अगर वह झूठ बोलने की कोशिश करेगा, तो वह पकड़ लेगी।

"यह एक लम्बी बात है! मुझे उस दिन अचानक जाना पड़ा।"

रूनू की भौंहों में एक हल्की-सी सिहरन हुई। उसने बाहर की तरफ देखते हुए पूछा, "जाना ही था, तो पटना ही क्यों···कहीं बहुत दूर···पेशावर वगैरह क्यों नहीं चले गये ?"

रूनू का चेहरा देखते हुए, उसकी आवाज का लहजा सुनकर अरुण को गुस्सा आने लगा। कमाल है ! रूनू को उसकी बातों पर जैसे यकीन ही नहीं आ रहा है।

अरुण ने अपनी बातों पर वजन देते हुए कहा, "मैं सच कह रहा हूँ, मैं पटना गया था।"

"क्यों, तुम कॉफी-हाउस नहीं गये थे ? मक्खी रानी के अड्डे पर ?"

अरुण के कान सुन्न हो आए। छिः ! छिः ! रूनू अपने मन में यह कैसा संशय पाल रही है।

अरुण से कोई जवाब नहीं देते बना। उसका मन गहरे अभिमान से करक उठा। अगले ही पल उसे हल्का-सा शक हुआ। उस दिन टिकलू लोग विराम और नन्दिनी को लेकर कॉफी-हाउस गये थे और वहाँ से दक्षिणेश्वर···क्या रूनू को इस बात का पता चल गया है ? हो सकता है, उसे लगा कि उसके साथ अरुण भी था।

रूनू ने एक बार फिर उसकी ओर देखा और कौतुक से हँस पड़ी।

उसको हँसते देखकर अरुण भी हँस पड़ा। चलो, इतनी देर बाद उसके चेहरे पर हँसी तो खिली। वह विराम और नन्दिनी की बात क्या उसे बता दे ? लेकिन रूनू से सूचना पाकर, नन्दिनी के भाई कोई फसाद न खड़ा कर दें। तब वह किसी को मुँह दिखाने लायक नहीं रहेगा। सुजीत और टिकलू उसे लानतें देंगे, विराम उसे टुच्चा आदमी समझेगा।

न्ना ! वह रूनू को कुछ नहीं बताएगा। लेकिन···हत्तेरे की। अजीब हुज्जत है। अगर इसी बीच नन्दिनी ने ही रूनू को फोन करके सब बता दिया हो। रूनू सोचेगी, इस आदमी को मैं शरीफ समझती थी। लगा था, मुझे प्यार करता है, मुझसे कोई बात नहीं छुपाएगा। लेकिन···

अरुण ने प्रसंग को टालते हुए कहा, "तुम्हारी मामी को तुम पर किसी तरह का शक तो नहीं हो गया ?"

रुनू ने हँसते हुए सिर हिला दिया। फिर वह उठी, "तुम भी कैसे हिम्मती हो, बाबा !"

अरुण भी हँस दिया। उसके तन-मन में रुनू की खनखनाती हुई हँसी भर गयी। वह खुश हो उठा। कहा, "जानती हो, गाइड में तुम्हारे मामा का नाम खोजता रहा, फिर फोन नम्बर निकाला···"

"मैंने मामा का नाम तुम्हें बताया था ?" रुनू ने अपनी धुँधली पड़ी स्मृति को टटोलते हुए पूछा।

अरुण पलभर को सकपका गया। उसके मामा का नाम तो नन्दिनी से मालूम हुआ था। उसे झटपट छिपाते हुए कहा, "हाँऽ—हाँ, तुम्हीं ने तो बताया था।" फिर जरा रुककर कहा, "मैंने सुबह ही नम्बर मिलाया था, शायद मामा जी ने ही फोन उठाया था, मैंने झट से लाइन काट दी।"

रुनू ने अरुण की ओर विस्मय से देखा, "हाय माँऽ ! ऐसा करने से तो वह सोचेंगे···"

अरुण ने उसी तरह हँसते हुए कहा, "एक दफा सुबह किया था, फिर घण्टे भर बाद किया, तब जाकर तुम्हारी आवाज सुनाई दी। उस वक्त तुम्हारे आस-पास कोई था तो नहीं ?"

"ना। लेकिन अभी हम लोग चल कहाँ रहे हैं ?" रुनू ने अरुण की तरफ देखकर पूछा।

अरुण ने टैक्सी ड्राइवर को निर्देश दिया, "लाइट हाउस।"

सिनेमा हॉल के अँधेरे के अलावा और कहीं इतने निर्विघ्न भाव से पास-पास नहीं बैठा जा सकता। किसी से फुसफुसाकर बातचीत भी नहीं की जा सकती।

टिकट खरीदकर वे दोनों हॉल में घुसे। आह, कितनी ठण्डक ! इतनी देर से उसके सीने में धधकते संशय और अभिमान का ज्वालामुखी जैसे ठंडा पड़ गया।

हॉल में घुसते हुए टिकट चेकर ने जब टिकट का आधा

हिस्सा फाड़कर उसे लौटा दिया, तो अरुण ने उसे जेब में रख लिया। वह शायद देखना चाहता था, रूनू आज भी आधा टिकट माँगती है या नहीं।

"एइ, टिकटें कहाँ हैं ? लाओ, मुझे दो।" रूनू ने सीट पर बैठते ही हाथ बढ़ा दिया। अरुण ने अँधेरे में ही रूनू का हाथ थामकर उसकी मुट्ठी में टिकटें ठूस दीं। इस मामूली-से स्पर्श में उसने शायद असीम सुख पा लिया।

रूनू ने फटी हुई टिकटों को सहेजकर अपने पर्स में रख लिया। अभी ये टिकटें उसके पर्स में हैं, घर जाकर वह दराज खोलेगी और उन टिकटों को सहेजकर रख देगी। हाँ, वह कुछ भी खोने नहीं देगी। उसने अपने मन के सबसे बड़े दराज में जैसे नन्ही-नन्ही सुखद यादों को सहेजकर रख लिया है, उसी तरह वह इन टिकटों को अपनी मेज की दराज में छुपाकर रख लेगी।

अरुण इस दुविधा में था कि अपनी नौकरी की बात क्या उसे अभी ही बता दे। नहीं, पहले नौकरी मिल तो जाए। जाने वह नौकरी बताने लायक है भी या नहीं।

रूनू भी मन-ही-मन सोच रही थी कि नन्दिनी के चले जाने की बात क्या उसे बता दे। कहा, "एई, तुम्हें पता है, नन्दिनी अपने बड़े भाई से लड़-झगड़कर चली गयी है।"

"अरे···! कहाँ ?" अरुण को जैसे कुछ नहीं मालूम।

रूनू ने संक्षेप में सारा हाल बता दिया, फिर चुप हो रही।

अँधेरे में अरुण ने रूनू के कानों में फुसफुसाकर पूछा, "उस दिन तुम्हें मुझ पर बहुत गुस्सा आया होगा न ?"

रूनू ने उसे अलग हटाते हुए खिलखिलाती हुई आवाज में कहा, "अरे, क्या कर रहे हो ? पगले हो गये हो ? पीछे से लोग देख रहे होंगे।"

लोग देख रहे हैं। देख रहे हैं ! देख रहे हैं !! उफ ! जहाँ भी जाओ, चैन नहीं। मानो जमाने भर के लोग उन्हें ही घूर रहे हैं। दरअसल यह दुनियावाले किसी बंजर मैदान की सूखी घास की तरह

धू-धू करके जल रहे हैं, ईर्ष्या से सुलग रहे हैं। विराम और नन्दिनी को देखकर कभी अरुण भी मन ही मन फुँकता रहता था।···वैसे, एक दिन उसे बहुत अच्छा लगा था। दोनों की उम्र भी कितनी होगी! यही कोई अठारह-उन्नीस! दोनों बातें करते हुए, फुटपाथ पर चल रहे थे। दोनों के चेहरों पर एक अजीब-सा मुग्ध भाव था, मानो आस-पास की घटनाओं से उन्हें कोई लेना-देना ही न हो। अचानक दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। अरुण ने उन्हें दूर से ही देखा था। उसे उनकी हँसी बहुत भली लगी थी।

—लेकिन उन्हें यानी उसे और रूनू को देखकर, लोगों को बुरा क्यों लगता है?

रूनू की बातें सुनकर अरुण को फिर गुस्सा आने लगा। वह अलग हटकर बैठ गया। हुँह:, वह बाज आया। अब उससे बातें करे या सटकर बैठे या उसकी बला! लेकिन उसने अपना हाथ कुर्सी के हत्थे पर ही रहने दिया।

अँधेरे में रूनू की आँखें भी पर्दे पर दिखाई जानेवाली फिल्म की तरह चमक रही थीं। वह सामने पर्दे पर आँखें गड़ाए हुए पिक्चर देख रही थी।

अचानक अरुण के हाथों को कुछ ठण्डा-ठण्डा-सा लगा। वाह! मन भर उठा। रूनू उसकी हथेलियों पर उँगलियाँ फेर रही थी, शायद उसकी नाराजगी मिटाना चाहती थी।

अरुण ने मुँह घुमाकर एक बार उसकी तरफ देखा और फिर करीब सरक आया।

रूनू शायद मुस्कुरा रही थी। उसने उँगली से पर्दे की तरफ इशारा करते हुए कहा, "सामने देखो।" लेकिन उसका हाथ अरुण के हाथ पर टिका रहा।

अरुण ने जिस दिन पहली बार रूनू का हाथ छुआ था, उफ! उस दिन शर्म से मर जाने की तबीयत हुई थी···उन दिनों रूनू को भी मान-अभिमान या सन्देह का उतना ख्याल नहीं था। कभी-कभार अरुण ही अभिमान-अपमान के दर्द से, मन ही मन रो उठता था।

आखिर वह ऐसी कौन-सी जगह जाए जहाँ पल-दो पल के लिए रून्नू के बिल्कुल आमने-सामने बैठे ? यह कलकत्ता शहर दरअसल अभिशाप है—यहाँ कहीं कोई प्यार कर सकता है ? हुँह, प्यार-मुहब्बत की चाह को फूंक मारकर उड़ा दो। अगर तुम किसी का तन पाना चाहते हो या किसी की माँग में सिन्दूर लीपकर जीना चाहते हो, तो कलकत्ता तुम्हारा दोस्त है। दस रुपल्ली का एक नोट बढ़ा दो, तो तुम्हारे लिए किसी गन्दे-से होटल के दरवाजे खुल जाएँगे, भीतर घुसकर तुम बेखौफ सिटकनी लगा लो। जब बाहर निकलोगे तो गेट पर, सिपाही खट से एक सैल्यूट मारेगा, लेकिन अगर कहीं बाहर खुले एकान्त में बैठना चाहो, तो कोई-न-कोई जरूर पीछे लग जाएगा।

···कहते हैं, फागुन का महीना आ पहुँचा। रेडियो पर फागुन के गीत-वीत भी आने लगे हैं, लेकिन पत्रे के हिसाब से तो अभी वसन्त का ही मौसम है। खासी गर्मी पड़ने लगी है। विक्टोरिया में तो खचाखच आदमी भरे होंगे। अरुण ने सोचा, वहाँ जाने से बेहतर है, गंगाघाट की तरफ चला जाए।

"हाँ, वहीं ठीक है ! सुनती हूँ, वहाँ फूलों के बहुत सारे पेड़-वेड़ भी लगाए गए हैं और रोशनी का भी इन्तजाम किया गया है।" रून्नू ने कहा।

दोनों प्रिन्सेस-घाट पर पहुँचे। उफ ! वहाँ भी भीड़ ! दोनों जेटी की तरफ बढ़े। उनके आगे-आगे बेहद सजी-संवरी तीन-चार गोरी-गोरी पंजाबी लड़कियाँ चल रही थीं।

"अबे लगता है, गंगा नद्दी से बहुत सारी ईलिश मछलियाँ फुदककर ऊपर आ गयी हैं।" सात-आठ शोहदे छोकरे अपने अगल-बगल के साथियों के कन्धों पर हाथ रखे किसी वनमहोत्सव में लगाए हुए पौधों की तरह गोलाकार घेरा बनाए खड़े थे। उन्हीं में से एक लड़के ने जाने उन लड़कियों को या रून्नू की ओर देखते हुए फब्ती कसी।

"ईलिश मछली ? और इस मौसम में ?" रून्नू ने इधर-उधर निगाहें दौड़ाते हुए नासमझ-सा सवाल किया।

दोनों में अभी भी थोड़ी-बहुत औपचारिकता शेष थी, अतः अरुण

को साफ-साफ बताने में हिचकिचाहट हो रही थी। उसने अपनी चाल थोड़ी तेज कर दी। हाँ, उन दिनों वह दोनों किसी स्वप्न या रंगीन तस्वीर सरीखे पवित्र थे। उन दिनों शोहदों के कुत्सित कौतूहल या गन्दे फिकरे सुनकर लगता था, उनकी देह पर किसी ने कीचड़ उछाल दिया है। जैसे बरसात के दिनों में गाड़ी देखकर लोग जल्दी से किनारे हो जाते हैं, वैसे ही इन गन्दे फिकरों से भी देह बचाकर भाग खड़े होने की तबीयत होती है।

दोनों एक निर्जन जगह ढूंढ़कर खाली बेंच पर जा बैठे। अरुण को लगा रुनू उससे दूर हट कर बैठी है। अपने दोनों के बीच उस खाली जगह को देखकर अरुण को लगा, जैसे उसके गाल पर किसी ने तमाचा जड़कर यह जताना चाहा हो—तुम भी तो मरद जात हो! ईलिश मछलियों का नजारा देखने वाले उन शोहदे छोकरों की तरह! तुम्हारा भी क्या भरोसा? हालांकि अरुण के मन में अपने लिए कोई चाह या अपेक्षा नहीं है। अरुण को तो उस वक्त का इन्तजार है, जब रुनू भी कहे कि जैसे वह उससे मिलने को, जरा देर करीब बैठने को छटपटाता रहता है, वैसे ही उसके मन में भी कोई अभाव कसकने लगा है। अचानक उसकी विचारधारा झुंझलाहट में बदल गयी, "नहीं यार, ये लड़कियाँ कभी प्यार नहीं कर सकती। ये सिर्फ पाना चाहती हैं।"

अरुण की बातों पर टिकलू हँस दिया था, "चल, तुझे अक्ल तो आयी। वैसे अपन को यह सब पता है दोस्त! साला, तू लालटेन की बत्ती की तरह फुक्-फुक् जला करेगा, रुनू का जगमगाता हुआ चेहरा देख-देखकर मगन होगा कि माँ कसम, रुनू की हँसी कितनी खूबसूरत है। और बस, वह खुश!"

हाँ, टिकलू ने ठीक कहा था। सचमुच यह बेवकूफी नहीं तो और क्या है?

अरुण को कुछ समझ नहीं आ रहा था। उसकी मासूम-उदास आँखें अंधेरे में जल पर नन्हे-नन्हे पुखराजों की हिलती-डुलती परछाइयाँ देखती रहीं। उसके सामने से एक मोटर लांच गुजर गया। उसे लगा इतनी बड़ी दुनिया में कहीं-न-कहीं कोई अपना जरूर है। उसका ज

हुआ वह अभी, इसी दम उसके पास पहुँच जाए।···यहाँ उसका कोई नहीं है। अभी थोड़ी देर पहले, दोनों फूल की तरह महक रहे थे, अचानक उन मच्छीमार छोकरों ने कीचड़ उछालकर उन्हें मैला कर दिया।

रूनू चुप बैठी रही। अँधेरे में ही उसने एक बार अपनी घड़ी की तरफ देखा।

अरुण ने अपना क्षोभ दबाते हुए, उसकी नकल उतारने की कोशिश की, "···हाँ ऽ हाँ···अब कहो, आज जरा जल्दी घर पहुँचना है।"

रूनू हँस पड़ी। कहा, "हाँ, सुनिए, आज सचमुच जल्दी घर लौटना है। हर रोज कहाँ तक नए-नए बहाने गढ़ती रहूँगी।"

अरुण का मन हो रहा था, वह रूनू को एक बार छूकर देखे। उसे एक बार छू लेने से ही मानो उसके दिल की सारी जलन ठण्डी हो जाएगी। उसे इस असहनीय प्यास से मुक्ति मिल जाएगी।

सचमुच यह कैसी असहनीय यन्त्रणा है! जो उसके ख्यालों में हर दिन, हर पल उसके साथ रहती है, जिसे वह पल भर को भी अपने से अलग नहीं कर पाता, वह जब सचमुच उसके करीब आती है, तो लगता है, मानो दूर जाने के लिए ही, वह पास आती हो। जिसे वह अपने खून की एक-एक बूंद में महसूस करता है, उसे ही छूने में इस कदर लाचार! उसे लगा, रूनू भी उसके दिल की धड़कन की तरह है। सर्वाधिक अपनी। जिसे महसूस किया जा सकता है लेकिन जिसे स्पर्श नहीं किया जा सकता।

अरुण ने आग्रह किया, "थोड़ी देर और बैठो न!"

"नहीं, नहीं,···अब उठूंगी।" रूनू ने कहा जरूर, लेकिन वह उसी तरह बैठी रही।

अरुण ने बहुत हिम्मत करके अपना हाथ बढ़ाया और रूनू के हाथ पर हाथ रख दिया।

रूनू ने झट् से अपना हाथ हटा लिया।

अरुण ने राह में एक भी बात नहीं की। उसका चेहरा अपमान और निराशा से अजीब हो आया। वह रूनू की ओर देखने में भी

संकोच महसूस कर रहा था। उसे यह भी डर था कि वह पकड़ा न जाए।

अरुण उसे बस-स्टॉप तक छोड़ने आया। अब उससे चुप नहीं रहा गया। हाँ, वह रुनू को छुएगा भी नहीं, उससे किसी तरह की अपेक्षा भी नहीं करेगा, उससे प्यार की उम्मीद भी नहीं करेगा। वह तो सिर्फ इतना भर चाहता है कि वह प्यार करता रहे। बिना किसी अपेक्षा के प्यार किए जाना ही तो उसकी जिन्दगी का एकमात्र आधार है।

रुनू बस पर चढ़ी ही थी कि अरुण ने कहा, "एई, शुक्कर को मिलोगी? उस दिन तो तुम्हारी जल्दी छुट्टी होती है।"

रुनू ने पलटकर उसकी तरफ देखा और हँस दी, "असम्भव! शुक्करवार को तो होली है।"

होली! होली! बुझते हुए स्टोव को ऐन वक्त पर पम्प किए जाने की तरह, उसके मन में भी एक क्षीण-सी आशा जगमगा उठी थी···कि रुनू ने निर्मम भाव से नॉब घुमाकर, भक् से बुझा दिया।

अरुण हारे हुए खिलाड़ी की तरह शिथिल, अवसन्न-सा लड़खड़ाते हुए वापस लौट आया—हुँह, "देख टिकलू, मैं बहोत लकी हूँ रे, सच-मुच ब···होत लकी! वाह!"

असम्भव! शुक्करवार को तो होली है।

क्या असम्भव था? उससे किसी दिन मुलाकात करना? या शुक्रवार को होली की वजह से उससे मिल पाना? इधर कई दिनों से अरुण के दिल में अजीब-सी धुकधुकी मची थी।

दूर कहीं कोई ढोलक बजा रहा है। "होली है—होली।" लड़कों के झुण्ड ने शोर मचाया। रास्ते में चारों ओर हँसी का शोर, रंगभरी पिचकारियाँ, अबीर-गुलाल! अल्हड़-मस्ती। इस बार अगर टिकलू लोग उसे बुलाने भी आएँ, तो वह होली खेलने नहीं निकलेगा। असम्भव! असम्भव!! इस बार होली उसके लिए कोई रंग नहीं लायी।

"क्यों रे, तेरी आँखें इतनी लाल क्यों हैं ? कहीं, बुखार-उखार तो नहीं है ?" कनकलता अपना बायाँ हाथ अरुण के माथे पर रखते ही चौंक पड़ीं, "अरे, तुझे तो तेज बुखार है ! चल, लेट जा ! आराम कर।"

सिर दर्द के मारे, कनकलता का चलना-फिरना मुश्किल हो रहा था। वह दीवार के सहारे, आगे बढ़ीं और प्रकाश बाबू को आवाज देकर कहा, "सुनते हो, अरुण बुखार से तप रहा है। घर में कोई नहीं है। जरा तुम ही जाकर डाक्टर साहब को बुला लाओ।"

उसकी देह तप रही है ? नहीं तो। अरुण को कहीं कोई तकलीफ नहीं है। उसे तो पता ही नहीं चला कि उसे बुखार है। उसे तो सिर्फ एक ही तकलीफ है।

···रूनू उसे जरा भी प्यार नहीं करती। इत्ता-सा भी नहीं। और अरुण को प्यार की सख्त जरूरत है—चाहे कोई हो, किसी का प्यार हो।···वह मन ही मन गुनता रहा, काश, उर्मि ही उसे थोड़ा-बहुत प्यार कर पाती···लेकिन नहीं, वह ठहरी स्मार्ट लड़की ! वह प्यार की सिर्फ ऐक्टिंग कर सकती है। रूनू भी माँ की तरह सिर पर हाथ रखकर उसका बुखार नहीं देख सकती। वह तो उसे छूने से भी कतराएगी।···अच्छा, उर्मि ही सही ! वह क्या उसके माथे पर हाथ नहीं रख सकती ? वह वचन देता है कि उसकी तरफ कभी ललचायी हुई निगाहों से नहीं देखेगा। वह टिकलू नहीं है। उर्मि सिर्फ उसके माथे पर अपना हाथ भर रख दे। वह सिर्फ एक बार उसका हाथ छूना चाहता है।

धत्त, स्साला ! उसकी आँखों में आँसू आने लगे। उसका तकिया आँसुओं से भीग गया। अरुण हँस दिया। कमरे में मीलू की आवाज सुनकर, उसने जल्दी से तकिया उलट दिया।

"भाई, लेटर-बॉक्स में तेरे नाम यह खत पड़ा था।" मीलू ने दौड़ते हुए आकर खबर दी।

अरुण ने हाथ बढ़ाकर वह मोटा-सा खत ले लिया। लिफाफा खोलते ही थोड़ा-सा अबीर झरझराकर गिरा ! गुलाबी कागज में

लपेटा हुआ मुट्ठी भर सुगन्धित अबीर। अरुण उसे अपनी नाक के पास ले जाकर सूंघता रहा।

"तुझे अबीर किसने भेजा है, भाई ?" मीलू ने पूछा।

अरुण ने लिफ़ाफ़े की राइटिंग को ध्यान से देखा। लेकिन देखने की क्या सचमुच जरूरत थी ? अबीर की खुशबू ही उसे भेजनेवाली का नाम बता गयी थी। उसका सारा तन-मन जैसे माउथ-ऑर्गन की तरह बज उठा।

वह आइने के सामने आ खड़ा हुआ। उसने अबीर भरे लिफ़ाफ़े को अपने माथे पर उलट लिया। बालों में उँगलियाँ फेरकर उन्हें अन्दर तक बिखेर दिया और अबीर-रंगी हथेलियों को अपने सीने पर रख लिया।

धत्‌...कौन कहता है, प्रेम में दर्द होता है ? प्रेम तो चन्दन की तरह ठण्डक और राहत देता है।

सोना-माँ को जैसे चीखते रहने की आदत है। दिन-रात चीखती रहती है। अरुण ने काफी डाँट-डपट की, लेकिन उसकी आदत नहीं छुड़ा पाया। उसकी चीख-पुकार के मारे कान बिल्कुल सुन्न हो जाते हैं! कौन कहेगा कि यह शरीफ लोगों का घर है ?

उस दिन भी अरुण ने उसे झिड़क दिया, "इतना चीखने-चिल्लाने की क्या जरूरत है ? काम पसन्द न हो, तो छोड़कर जा सकती हो। अरे, दाना फेंको तो कौओं की कमी है ?"

बस इतनी-सी बात पर सोना-माँ दो दिनों तक गायब।

कनकलता ने अपना सारा गुस्सा अरुण पर ही उतारा, "अब जा! जाकर कोई आदमी खोजकर ला! अगर कोई नया आदमी आ भी जाए, तो सोना-माँ, उसे दूधवाले के यहाँ अकेला पाकर भड़का देगी।"

"....समझा, सुजीत ! हम सब नौकर-दाइयों के गुलाम हो गये हैं। उनसे भी कोई कड़ी बात करने का उपाय नहीं है।"

उपाय क्यों नहीं है—? नींद खुलते-न-खुलते, हाथ में बोतल लिए,

मिल्क-डिपो की तरफ भागो। बाजार जाओ। अगर केला पत्ता लाना भूल गये, तो माँ की जली-कटी सुनो, "सोना-माँ को तो तूने ही भगा दिया, अब वर्तन कौन घिसेगा ?"

चलो, ठीक है ! ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ हर तरह का सुख मिले। अरुण भी अब सोना-माँ की चीख-चिल्लाहट का अभ्यस्त हो गया है।

आज भी उसकी बड़बड़ाहट सुनाई पड़ी, "एतना सारा वर्तन ! रोज-रोज एतनी जली भई कराही ! मों भी एत-एत वाड़ी में काज कर लौं, मुला एतना निर्दयी घर नाहीं देख लौं। हमार सरीर···का सरीर नाहीं है ?"

अरुण को यह समझने में देर नहीं लगी कि असल में कोई खास वात नहीं है। खैर, वात चाहे जली हुई कड़ाही को लेकर हो, या घर पोंछने का कपड़ा या रसोई धोने के झाडू को लेकर हो—सोना-माँ निश्चित रूप से बड़बड़ाएगी। यहाँ कोई वहाना नहीं मिला, तो दूसरे घरों के खिलाफ ही धारा-प्रवाह रूप में बड़बड़ाती रहेगी।

हुँह ! जहन्नुम में जाओ ! उसका इस घर से नाता ही कितना है ? जिसकी जो मर्जी हो करे—अरुण ने एकदम से सोच डाला।

माँ बुखार और सिर-दर्द में पड़ी हैं। उन्हें किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाना वेहद जरूरी है। अरुण ने उन्हें दो-एक वार पी० जी० ले जाकर दिखाना चाहा था, लेकिन अगर बापू ही अपनी तरफ से कुछ न कहें, तो वह क्या करे ? कौन-सा डॉक्टर बड़ा और कौन-सा छोटा है, यही समझाने में कम-से-कम आधे घण्टे तक वेकार की वहस करनी होगी।

"अरुण···" अचानक प्रकाश वावू ने आवाज दी।

सोना-माँ की वकवक यथारीति जारी थी। लेकिन किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। दरअसल उसकी वकवक घर में वैक-ग्राउण्ड म्यूजिक की तरह है। मीलू भी तो अपना रेडियो तेज कर सकती है। लेकिन इस घर में अगर कोई जोर से रेडियो वजाये तो और लोग तमीज पर लेक्चर झाड़ने चले आते हैं। अरे वावा ! वेकार की चीख-

पुकार, घरेलू शब्दों के शोर को दबाने के लिए ही तो रेडियो ऑन कर दिए जाते हैं। हमारी सरकार समझती है कि लोगों में रेडियो बड़ा पॉपुलर हो रहा है।

"आपने मुझे बुलाया था ?" अरुण प्रकाश बाबू के सामने जा खड़ा हुआ।

"अपने छोटे मौसा के यहाँ गया था ? क्या कहा उन्होंने ?"

आज का समूचा दिन तो इन्हीं सब झंझट-झमेलों में बीतेगा। बातें तो इसी लम्बी-चौड़ी करते हैं, चलो, देख ही लें कि कौन-से धान में कितना चावल है।

छोटी मौसी नरिया हाट के करीब एक छोटे-से फ्लैट में रहती है। उसने अपने साथ मीनू को भी ले लिया था।

छोटी मौसी के यहाँ कैन की कुर्सी पर बैठे भारी हाफ-पैण्ट पहने, उस बूढ़े को नजर आते ही, वह हँस पड़ा। उसने कहा था—नहीं! नहीं!! यह कुछ नहीं करेगा। तुम शान से अन्दर चले आओ और उसने अपने बाघनुमा कुत्ते को आवाज दी, "जिमी!···जिमी!"

वाह ! किसी अनजान आदमी को देखकर भी अगर आपका कुत्ता कुछ न करे, तो आप उसे पाल क्यों रहे हैं ?

छोटे मौसा भी खूब हैं ! कहा, "अरे, डरना नहीं ! तुमको डरा हुआ देखकर वह काट खाएगा।"

यह भी खूब है ! यह क्या सिनेमा हॉल का पर्दा है कि स्विच दबा दिया और पर्दा हट गया ? लड़कियाँ भी प्रेम के मामले में ऐसा ही कुछ समझती होंगी। तभी तो और लोगों के साथ मजे से हँसेंगी-खेलेंगी, गप्पें मारेंगी। लेकिन किसी एक व्यक्ति के मामले में सारी हिसाब-किताब करने के बाद, एकाध दिन मुलाकात करेंगी। जब मिलेंगी तो उनकी आँखें डबडबा आएँगी, भर्राई हुई आवाज में बातें करेंगी।

अरुण चौबीसों घंटे अलग-थलग रहता है। दरअसल मनू उसे प्यार-व्यार बिल्कुल नहीं करती। उसे तो बस, यही गुमान है कि एक अच्छा-भला आदमी पूरी तरह उसकी मुट्ठी में है।

उस दिन सिनेमा जाते हुए अरुण ने सोचा था, स्विच के बाद का—

लोग थोड़ी देर के लिए कहीं एकान्त में जाकर बैठेंगे। उसके पटना जाने को लेकर, कहीं कोई गलतफहमी रह गयी हो, तो वह प्रमाण देकर बात साफ कर लेगा। कहाँ तो वह यह सब सोच रहा था, और कहाँ उसने देखा कि फिल्म खत्म होने के पहले से ही रूनू उस अँधेरे में ही बार-बार घड़ी देख रही है। शर्बत के गिलास में से दो-एक सिप लेने के बाद, बच्चों को जैसे मना कर दिया जाता है, 'बस अब और मत पीना' वैसे ही रूनू भी उसे हर बार प्यासा छोड़ देती है। वह आकर पहुँचती ही है कि जाने का शोर मचाने लगती है। फिर भी उसे थोड़ी-बहुत उम्मीद थी। उसने सोचा शायद फिल्म खत्म होने से पहले, रूनू अंधेरे में ही बाहर निकल जाना चाहती हो, ताकि रोशनी में उसे कोई पहचान न ले। इसीलिए शायद वह बार-बार घड़ी देख रही है।

अचानक रूनू ने कहा, 'एइ, तुम फिल्म देखो! मैं चली। मुझे देर हो जाएगी।"

अरुण को बहुत बुरा लगा—तुम देखो! हुँह! वह जैसे फिल्म देखने ही तो आया है और टिकट का पैसा वसूल होने से पहले, वह नहीं उठेगा।

समूचा दिन ही बरबाद हो गया। उस दिन उसने फैसला कर लिया, अब वह रूनू से मिलने की बात सोचेगा भी नहीं। उसे याद भी नहीं करेगा। हालांकि, पुरानी बातें बार-बार उसकी आँखों के आगे तैरती रहीं। होली वाले दिन जब उसने अबीर भेजा था, तब शायद सच ही प्यार करती थी। अब? अब शायद अयन उसे फिर अच्छा लगने लगा है, हुँह, क्या अजीब नाम है, बाबा—अ···यन।

खैर, उसने मौका पाकर टिकलू के प्रेस का फोन नम्बर बता दिया था। उससे लिख लेने को भी कहा था।

"याद रहेगा बाबा, मुझे याद रहेगा।" रूनू ने इस लहजे में कहा कि जोर देने की हिम्मत ही नहीं हुई। उसने उसे यह भी बता दिया था कि दोपहर को टिकलू के बापू जब खाना खाने जाते हैं, तब वह फोन कर ले। जाने वह फोन करेगी या नहीं।

छोटी मौसी के यहाँ फोन पर नजर पड़ते ही अरुण को लोभ हो

आया था। इत्त ! काश, उसके यहाँ भी फोन होता तो कितना मज़ा आता। वैसे अपने घर में बात करना मुश्किल था, माँ सवाल करती, "कौन था रे, फोन पर ?" खैर, बातें चाहे न भी होतीं, वह दोनों भी उसी तरह इशारे-इशारे से बात करते, जैसा विराम और उसकी भूतपूर्व प्रेमिका किया करते थे। टिंग-टिंग दो बार घंटी बजती और कोई फोन उठाता, तो वह फौरन लाइन काट देते यानी निश्चित जगह पर जा रहा हूँ, तुम भी आ जाओ।

प्रकाश बाबू की आवाज सुनाई दी, "तो फिर वहाँ एप्लाई क्यों नहीं कर देता ? देर क्यों कर रहा है ? उन्होंने जब कहा है तो···।"

अरुण ने बीच में ही कहा, "हाँ आज ही कर दूँगा।"

दरअसल, उसके मन में भी कोई बात चुभ गयी है, यह बात उसने कभी व्यक्त नहीं होने दी।

बापू तो लकीर के फकीर हैं, कहेंगे, "नहीं, नहीं, जहाँ इस कदर चोरी-जुआचोरी हो वहाँ नौकरी करने की जरूरत नहीं है।"

ऐसी नौकरी अरुण को भी अच्छी नहीं लगती है, लेकिन जब मिल रही है तो स्वीकार कर लेने के अलावा और कोई उपाय भी तो नहीं है। छोटे मौसा भी तो सरकारी अफसर हैं। गजेटेड अफसर की तरह सर्टिफिकेट भी दे सकते हैं, उन्होंने जब कहा है तो···

मौसा लोगों ने इन्हीं दिनों नया फ्रिज खरीदा है।

छोटी मौसी ने अपने नौकर गोपाल को आवाज देकर कहा, "फ्रिज से जरा पानी तो निकाल ला, गोपाल।"

मोलू फ्रिज देखते ही खुशी से चहक उठी, "अम्मी ! कितना खूबसूरत है न, भाई ?"

अरुण ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ—कितने में खरीदा, छोटी मौसी ?"

छोटी मौसी ने बात बदलते हुए कहा, "जाने कितने का है ! ऐसा है, कि हमने इसे इन्स्टालमेन्ट में खरीदा है—अतः कीमत कुछ अधिक ही देनी पड़ी है।"

···अपने यहाँ टूटा हुआ टेबल-फैन है, जो हर वक्त घर्र-घर्र किया

अभी हो·

करता है। मीलू के कमरे का पंखा भी अक्सर खराब ही रहता है। लेकिन यह बात वह किसी भी तरह नहीं समझा पाया कि एक साथ जब इतने सारे रुपए नहीं चुकाए जा सकते तो इन्सटालमेन्ट में पंखा खरीदने में क्या हर्ज है।

"तू पागल तो नहीं हो गया ? अरे, वहां जितना ब्याज लगेगा, उसके मुकाबले में साधारण सूदखोर काबुली वाले भी हार मान जाएँ। इन्सटालमेन्ट में चीजें खरीदना फितूरी लोगों का काम है। मेरे जीते-जी कर्ज लेकर चीजें नहीं खरीदी जाएँगी।" बापू ने एक दिन अपना फैसला सुनाते हुए कहा था।

हुंह ! उनके ख्याल में इन्सटालमेन्ट मानो कर्ज होता है। सच, बापू वही पुरानी लकीर के फकीर ही रह गये। उन्हें यह बात किसी तरह भी नहीं समझायी जा सकी कि भविष्य की चिन्ता में सिर्फ बुढ़ाते रहने से कोई फायदा नहीं होगा।

एक दिन सुजीत ने भी कहा, "हमें जो मिलना है, वह अभी ही न मिलकर बुढ़ापे में मिला, तो उससे हमें क्या फायदा होगा ?"

टिकलू ने भी सहमति जतायी, "क्या डायलॉग मारा है, सुजीत ! अरे भाई, अपनी लाइफ को ही हायर परचेज मान ले न ! अभी मजे ले, कीमत बाद में चुका देना। सो तो होता नहीं। सो नकली दाँत लगाकर गोश्त खाने की उम्मीद में अभी चिनिया-बदाम खाकर पेट भरो।"

अरुण को भी यही लगता है। कभी-कभी छोटे मौसा को देखकर लगता है, वही एकमात्र योग्य व्यक्ति हैं। आज के जमाने के सफल इन्सान ! वह बापू की तरह पाप-पुण्य, पत्रा-पूजा या हृषिकेश बाबू को लेकर नहीं बैठे रहते।

छोटे मौसा ने अरुण से बिल्कुल साफ-साफ ही कहा, "देखो बेटा, तेल तो सभी लगाते हैं। लेकिन फिर भी काम क्यों नहीं बनता, जानते हो ? तेल लगाने का तरीका भी जानना जरूरी है। पेट्रोल की जगह पेट्रोल और मोबिल की जगह मोबिल डालना पड़ता है। कहीं उल्टा-पुल्टा हो गया, तो समझ सकते हो, क्या हाल होगा।" फिर थोड़ा

ठहरकर कहा, "तुम्हारे बाबू तो नौकरी-नौकरी करके मेरी जान खा गये…।"

उस वक्त अरुण को उनकी बातें बुरी लगी थीं। क्या रोब है ? उसने सोचा, वह डाँट दे—"अरे, तुम्हारे बाबू-बाबू क्यों कह रहे हो, तुम्हारा बड़ा साढ़ू है, भाई साहब नहीं कह सकते ?" फिर भी अरुण ने गोविन्द की जगह गोविन्द ही उड़ेला। उसने हँसकर कहा, "बाबू आपके अलावा और किस से कहने जाएँ ? आपके अलावा उनका है ही कौन ?"

छोटी मौसी उसकी बात सुनकर खुश हो गयीं। खुशामद चीज ही ऐसी है बेटा, सुनते ही जी खुश हो जाता है।

छोटे मौसा ने उसे दरख्वास्त लिखने का तरीका समझाते हुए कहा, "अपने नाम के आगे बी० ए० ही लिखना। एम० ए० की परीक्षा दी है यह मत लिखना और अनुभव भी है, इसका जिक्र करते हुए नौकरी का एक सर्टिफिकेट भी जोड़ देना।"

अरुण ने विस्मित होकर छोटे मौसा की तरफ देखा, "लेकिन मैंने तो आज तक कहीं नौकरी नहीं की। अगर कहीं नौकरी मिल गयी होती तो दूसरी जगह नौकरी क्यों खोजता ?"

छोटे मौसा ने एक जोर का ठहाका लगाया, फिर एक व्यक्ति का नाम-पता लिखकर उसे थमाते हुए कहा, "अविनाश बाबू से मिल लेना। बाकी बातें मैं फोन पर कर लूँगा। उनकी एक फैक्टरी है।"

यानी जाली सर्टिफिकेट पेश करके नौकरी हथियानी होगी। खैर, नौकरी का सवाल है। अरुण ने सिर हिलाकर बताया कि वह उनसे मिलकर सर्टिफिकेट ले आएगा।

वहाँ से लौटते हुए सारी बातें सोच-सोचकर वह परेशान हो उठा। यह तो टिंकू की तरह इम्तहान में नकल टीपकर पास होना है। उसे किसी योग्यता की वजह से नौकरी मिली है, यह बात वह सोच भी नहीं सकेगा। हुँह, सब जाएँ जहन्नुम में। योग्यता के बल पर नौकरी मिलने से रही।

अरुण बाबू के सामने सारा मामला खुल गया।

अभी हो… ::

दोपहर को वह अविनाश वाबू से मिला। उन्होंने छोटे मौसा का नाम सुनते ही कहा, "हाँ, हाँ—मेरे पास उनका फोन भी आया था। लेकिन यह कैसे सम्भव है ?"

"फिर ?" अरुण बड़ी उम्मीद लेकर आया था। उनकी बातें सुनकर उसका दिल ही बैठ गया। वह हताश-सा उठ खड़ा हुआ। ऑफिस-टाइम की धक्का-मुक्की में वह किसी तरह बस में चढ़ा भी तो बीच में ही बस फेल हो गयी—अब आगे नहीं जाएगी। सब लोग उतर जाइए···।

अविनाश वाबू ने कुछ सोचते हुए कहा, "···लेकिन कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा। यानी यह अविनाश वाबू भी किसी जालसाज फैक्टरी के मालिक हैं। यह आदमी छोटे मौसा से किस बात में कम है ? हालाँकि उसके प्रति उपेक्षा दिखाते हुए हिचकिचाहट व्यक्त करके वह मानो अपने व्यक्तित्व का प्रमाण दे रहे थे।

अविनाश वाबू ने कहा, "अरे भई, ऑडिट का प्रश्न है न ! इन्कम-टैक्स और तनख्वाह की रसीद का भी झमेला है ! अटेण्डेन्स रजिस्टर है ! यह सब क्या सिर्फ चिट्ठी देने भर से हल हो जाएगा ?"

अरुण अब सचमुच ही उठ खड़ा हुआ। "देखिए, उन्होंने यहाँ आने को कहा था, इसलिए मैं आया था···वरना···।"

"ठहरो, ठहरो !" अविनाश वाबू ने हँसते हुए कहा, "देखता हूँ, आजकल के लड़कों का दिमाग हर वक्त गरम रहता है। सुनो, ऐसा करो···!"

उन्होंने कम्पनी के लेटर-हेड का एक पन्ना फाड़कर उसकी तरफ बढ़ा दिया, "यह लो, जो मन में आए लिख लेना और मेरी तरफ से दस्तखत कर देना। इन सब मामलों में कहीं कोई पूछताछ नहीं होती। और फिर यह कोई सरकारी नौकरी तो है नहीं।"

—अरे वाह ! सारा मामला ही सुलझ गया। "ठीक ही तो है, अविनाश वाबू का दस्तखत वहाँ कोई नहीं पहचानता है। बस, एक सर्टिफिकेट देने का ही तो सवाल है।"

छोटे मौसा की सलाह के अनुसार, दरखास्त और सर्टिफिकेट

भेजकर, उसे जाने क्यों बहुत बुरा लगा। वह अन्दर ही अन्दर, परेशान हो उठा। अगर यह नौकरी मिल भी गयी तो उसे चैन या शान्ति नहीं मिलेगी, "कोई पूछताछ करने नहीं आएगा।"—तो तुमने खुद ही एक सनद लिखकर दस्तखत क्यों नहीं कर दिया? यानी अगर कोई मेरे पीछे पड़ जाए और मुझे पकड़वा दे, तो तुम अपने को बचाते हुए कह सको, "अरे, गजब है! यह तो मेरा साइन नहीं है। जरूर किसी ने मेरे दफ्तर का लेटर-हेड वाला पैड चुराकर···।"

दरख्वास्त भेजने के पहले तक अरुण खुशी से उमड़ा पड़ रहा था। उसने तो सोचा था वह सुजीत और टिकलू को सारा किस्सा सुनाकर उन्हें आड़े हाथों लेगा। अच्छी-खासी नौकरी है। आखिर वह क्यों न खुश हो।

कौन जाने छोटे मौसा के सजे-सजाए फ्लैट, फ्रिज, आत्म-प्रशंसा के पीछे भी ऐसा ही कोई गोलमाल हो। यह सारी बातें उसे काँटे की तरह चुभती रहीं।

उस दिन छोटे मौसा के यहाँ से लौटते हुए मीलू ने कहा था, "यह लोग काफी ऐशो-आराम से रहते हैं न भाई?"

अरुण ने तल्ख आवाज में जवाब दिया, "हुँह: सिर्फ पोल है! पोल!" लेकिन वह खुद भी महसूस कर रहा था—शायद हम सभी छोटे मौसा जैसा ही होना चाहते हैं। चूंकि वैसा बन नहीं पाते, अतः झुंझलाहट में उन्हें खींचकर एक लात जमाने की तबीयत होती है।

जरूर, यही बात सच है। अगर ऐसा न होता तो उस दिन बच्चे को देखकर कार के ड्राइवर के ब्रेक लगाने के बावजूद टिकलू ने क्रोध से ड्राइवर के माथे पर एक रद्दा जमा दिया। क्यों? उसे मारने-पीटने के बाद टिकलू ने खुद ही स्वीकार किया था कि "उस बिचारे का कोई कसूर नहीं था···माँ कसम!"

···अहा! जैसे उसका मन नहीं होता न! रूनू को अरुण की बातों पर कभी-कभी बहुत हँसी आती है। उससे मिलने का, देर-देर तक

पास रहने का, ढेर-ढेर बातें करने का मानो अरुण का ही मन करता है, और रूनू का शायद बिल्कुल ही नहीं करता ?

उस दिन अंत तक वह फिल्म देखने का मौका कहाँ था ? अरुण ने शायद यह सोचा था कि फिल्म देखकर वह लोग कहीं जाकर बैठेंगे, थोड़ी देर बातें करेंगे। उसे इतनी जल्दी हॉल से निकलते देख कर अरुण···रूनू मन ही मन हँस दी। ···नन्दिनी होती तो गाल फुलाकर उसकी नकल उतारते हुए बताती कि अरुण कैसे नाराज हो गया था। फिर दोनों मिलकर जोर-जोर से ठहाके लगातीं। वैसे हँसते-हँसते रूनू को भी थोड़ी-सी कसक होती है। अभी भी उसकी बात सोच-सोचकर उसे तकलीफ हो रही है। उस बेचारे ने थोड़ा-सा वक्त ही तो माँगा था।

नन्दिनी के लिए भी थोड़ी-सी तकलीफ होती है। वह कैसी बुद्धू लड़की है ! यहाँ से निकलकर वह, सीधे विराम से मिली होगी। लेकिन उसके बाद ? इन लड़कों का कोई भरोसा है ? हर कोई उसके अरुण की तरह शरीफ नहीं। नन्दिनी की कमी उसे अखरने लगी है। नन्दिनी का अभाव ! दोनों सहेलियाँ एक-दूसरे से अपने मन की सारी बातें, अपना सुख-दुःख, मान-अमपान, खुशी-गमी, एक-दूसरे से कह-सुन लेती थीं। उसके अपने घर की स्थिति भी तो काफी शोचनीय है। हो सकता है, पढ़-लिखकर उसे नौकरी करनी पड़े। अभी तो चूँकि वह मामा के पास है, इसी से चैन से है। बीच-बीच में बापू बहरामपुर से आकर उससे मुलाकात कर जाते हैं। एक दिन तो अचानक ही आ पहुँचे। उसी दिन अरुण से बस-स्टॉप पर मिलने की बात थी। उस दिन वह निकल ही नहीं पायी। अरुण उसका इन्तजार करके लौट गया होगा।

अगली बार जब वह अरुण से मिली तो उससे पूछा, "उस दिन आप बहुत नाराज हुए होंगे ?"

अरुण ने हँसकर कहा, "नहीं, नहीं ! उस दिन मैं कॉफी-हाउस चला गया और वहाँ उर्मि के साथ बातों का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह काफी देर तक चला।" यानी उसने यह बताना चाहा कि और

कोई न सही उर्मि तो थी ही। अरुण की और तमाम बातें अच्छी हैं, लेकिन जब वह नाराज होता है, तो यूँ हर्ट करता है। वह रुनू से इसलिए नाराज है कि वह उसे प्यार नहीं करती। एकाध दफा रुनू को भी हल्का-सा शक भर हुआ था कि उसकी पटना जाने वाली बात बिल्कुल बनावटी थी। दरअसल वह उससे बदला लेने के ख्याल से नहीं आया।

वैसे यह बात भी सच हो सकती है कि उर्मि के साथ अड्डा देते हुए, वह उसके पास आने की बात बिल्कुल भूल ही गया हो। अपनी ये सब बातें या आज सिनेमा-हॉल से उठकर चले आने वाली बात, वह सिर्फ नन्दिनी को ही बताकर हल्की हो सकती थी। नन्दिनी के चले जाने के बाद, वह सब-कुछ मन में ही दबाए रखती है। अरे, धत्त्! अगर नन्दिनी होती तो, वह क्या सचमुच उसे अपने दु:ख-दर्द की बात बताने जाती? या सिर्फ यही बताकर खुश हो जाती कि अरुण उसे इस बुरी कदर प्यार करता है? उससे दिव्य की या अयन की बात भी उसने कितनी बतायी थी?

रुनू की आँखों के आगे अचानक दिव्य की तस्वीर उभर आयी। कैसा उजला-गोरा चेहरा था दिव्य का? शुरू-शुरू में वह बेहद अच्छा लगा था। उसके प्रति थोड़ा-बहुत आदर-भाव भी था। लेकिन अब कुछ भी याद नहीं है। हाँ, उसकी जिन्दगी में पहले दिव्य आया था। फिर अयन! अयन को वह सचमुच प्यार कर बैठी थी। अब भी जब उसका ख्याल आता है तो मारे गुस्से के उसकी नसें तड़कने लगती हैं। अरुण के सामने अयन के बारे में एकाध वाक्य कहकर उसने मुस्कराते हुए उसके चेहरे की तरफ देखा था। उसकी शक्ल देखकर और भी हँसी आने लगी।

इन दिनों रुनू मन-ही-मन अपने को आजमाने में लगी थी—अच्छा, क्या सचमुच वह बहुत बुरी है? शायद बाकी लोग उसके बारे में यही सोचते होंगे। लेकिन अरे, वाह! वह क्यों बुरी होने लगी? सिर्फ प्यार के मामले में ही उससे बार-बार गलती हो गयी। हाँ, यह बात वह कभी नहीं समझ पायी कि अपनी गलती [illegible] होने के

बावजूद अगर उसे ही प्यार किए जाओ, उसीसे व्याह करो, तो सब शरीफ कहेंगे। अगर कहीं भूल सुधारने की कोशिश करो, तो हर कोई बुरी कहेगा। खैर···ये सब बातें तो नन्दिनी भी नहीं समझती थी।

डॉक्टर रुद्र वाली बात भी वह किसी को नहीं बता सकती। वह आदमी मामा के पास अक्सर आता-जाता है, खूब गप्पें लगाता है। उसकी उम्र भी कोई सैंतीस-अड़तीस साल के करीब होगी। देखने में भी खासा स्मार्ट लगता है। लेकिन वह आदमी उसे जरा भी पसन्द नहीं है। विराम भी उसे पसन्द नहीं करता था।

डॉ० रुद्र की आँखें हर वक्त चमकती रहती हैं। स्वभाव से अतिशय चंचल। इत्ती छोटी-सी उम्र में ही खासा कमाने भी लगा है—गायनाकॉलोजिस्ट जो है! आजकल इस लाइन के डॉक्टरों की काफी धूम है।

एक दिन मामा को ही मामी से कहते सुना था, "वह सिर्फ रुपया ही कमाता है। कैसे कमा रहा है, मुझे पता है।"

मामा ने ठीक ही कहा था। रून्नू को उस आदमी की नजर भली नहीं लगती। वैसे शक्ल-सूरत से निहायत सरल और निरीह लगता है। जब मिलता है, काफी जोशो-खरोश से बातें करता है, लेकिन उस दिन सीढ़ी पर अचानक सामना हो गया, तो कित्ता डर लगा था।

रून्नू ने मकान के अन्दर आने के पहले दरवाजे के आसपास निगाह घुमाकर देख लिया। डॉ० रुद्र की गाड़ी नहीं दिखी, तो वह निश्चिन्त हो गयी। धम्-धम् करती हुई, वह सर्राटे से ऊपर चली आयी। फोन की घंटी सुनकर उसका जी धक् से रह गया। सुबह जब से अरुण ने फोन किया था, उसी समय से उसे फोन से डर लगने लगा। इस वक्त कहीं अरुण का ही फोन तो नहीं है?

रून्नू के सामने ही मामी ने फोन उठा लिया। फिर उसकी तरफ मुड़कर कहा, "रून्नू देख तो, कोई तुझे पूछ रहा है।"

"अरे! नन्दिनी तू···?"

मामी वापस जा रही थीं, नन्दिनी का नाम सुनकर और रून्नू की आँखों में हैरानी देखकर वह ठिठक गयीं।

अरुण ने अवाक् होकर उससे पूछा था, "क्यों, इन टिकटों का क्या करोगी ?"

रूनू ने हँसकर जवाब दिया, "जानते हैं मेरे पास एक दराज है, उसमें मैं अपनी सारी चीजें सहेजकर रखती हूँ। कभी-कभी उस दराज को खोलकर उसे देखना इतना अच्छा लगता है···"

अरुण भी हँस दिया, "जानती हो, मेरे दिल में भी एक दराज है। मैं भी वहाँ अपना सब कुछ जमा रखता हूँ—सब-कुछ।"

हाँ, हर किसी के पास अपना-अपना निजी दराज होता है··· सब के पास। वहाँ टुकड़ों-टुकड़ों में सहेजी हुई खुशियाँ जमा होती रहती हैं।

एक बार नन्दिनी से उसका भयंकर झगड़ा हो गया था। झगड़ा तो खैर, अक्सर होता था, लेकिन फिर सुलह भी हो जाती थी। उस दफा नन्दिनी ने उसे एक लम्बा-सा खत लिखा था। वह उसे कितना प्यार करती है, यह बात लिखकर बतायी थी। इतने दिनों बाद रूनू ने वह खत निकालकर दुबारा पढ़ा।

नन्दिनी के प्रति उसका सारा गुस्सा पानी हो गया। उसे लगा नन्दिनी से बढ़कर उसका कोई अपना नहीं है।

शुरू-शुरू में रूनू प्यार-मोहब्बत के बारे में कुछ भी नहीं जानती थी। हाँ, अब महसूस करने लगी है कि शायद इसी को प्यार कहते हैं। प्रेम ! इसके पहले की दोनों घटनाएँ तो मामूली-सी थीं। अतिशय साधारण ! उसने नन्दिनी को भी वह कहानी सुनायी थी। उस समय वह अरुण को जानती भी नहीं थी। आज भी जब-तब उसे पुरानी कहानियों की यादें कैडबरी चॉकलेट की तरह मीठी लगती हैं। अनुराधा के भइया के उस खत की याद आती है, तुम जैसी खूबसूरत, मैंने कहीं नहीं देखी, तो उसे बुरी तरह हँसी आने लगती है।

"अयन नाम तो बढ़िया है।" अरुण ने कहा था।

रूनू मन ही मन अपने को बेहद अपराधी महसूस कर रही थी। अतः एक दिन उसने इशारे-इशारे में अरुण को अयन के बारे में सब-कुछ बता दिया। वैसे उसके बारे में बताते हुए उसने यह बात दुबारा

महसूस की कि अयन उसके लिए महज एक नाम भर रह गया है। एक मिटा हुआ नाम।

"जानती हो, उस दिन मुझे क्या लगा था?" कई दिनों बाद अरुण ने हँसते हुए कहा था, "मुझे लगा था तुमने अयन की चर्चा इसीलिए छेड़ी है, ताकि तुम बता सको कि आप दरअसल बिल्कुल गलत राह पर चल पड़े हैं, मोशाय! बराए मेहरबानी अब और आगे न बढ़ें।"

अजीब बात है! रूनू तो कहाँ यह चाहती है कि वह अरुण की बिल्कुल अपनी हो जाए, और वह…

"जानती हो, मैं अगर एक काम भूल जाऊँ, तो रात-भर मुझे नींद नहीं आती।"

उसने हँसकर पूछा, "कौन-सा काम? नील-डाउन होकर, घुटने टेककर भगवान जी के आगे प्रार्थना करना?"

"हाँ। प्रार्थना ही!"

वह मुस्कुरा दी, "हर रोज सोने से पहले मैं तकिए पर उंगलियों से तुम्हारा नाम लिखती हूँ। तुम्हारा नाम लिखे बिना सोने को मन ही नहीं करता।" वह फिर हँस पड़ी, "मुझे नींद ही नहीं आती—"

अचानक रूनू को ही याद आया, बहुत दिनों से अरुण का नाम उसने अपने तकिए पर नहीं लिखा। उसने मन ही मन सोच लिया—आज वह जरूर, जरूर अपने तकिए पर, अरुण का नाम लिखेगी, और उस पर सिर रखकर सपनों में खो जाएगी।

…ऐसे में कभी-कभी अरुण को बिल्कुल करीब से छूने का बेहद मन करता है। यह अरुण पागल है न। वरना कोई इतनी दिवानगी से प्यार करता है! … पिछले दिनों की बातें याद करके, उसे हँसी आने लगी। कभी-कभी उसकी भी तबीयत होती है कि वह उसे छू-छूकर देखे! शुरू-शुरू में तो प्रायः हर रोज ही छू लेने को मन ललकता था।

"अरे, वाह! उस दिन अगर मैं अपना हाथ हटा न लेती तो तुम मुझे बेहद गिरी हुई कमजोर लड़की समझ लेते। वैसे उस दिन तो मेरा भी मन हो रहा था कि तुम्हारे हाथों पर अपना हाथ रख दूँ।"

"सच?" अरुण उसकी बातें सुनकर खुश हो गया।

अरुण ने अवाक् होकर उससे पूछा था, "क्यों, इन टिकटों का क्या करोगी ?"

रूनू ने हँसकर जवाब दिया, "जानते हैं मेरे पास एक दराज है, उसमें मैं अपनी सारी चीजें सहेजकर रखती हूँ। कभी-कभी उस दराज को खोलकर उसे देखना इतना अच्छा लगता है···"

अरुण भी हँस दिया, "जानती हो, मेरे दिल में भी एक दराज है। मैं भी वहाँ अपना सब कुछ जमा रखता हूँ—सब-कुछ।"

हाँ, हर किसी के पास अपना-अपना निजी दराज होता है··· सब्व के पास। वहाँ टुकड़ों-टुकड़ों में सहेजी हुई खुशियाँ जमा होती रहती हैं।

एक बार नन्दिनी से उसका भयंकर झगड़ा हो गया था। झगड़ा तो खैर, अक्सर होता था, लेकिन फिर सुलह भी हो जाती थी। उस दफा नन्दिनी ने उसे एक लम्बा-सा खत लिखा था। वह उसे कितना प्यार करती है, यह बात लिखकर बतायी थी। इतने दिनों बाद रूनू ने वह खत निकालकर दुबारा पढ़ा।

नन्दिनी के प्रति उसका सारा गुस्सा पानी हो गया। उसे लगा नन्दिनी से बढ़कर उसका कोई अपना नहीं है।

शुरू-शुरू में रूनू प्यार-मोहब्बत के बारे में कुछ भी नहीं जानती थी। हाँ, अब महसूस करने लगी है कि शायद इसी को प्यार कहते हैं। प्रेम ! इसके पहले की दोनों घटनाएँ तो मामूली-सी थीं। अतिशय साधारण ! उसने नन्दिनी को भी वह कहानी सुनायी थी। उस समय वह अरुण को जानती भी नहीं थी। आज भी जब-तब उसे पुरानी कहानियों की यादें कैडबरी चॉकलेट की तरह मीठी लगती हैं। अनुराधा के भइया के उस खत की याद आती है, तुम जैसी खूबसूरत, मैंने कहीं नहीं देखी, तो उसे बुरी तरह हँसी आने लगती है।

"अयन नाम तो बढ़िया है।" अरुण ने कहा था।

रूनू मन ही मन अपने को बेहद अपराधी महसूस कर रही थी। अतः एक दिन उसने इशारे-इशारे में अरुण को अयन के बारे में सब-कुछ बता दिया। वैसे उसके बारे में बताते हुए उसने यह बात दुबारा

महसूस की कि अयन उसके लिए महज एक नाम भर रह गया है। एक मिटा हुआ नाम।

"जानती हो, उस दिन मुझे क्या लगा था?" कई दिनों बाद अरुण ने हँसते हुए कहा था, "मुझे लगा था तुमने अयन की चर्चा इसीलिए छेड़ी है, ताकि मुझे बता सको कि आप दरअसल बिल्कुल गलत राह पर चल पड़े हैं, मोशाय! करिए मेहरबानी अब और आगे न बढ़ें।"

अजीब बात है! अनु तो कहीं यह चाहती है कि वह अरुण की बिल्कुल अपनी हो जाए, और वह…

"जानती हो, मैं अगर एक काम भूल जाऊँ, तो रात-भर मुझे नींद नहीं आती।"

उसने हँसकर पूछा, "कौन-सा काम? नील-डाउन होकर, घुटने टेककर भगवान जी के आगे प्रार्थना करना?"

"हाँ। प्रार्थना ही!"

वह मुस्कुरा दी, "हर रोज सोने से पहले मैं तकिए पर उँगलियों से तुम्हारा नाम लिखती हूँ। तुम्हारा नाम लिखे बिना सोने को मन ही नहीं करता।" वह फिर हँस पड़ी, "मुझे नींद ही नहीं आती—"

अचानक अनु को ही याद आया, बहुत दिनों से अरुण का नाम उसने अपने तकिए पर नहीं लिखा। उसने मन ही मन सोच लिया—आज वह जरूर, जरूर अपने तकिए पर, अरुण का नाम लिखेगी, और उस पर सिर रखकर सपनों में खो जाएगी।

…ऐसे में कभी-कभी अरुण को बिल्कुल करीब से छूने का बेहद मन करता है। यह अरुण पागल है न। वरना कोई इतनी दिवानगी से प्यार करता है! … पिछले दिनों की बातें याद करके, उसे हँसी आने लगी। कभी-कभी उसकी भी तबीयत होती है कि वह उसे छू-छूकर देखे! शुरू-शुरू में तो प्रायः हर रोज ही छू लेने को मन मचलता था।

"अरे, वाह! उस दिन अगर मैं अपना हाथ हटा न लेती तो तुम मुझे बेहद गिरी हुई कमजोर लड़की समझ लेते। वैसे उस दिन तो मेरा भी मन हो रहा था कि तुम्हारे हाथों पर अपना हाथ रख दूँ।"

"सच?" अरुण उसकी बातें सुनकर खुश हो गया।

उसके खुश-खुश चेहरे की ओर देखते हुए रूनू ने वरज दिया, "अच्छा, बहुत हुआ ! अब गुमान से नाक फुलाने की जरूरत नहीं है।"

अरुण हँस पड़ा, "तुम सच कहती हो—तुम मेरी गुमान ही हो। लेकिन उस दिन मुझे बहुत बुरा लगा था जिस दिन विराम ने बताया कि उसे हरारत है और तुम झट से उसके माथे पर हाथ रखकर बुखार देखने लगी थीं। और उस दिन मैंने जरा-सा हाथ छू लिया तो···"

रूनू सोचती रही—अच्छा, अरुण जो कहता है कि वह उससे एक दिन नहीं मिल पाता, तो उसके दिल में जाने क्या-क्या होने लगता है, दर्द ! तकलीफ ! जलन ! वह क्या सच कहता है या सिर्फ उसे खुश करने को कहता है ? अहा रे ! उसकी तो हर बात अरुण को अच्छी लगती है। वह बेहद सुन्दर है, उसकी आवाज भी बेहद मीठी है, उस की बातों में जादू है, और भी जाने क्या-क्या। उफ ! वह बातें तो ऐसी लच्छेदार करता है कि···

"अच्छा—चलो मान लिया। जो सुन्दर है, उसे सुन्दर तो खैर कहना ही होगा, लेकिन किसकी तरह ?" रूनू ने उसे छेड़ते हुए पूछा।

'संगमरमर की तरह।"

रूनू ने सुख से आँखें मूंद ली। फिर हँसकर कहा, "जानते हो, इसे क्या कहते हैं ? बुतपरस्ती।"

अरुण को पहचानना सचमुच बहुत मुश्किल है। अलग-अलग वक्त पर बिल्कुल अलग-अलग रूप ! कभी किन्हीं ख्यालों में डूबा हुआ, अचानक उदास हो जाएगा, कभी लम्बी उसांसे भरते हुए एक बारगी तटस्थ दिखाई देगा। उसके दिल में जरूर कहीं कोई गहरा दुःख है।

एक दिन अरुण ने अचानक ही कहा, "वैसे तो बहुत-सी लड़कियाँ हैं जो तुमसे कहीं अधिक खूबसूरत हैं, लेकिन तुम खूबसूरत होकर भी उनसे अलग हो।"

उन दिनों रूनू उसके काफी करीब आ चुकी थी। कहा, "जानते हो इसे क्या कहते हैं ? स्तुति।"

अरुण ने हँसकर अपनी तरफ से एक शब्द जोड़ दिया था, "स्तुति या प्रस्तुति ?"

उसमें यही तो एक ऐब है। कभी-कभी अनजाने में ही कोई ऐसी गहरी बात कह जाता है कि लगता है वह किसी और ही मिट्टी का बना हुआ है। और लड़कों से बिल्कुल अलग! वही कभी इतना अलमस्त और शरारती नजर आता है कि लगता है वह उसके साथ महज खिल-वाड़ कर रहा है।

…लेकिन उस दिन जब रन्नू ने उसके किसी मजाक को, निहायत हँसी में उड़ा देने की कोशिश की तो उसका चेहरा तमतमा उठा। उसने शिथिल आवाज में कहा, "देखो, हँसी-हँसी में कही गई बातें, दरअसल इतनी हल्की नहीं होतीं कि उनको हँसकर उड़ा दिया जाए। जानती हो, कभी-कभी हम अपना बड़ा-से-बड़ा दुःख भी यूँ ही हँसी-हँसी में कह जाते हैं।"

कभी-कभी रन्नू का मन होता है कि वह अरुण से एक खत लिखने को कहे। सच ही जब वह सामने रहती है, वह अपने मन की सारी बात नहीं कह पाता है। इन दिनों अरुण कुछ दिनों के लिए बाहर चला जाए, तो बहुत मजा आए। तब वह कॉलेज से लौटकर, हर रोज अपना लेटर-बॉक्स देखा करेगी। कुछ दिनों तक उसके लेटर-बॉक्स में कोई खत नहीं आएगा। वह सोचेगी, अरुण उसे भूल गया। कुछ दिनों बाद अचानक एक बड़ा-सा लिफाफा मिलेगा। अरुण को ऊदिया रंग बहुत पसन्द है। एक दिन रन्नू जब उससे मिलने आयी थी, तो उसने ऊदिया रंग की साड़ी पहनी थी…

"ना बाबा, ना! तुम्हारा खत मैं क्यों खोलने लगी? कॉलेज में पढ़ती हो, जाने किसकी चिट्ठी है।" मामी ने इसे अरुण का लिफाफा पकड़ाते हुए मजाक किया था।

खत तो सीधी सधी लकीर की तरह बिल्कुल सरल और सहज होते हैं। अरुण का खत भी सीधा-सादा सा होगा, तब उसने मामी से कहा, "अरे, तो क्या हुआ? आपने पत्र खोल क्यों नहीं लिया?"

मामी ने जवाब दिया, "लेकिन, मैं इसको खोलती जरूर नहीं हूँ। लेकिन, तुम्हारे बापू कहीं, किसी बात के लिए हम लोगों को दोष न दें…इसलिए…"

रुनू जब माँ-बापू और अपने नन्हे भाई-बहनों की बातें सोचती है तो उसकी सारी विचारधारा ही उलट-पलट जाती है। उसके बापू का उस पर पक्का भरोसा है कि वह कोई गलत काम नहीं कर सकती। उनकी कोई आज्ञा नहीं टाल सकती···। हाँ, पढ़-लिखकर वह नौकरी करेगी और घरवालों के सारे दुःख-अभाव मिटा देगी।

लेकिन···उसका नौकरी करने को रत्तीभर भी जी नहीं चाहता। बापू जब कभी उसके ब्याह की कोशिश करते हैं या एक दफा जब कुछ लोग आकर उसे पसन्द कर गये थे, तो उसे बहुत अच्छा लगा था। उस दिन उसने नन्दिनी से भी ढेर-ढेर बातें की थीं। लेकिन ना! अपने ब्याह के लिए बापू को तकलीफ देने की जरूरत नहीं है। वह खुद ही किसी को पसन्द करके ब्याह कर लेगी। शायद अरुण से ही ब्याह कर ले या फिर···। कौन जाने? खैर, उसे अच्छा तो नहीं लगता लेकिन नौकरी तो शायद करनी ही पड़ेगी।

एक दिन मामा ने भी बातों-बातों में कहा था, "अकेला एक आदमी कमाए और उससे घर-भर का काम चल जाए, अब वह जमाना नहीं रह गया, रुनू!···आज के जमाने में नौकरी करना लड़कों के लिए भले जेलखाना हो, लेकिन लड़कियों के लिए तो आजादी है।"

···लेकिन रुनू को तो ऐसी आजादी की चाह नहीं है।

···साले उस चूने के दूकानदार ने पूरे रास्ते को ही जैसे बड़े बाजार की गली बना डाली है। रास्ते में हर वक्त दो-तीन ठेलागाड़ियाँ खड़ी रहती हैं। कभी-कभी तो कतार-दर-कतार लॉरी।

घर में घुसते हुए अरुण ने देखा दरवाजे पर चमकती हुई नयी कार खड़ी है। बिल्कुल नये मॉडल की। शायद स्टेट-ट्रांसपोर्ट से हाल ही में खरीदी गयी थी। वह कार पुरबिया दरबानों की तरह राह रोके खड़ी थी।

उस चूने वाले के यहाँ कोई नकली नवाब तो तशरीफ नहीं लाया है? अपने कॉलेज का हीरो बाजोरिया भी ऐसी ही कार में आया

करता था और वह साला संजय कॉलेज में यूनियनबाजी करता था। यूनियन के फंड के रुपए उड़ाकर बेटा, विलायत उड़ गया।

यह बात टिकलू ने बतायी थी। कहा था, "अगले जन्म में माँ कसम, मैं भी पैदा होने से पहले अपनी मर्जी मुताबिक बाप का चुनाव करूँगा।"

सुजीत ने हँसकर एक वाक्य जोड़ा था, "और अपने लिए एक इन्कम-टैक्स ऑफिसर की नौकरी का इन्तजाम भी।"

गाड़ियों के प्रति टिकलू के मन में तीखा आक्रोश है। उसके मुहल्ले के उस लाल मकान में तीन-तीन बहनें रहती हैं। शाम को बराम्दे में खड़ी होकर फैशन-परेड करती हैं। एक छोकरा गाड़ी लेकर आता है और साला, उँगलियों में चाबी नचाते हुए सर्राटे से ऊपर चढ़ जाता है। कभी टिकलू और अरुण उनकी तरफ देखते हैं, तो वह यूँ हँस देती है मानो पान का पीक थूक रही हों। सारे तन-बदन में जैसे आग लग जाती है। एक दिन तो उन लोगों ने तय किया कि उसकी गाड़ी के पहिए की हवा निकाल देंगे। लेकिन गाड़ी की हवा कैसे निकाली जाये, यह उनकी समझ में नहीं आया।

अरुण ने अपने दरवाजे पर किसी और की इम्पोर्टेड कार खड़ी देखी तो उसकी देह में जैसे झिनझिनाहट फैल गयी। वह गाड़ी के करीब चला आया। गाड़ी में क्रॉस का निशान था—डॉक्टर?

वह हड़बड़ाकर घर के अन्दर घुसा। माजरा क्या है? वह दबे पाँव बापू के कमरे की दहलीज पर आ खड़ा हुआ। जिस बात का उसे डर था, आखिर वही हुआ। इसमें उसका भी क्या दोष है? वह क्या ज्योतिषी है, जो उसे पहले से ही खबर हो जाती कि आज माँ की बीमारी बढ़ने वाली है?

हर ओर अस्पताल-सी खामोशी! डॉक्टर माँ को देखने में व्यस्त था, बापू डॉक्टर के चेहरे की तरफ देख रहे थे। उनका चेहरा फक्क पड़ गया था। मीलू भी सहमी हुई लग रही थी। [illegible] अभी रो देगी। छोटी मौसी की पलकें भी भीगी हुई थीं।

अरुण को सबसे पहले छोटी मौसी ने देखा, फिर मीलू ने। [illegible]

जैसे देखा ही नहीं।

डॉक्टर का चेहरा गम्भीर हो आया। वह जैसे कुछ सोच रहा था। बापू ने दस-दस के नोटों को एक बार फिर से गिना ताकि कहीं अधिक न दे दें या कम देकर शर्मिन्दा न होना पड़े।

डॉक्टर ने मशीन की तरह हाथ बढ़ाकर रुपये ले लिए और उन्हें बिना गिने ही अपनी जेब में रख लिया। बापू उन्हें गाड़ी तक पहुँचाने के लिए कमरे से बाहर निकल गए।

अरुण ने माँ की तरफ देखा। उनका चेहरा सुर्ख हो रहा था। उन्हें सांस लेने में भी बेहद तकलीफ हो रही थी।

मीलू ने फुसफुसाकर कहा, "माँ बेहोश हो गयी थी।···इतनी देर से तू कहाँ था ? बापू तुझ पर फायर हैं।"

हुँह ! इतने दिनों तक खुद लापरवाही बरत रहे थे तो कुछ नहीं। आज वह घर पर नहीं था तो सारा दोष-पाप उसके सिर मढ़ा जा रहा है। वैसे वह खुद भी अपने को अपराधी महसूस कर रहा था। उसे लगा, शायद छोटी मौसी और मीलू भी उसे ही अपराधी समझ रही होंगी।

"लगता है, माँ को बहुत तकलीफ हो रही है।" अरुण ने मीलू के कान में फुसफुसाकर कहा।

लेकिन अरुण को कोई तकलीफ क्यों नहीं हो रही है ? उसके सीने में कहीं, कोई दर्द क्यों नहीं हो रहा ? अभी थोड़ी देर पहले उसके चेहरे पर हल्की-सी उत्कंठा की छाप थी, लेकिन वह तो बनावटी थी। अच्छा, क्या वह अपनी माँ को जरा भी प्यार नहीं करता ? कौन जाने ? बहुत से लोगों ने किताबों में बहुत सारी बातें लिखी हैं, मुँहजबानी घोषणा भी की है, लेकिन असल में कोई उतना प्यार नहीं करता। लेकिन यह भी तो हो सकता है कि इस मामले में सिर्फ अरुण ही नालायक हो। माँ तो उसे हमेशा ही नालायक कहती हैं। अचानक अरुण का मन हुआ, वह माँ के लिए अभी, इसी दम कुछ कर डाले। कोई मुश्किल और सख्त काम। गन्धमादन का जंगल उठा लाने जैसा कोई सख्त काम ! अभी दो साल पहले तक उसकी माँ भी उसे बन्दर

कहा करती थी।

···लेकिन रुनू का ख्याल आते ही उसके दिल में कहीं दर्द होने लगता है।

"····माँ क्या होती है, जरा और बड़ा होगा तब समझेगा।" एक दिन दिदिया ने कहा था। दिदिया इस घर की सलाहकार समिति की चेयरमैन जो ठहरी। अरुण का मन हुआ वह उससे पूछे—क्यों क्या हुआ, माँ इतनी बीमार है, अब चलकर सेवा नहीं करेगी ?

उसे रह-रहकर उर्मि और टिकलू पर गुस्सा आने लगा।

···अरुण और सुजीत 'कोजी-नुक' में बैठे थे। कॉफी-हाउस जाने का मतलब खर्च। परीक्षा समाप्त होने के बाद पॉकेट-फण्ड यूँ भी घट जाता है। कहीं से एक पैसे की भी ऊपरी आमदनी नहीं होती। ऐसे में माँ के आगे हाथ फैलाने के अलावा और कोई राह नहीं बचती। इन दिनों तो यह भी बन्द है। एक-एक करके सारी पुरानी किताबें भी रद्दी के भाव बेच डालीं। उसने सोचा था, उन पैसों से वह टॉयन बी० की किताब खरीदेगा। लेकिन आज तक वह किताब नहीं खरीद सका। अब बापू के आगे हाथ फैलाने के अलावा और कोई चारा नहीं है। बापू ने तो शायद टॉयन बी० का नाम भी नहीं सुना होगा। उस जमाने के लोग गिब्सबान् के अलावा और किसी का नाम नहीं जानते थे। पिछले दिनों उसने लाइब्रेरी से डिपोजिट रुपये भी उठा लिए, लेकिन वह भी हवा !

उसी समय टिकलू उछलता-कूदता अन्दर घुसा। मानो कैंसर की कोई रामबाण दवा खोज निकाली हो। परकटी मुर्गी की टिटहरी जैसी टाँगों की तरह, अपने दोनों कन्धे उचकाकर उसने बेहद नाटकीय अन्दाज में कहा, "मैं विशुद्ध ! मैं पवित्र !" और कुर्सी खींचकर धम्म् से बैठ गया। लकड़ी की कुर्सी चरमरा उठी। कहा, "यार, माँ कसम ! अपनी उर्मि सचमुच गंगाजल में पकाया हुआ, खुर्जा का असली घी है।"

अरुण के चेहरे पर खीज झलक उठी, "अबे, यह क्या तेरे बाप की खोजी हुई बहुरिया है ? आखिर तू उसके पीछे इस तरह हाथ धोकर क्यूँ पड़ा है ?"

टिकलू यूँ टोके जाने पर बिगड़ खड़ा हुआ, "देख, तू अब उसे सती-सावित्री साबित करने की कोशिश मत कर। साला, तेरा ही कौन भरोसा ? कौन जाने, तू भी इतने दिनों से उर्मि के साथ पिंग-पाँग खेलता रहा हो···।"

सुजीत ने राय दी, "हाँऽ, यार, मुझे भी रूनू और उर्मि के अलावा सब डालडा लगती हैं।"

टिकलू हँस पड़ा, "अब हाथ कंगन को आरसी क्या ? हाथों-हाथ प्रमाण हाजिर है। आज मैंने उर्मि को न्यू-मार्केट में देखा। वह मेरी आँखों के सामने ही टैक्सी में एस० के० एम० के बगल में ठसका मारे बैठी थी—टैक्सी में ! समझाऽ ?"

सुजीत और अरुण दोनों चुप हो गये। जाहिर था कि उसकी बातें दोनों को बहुत बुरी लगीं।

···माँ के कमरे से निकलकर अपने कमरे में, कुर्सी पर बैठते हुए अरुण को, वह बात फिर से याद आने लगी। धत्तेरे की ! इस घर में एक सिगरेट पी सके, इसका भी कोई उपाय नहीं। घर में बापू हैं, छोटी मौसी हैं···। अपने कमरे में बैठकर एक सिगरेट जलाना भी मुहाल है।

···लेकिन, उर्मि को यह क्या सूझी ? अन्त में वह एस० के० एम० के साथ घूमने-फिरने पर उतर आयी है ? छिः, छिः ! लेकिन अरे, वाह ! इसमें क्या हुआ ? वह भी क्या दिदिया या माँ की तरह होता जा रहा है ? अपना मामला था तो वह छोटे मौसा, माँ, बापू, दिदिया सब पर गरम हो उठा था। उसे लगा सब के सब गँवार हैं। किसी लड़की से जरा बात कर ली या उसके साथ फिल्म देख ली तो मानो कोई भयंकर दुर्घटना हो गयी। हुँह ! भयंकर दुर्घटना होना जैसे बहुत आसान बात है !

अरुण ने झल्लाकर कहा था, "यार, कसम से, ये माँ-बाप हम लोगों को जरा भी अण्डरस्टैंडिंग देना नहीं चाहते। ये लोग समझते हैं, हम लोग सिर्फ ऐय्याशी करते फिरते हैं।"

टिकलू हँस पड़ा, "अबे, इन बुड्ढे-खूसटों को लेकर यही तो

जानी है।"

अरुण को याद आया उस दिन जब वह और उर्मि प्रिन्सेप घाट पर ठे थे—"तब देखा नहीं था ? ख़ैर उन अड्डेबाज़ छोकरों की बात तो व भी समझ में आती है कि जेब में पैसा नहीं है, अतः साझेदारी में ही सही, टैक्सी चढ़ने का शौक़ चर्राता है। लेकिन ये बुड्ढे ? लड़की देखते ही सब-के-सब पुलिस के कुत्ते की तरह ख़िसियाने लगते हैं।"

सुजीत ने उमंग भरकर कहा, "एक हम लोग हैं, दूध पीने की साध छाछ पी-पीकर मिटा रहे हैं। उर्मि जरा बढ़ा-चढ़ा देती है, बस्स, लोग जल मरे, हम लोगों को जैसे इसी में सुख मिलता है।"

टिकलू फिर हँसा, "हम लोग तेल की पकौड़ी तलकर, मछली की -चुगली लेते हैं।"

...अरुण सोचता रहा, ये लोग उर्मि को इतनी बुरी क्यों समझते हैं ? दो-एक दिन उसे एम० के० एम० के साथ घूमते देख लिया, तो वह बुरी हो गयी। फिर अपने माँ-बाप को ही क्यों दोष दिया जाए ? हम सब भी अन्दर से बुड्ढों की तरह चिड़चिड़े और शक्की मिजाज हो गए हैं। उनमें और बुड्ढों में रत्ती भर भी फर्क नहीं है।

कॉफी-हाउस में वह मूँछवाला लड़का भी कल्चर बघारता है। उस दिन उर्मि की बुद्धि तराशने आया था। कह रहा था, जीवन-मूल्य बदल गये हैं। स्साला, मूल्य-बोध टोध...जाने क्या-क्या बकवास कर रहा था। एक जमाना था, जब अरुण भी उन सब बातों पर विश्वास करता था। लेकिन अब यह सब बकवास लगने लगा है। सब उसे चक्कर में डालकर हथियाने के फेर में हैं। अरे, जीवन-मूल्य बदल रहा है, तो अपने घर बैठकर बदलो, इसके लिए औरों को बदलने की क्या जरूरत है ?

लेकिन...उर्मि एस० के० एम० के साथ—टैक्सी में घूमती है, यह सुनकर उसके दिमाग में कहीं कुछ आल्पिन की नोक की तरह चमक उठा। उर्मि की जगह अगर कहीं रुनू होती तो उस पर जाने क्या गुजरती। वह हमेशा ही इस भय से आतंकित रहता है।

अगर कहीं रुनू ही किसी और के साथ घूमने-फिरने लगे तो उसे

अभी ही... ::

दर्द तो होगा ही। लेकिन इससे भी अधिक वह इस बात से भयभीत है कि टिकलू किसी दिन यह न कह बैठे, "हाय, बाप ! आज मैंने अपनी आँखों से देखा रूनू को, किसी और के साथ घूम रही थी। यार ! वह बेटा, किसी जेल से छूटा हुआ कैदी दिखता था। मिथुनलग्नवाला, अन्दर तक धँसी हुई आँखें।" या अगर कहीं रूनू ही आकर कहे, "अभी-अभी अयन···।" यानी वह जानता है कि कहीं कुछ नहीं है, सिर्फ इज्जत का सवाल है। उर्मि, टिकलू और सुजीत के आगे अपनी इज्जत बचा पाए, बस्स ! रूनू के बारे में अगर ऐसा प्रसंग आया तो वह सिर्फ इतना ही कहेगा, "अरे, यह कौन-सी नयी बात है ? रूनू तो मुझे खुद ही बता चुकी है।" यानी वह जो भी करती है, अरुण से छुपाती नहीं है बस इसी में उसे सन्तोष कर लेना होगा। वाह, उसका भी जीवन-मूल्य क्या बदल नहीं गया ? पहले का जमाना होता तो कोई इत्ती-सी बात भी सहन कर सकता था ?

सच्ची, पुराने जमाने के लोगों के लिए यह शरीर ही एक मन्दिर था। लोग दिन-रात गंगाजल छिड़ककर उसे शीतल और पवित्र रखते थे। उनके लिए मन कुछ भी नहीं था...बिल्कुल तुच्छ। अरुण यह मानता है कि शरीर का भी अस्तित्व है। हर आदमी की रगों में खून दौड़ता है —कभी तेज ! कभी धीमा ! लेकिन वह यह भी जानता है कि अगर किसी का मन नहीं मिला, तो कुछ भी नहीं मिला।

ये बुजुर्ग लोग उन्हें कहाँ से समझेंगे ? वह लोग तो बीस साल की उम्र में ही ब्याहे जाते थे और थोड़े दिनों में ही कई-कई बच्चों के बाप बन जाते थे। उन दिनों आसानी से नौकरी भी मिल जाती थी, उन लोगों की दृष्टि में सेक्स-वेक्स की बात तो गन्दी लगेगी ही।

अरे, हटो, उर्मि बुरी हो ही नहीं सकती, वरना उस दिन वह उसके सामने यूँ टूटकर न बिखरती।

···उस दिन उर्मि को जाने क्या हुआ था। वह रह-रह कर उदास हो उठती थी। उसकी सारी देह कैसी हल्की-फुल्की है। डमरू की तरह लचकती हुई कमर। मन होता है उसे बाहों में उठाकर बजाता रहे। उर्मि भी अपने को सजा-सँवारकर दीपशिखा की तरह जगर-मगर

करना जानती है। उसे निहारते रहना बुरा नहीं लगता, भला ही लगता है लेकिन उस दिन उर्मि हँस भी नहीं पा रही थी।

"एई, तुझे क्या हुआ है, बोल न। तू तो बिल्कुल जीरो-पावर की तरह डाउन लग रही है।"

उस दिन धूप अभी भी पूरी तरह नहीं ढली थी। प्रिन्सेप घाट के उन जोगिया रंग के मोटे-मोटे खम्भों के नीचे काफी ठन्डक थी। वहाँ इधर-उधर पड़े हुए बेंचों पर गरीब मोटिया-मजदूर और भिखारी खाली बदन लेटे थे और चैन की नींद ले रहे थे। उन लोगों को देखकर एक पागल उठा और शायद उनसे डरकर फौरन भाग खड़ा हुआ।

दोनों अपने-अपने रूमालों से बेंच पर खाली जगह झाड़कर बैठ गये। अगर कहीं रूनू उस समय उन्हें देख लेती तो डायरी के पन्नों की चिन्दियाँ बनाकर उड़ा देती। उस दिन अगर वह अपनी डायरी न फाड़ती, तो अरुण दुबारा आता कैसे? अच्छा, छोड़ो वह सब बातें। यह सच है कि वह रूनू से प्यार करता है, लेकिन सिर्फ इस वजह से उसने अपने आपको बेंच तो नहीं दिया। धत्तेरे की! इतना शक-शुब्हा अच्छा नहीं लगता है। अरुण सोचता रहा, वह सच्चा है, इसीलिए वह जलन महसूस कर रहा है। अगर उसने साइन्स लिया होता तो एक्स-रे जैसी कोई चीज ईजाद करके रूनू से कहता, "मेरे दिल की तस्वीर उतार लो और देख लो। बस्स! बेकार फुन्-फुन् मत किया करो।"

यह सब सोचते हुए वह खुद हँस पड़ा। वह कहीं पागल तो नहीं हो गया? अगर कहीं सचमुच मन का एक्स-रे सम्भव होता तो वह बुरी तरह पकड़ा जाता। टुकड़ों-टुकड़ों में महसूस की हुई सुखद बातों की रूनू को खबर ही नहीं है। वह तो सिर्फ उर्मि को लेकर आशंकित है। एक-बार उस चुस्त सलवारवाली पंजाबी लड़की को देख कर, उसके दिल में हिलोरें उठने लगी थी, नन्दिनी को भी जब स्लीवलेस ब्लाउज में देखा था, तो उसके दिल में कुछ-कुछ होने लगा था, ऐसे ही कितने सारे नन्हें-नन्हें सुखों की सरसराहटें। आज एक्स-रे में उसके दिल की ये तमाम बातें भी उभर आतीं। रूनू वह तस्वीर देखकर उसका सारा दुःख

तकलीफ भूल जाती और हिकारत से कहती, "इश्श, तुम इतने गन्दे हो।"

इतने पास-पास होने के बावजूद अरुण को लग रहा था, उर्मि वहां होकर भी वहां नहीं है। वह कहीं और भटक रही है। शायद धनवाद में। अरे, उर्मि की आंखें क्यूं भर आयी हैं?

"तुझे क्या हुआ है, बता न।" अरुण ने दुबारा पूछा।

"कुच्छ नहीं।" उर्मि ने मुस्कराकर कहा। लेकिन उसी समय उसकी आंखों से एक बूंद आंसू टपक पड़ा और उसकी गोद में पड़े हुए सफेद पर्स को गीला कर गया।

अरुण के मन में जाने कैसी हूक कसक उठी। अच्छा, जैसे उर्मि अपने माइनिंग-इंजीनियर को प्यार करती है, रूनू उसे प्यार नहीं कर सकती? अरूण का मन हुआ, वह पंछी की तरह उड़कर जाए और रूनू की खिड़की से झांककर देखे कि उसकी आंखों से उसके लिए भी ऐसा पुखराज झरता है या नहीं।

"...अच्छा अरुण, एक बात तो बता, आजकल के लड़के आखिर चाहते क्या हैं।" उर्मि ने एक उसांस भरकर पूछा।

"क्यों? वह नया क्या चाहेंगे?" अरुण को उर्मि का सवाल समझ में नहीं आया।

उर्मि अचानक बेहद सीरियस हो उठी, "नहीं, मैं यह पूछ रही थी कि प्यार मिलते ही वे इतना बदल क्यों जाते हैं?"

अरुण ने हंसने की कोशिश करते हुए कहा, "अच्छा? बिलकुल बदल जाते हैं?"

"मुझे क्या मालूम?" उर्मि का चेहरा सद्यः विधवा की तरह बुझ आया।

"मुझे भी नहीं मालूम उर्मि, लेकिन प्यार पाकर..." अरुण की आवाज कांपने लगी, "प्यार पाकर हम लोगों के दिल में बड़ा अहंकार जाग उठता है।"

"हुंह! अहंकार या दम्भ?" उर्मि का चेहरा गुस्से से आग हो उठा।

तकलीफ भूल जाती और हिकारत से कहती, "इश्श, तुम इतने गन्दे हो।"

इतने पास-पास होने के बावजूद अरुण को लग रहा था, उर्मि वहाँ होकर भी वहाँ नहीं है। वह कहीं और भटक रही है। शायद धनबाद में। अरे, उर्मि की आँखें क्यूँ भर आयी हैं?

"तुझे क्या हुआ है, बता न।" अरुण ने दुबारा पूछा।

"कुच्छ नहीं।" उर्मि ने मुस्कराकर कहा। लेकिन उसी समय उसकी आँखों से एक बूँद आँसू टपक पड़ा और उसकी गोद में पड़े हुए सफेद पर्स को गीला कर गया।

अरुण के मन में जाने कैसी हूक कसक उठी। अच्छा, जैसे उर्मि अपने माईनिंग-इंजीनियर को प्यार करती है, रूनू उसे प्यार नहीं कर सकती? अरूण का मन हुआ, वह पंछी की तरह उड़कर जाए और रूनू की खिड़की से झांककर देखे कि उसकी आँखों से उसके लिए भी ऐसा पुखराज झरता है या नहीं।

"...अच्छा अरुण, एक बात तो बता, आजकल के लड़के आखिर चाहते क्या हैं।" उर्मि ने एक उसाँस भरकर पूछा।

"क्यों? वह नया क्या चाहेंगे?" अरुण को उर्मि का सवाल समझ में नहीं आया।

उर्मि अचानक बेहद सीरियस हो उठी, "नहीं, मैं यह पूछ रही थी कि प्यार मिलते ही वे इतना बदल क्यों जाते हैं?"

अरुण ने हँसने की कोशिश करते हुए कहा, "अच्छा? बिलकुल बदल जाते हैं?"

"मुझे क्या मालूम?" उर्मि का चेहरा सद्यः विधवा की तरह बुझ आया।

"मुझे भी नहीं मालूम उर्मि, लेकिन प्यार पाकर..." अरुण की आवाज कांपने लगी, "प्यार पाकर हम लोगों के दिल में बड़ा अहंकार जाग उठता है।"

"हुँह! अहंकार या दम्भ?" उर्मि का चेहरा गुस्से से आग हो उठा।

"नहीं उर्मि, गर्व ! बहुत बड़ा अहंकार।"

अरुण सोचता रहा···यह धरती आखिर हमें क्या दे सकती है ? यश, धन, सम्मान यही सब न ? लेकिन यह सब जब मिल जाता है तो हम यह घोषणा नहीं करते कि हमने सब कुछ पा लिया है। हमें जो मिलता है, उसे विनय और संकोच की पर्तों में छुपाए रखते हैं। और प्यार ? रुनू मुझे प्यार करती है—मेरा भी तो मन करता है कि मैं बुलन्दी से यह बात सबको बता दूं। मेरी भी तबीयत होती है कि सारी दुनिया जान जाए···

"और जो आदमी किसी को कुछ बताना ही नहीं चाहता हो···सबसे पहले डरता हो ?" उर्मि की बातों में अजीब-सी दाह थी।

अरुण ने पल भर को आँखें मूंद लीं। फिर कहा, "हां उसकी तकलीफ और तीखी होती है।" उसकी आवाज गहरी हो आयी, "देख, मैं भी तो किसी से कुछ नहीं बता पाता। उर्मि, कहीं न कहीं शायद मैं भी डरता हूँ। मुझे लगता है अगर मैं दुनिया के आगे एलान कर दूं और उसके बाद पता चले कि सब-कुछ झूठ था, तो···? रुनू शायद किसी और से···मेरे साथ महज खिलवाड़ कर रही थी तो मुझे कैसा लगेगा ?" अचानक वह चुप हो गया। वह अपनी बात भी पूरी नहीं कर सका।

अचानक उर्मि ने अरुण की तरफ खोज-भरी निगाहों से देखा, "अरुण, मुझे लगता है, तू मुझसे भी अधिक दुःखी है।"

"कौन जाने। मुझमें शायद दुःख को समझने की योग्यता भी नहीं है। अपनी तरफ से कुछ कह भी नहीं पाता। जानती है, उर्मि, कभी-*कभी क्या लगता है ? मुझे लगता है, हम जो कहना चाहते हैं, वह कह* नहीं पाते। जाने क्यों यह लगता है जैसे दिन-पर-दिन छोटा पड़ता जा रहा हूँ। अपनी कमजोरी पर शर्म भी और हँसी भी आती है। कहीं हमें ठोकर न लग जाए, इस आशंका से हम पहले ही ठोकर मार देते हैं।"

"ठीक कहा तूने, अरुण। तू सही कह रहा।" उर्मि ने अपना दाहिना हाथ आहिस्ते से अरुण के बाँए कन्धे पर रख दिया। इससे

पहले उसके कन्धे पर उसने कभी हाथ नहीं रखा था।

अरुण को भी ऐसा हमदर्द स्पर्श शायद पहले कभी नहीं मिला था। उसके सीने में घुमड़ती हुई रुलाई जैसे बाहर आने को छटपटा उठी।

उर्मि ने धीरे से पूछा, "अरुण, तुझे रूनू से कुछ नहीं मिला ना? कुच्छ भी नहीं?"

अरुण ने कोई जवाब नहीं दिया। वह उस वक्त अपने ही ख्यालों में खोया हुआ था। अच्छा, ऐसा कोई दिन आएगा क्या, जब कन्धे पर उर्मि की जगह रूनू का हाथ होगा? कभी वह बेहद बीमार हो गया तो रूनू उसके माथे पर हाथ रखेगी? और अगर कहीं उसने दम तोड़ दिया तो वह उसके ठण्डे माथे पर अपना गाल रखकर प्यार जाहिर कर देगी न?

उर्मि ने एक गहरी उसाँस ली। फिर अस्पष्ट स्वर में कहा, "जानता है, अरुण, बीच-बीच में मेरा क्या मन करता है? इतना-इतना प्यार देने के बावजूद जिन लोगों को बदले में कुछ नहीं मिला, मेरा जी होता है, उन्हें मैं अपने को भरपूर दे डालूँ और उनकी सारी दाह-तकलीफ मिटा दूँ।"

टिकलू को अखबार-वखबार पढ़ने की आदत नहीं है। कभी-कभार खेल का पन्ना या फिल्मों के विज्ञापन पर सरसरी निगाह दौड़ा ली, बस। 'कोजी-नुक' में एक ही अखबार ढाई हिस्सों में बँटकर इस मेज से उस मेज तक उड़ता-डोलता रहता है। उसके घर में अखबार लिया ही नहीं जाता। जरूरत भी नहीं पड़ती है। वह अपनी सारी जिज्ञासा चाय की दुकान पर ही मिटा लेता है।

टिकलू को तो पता भी नहीं था। सुबह अरुण ने ही आकर खबर दी।

"चल-चल, रिजल्ट निकल गया है। चल, देख आएँ।"

"अरे, देखना क्या है? फेल हो गया हूँ, यह तो पता ही है।" टिकलू हँस दिया।

अरुण को फेल-वेल की बात सुनने से भी झुरझुरी आती है। उसका जी धक् से रह गया। फेल! अगर ऐसा हुआ तो वह घर नहीं लौटेगा। बापू को मुँह कैसे दिखाएगा?

टिकलू के कमरे में दीवार से सटा हुआ एक तख्त बिछा था, जिस पर एक चटाई पड़ी हुई थी।

टिकलू उस तख्त पर बैठा हुआ एक गन्दी-सी प्याली में चाय सुड़क रहा था। टिकलू की माँ अरुण के लिए भी चाय ले आयीं। कमरे में आते हुए उनके कानों में भी टिकलू की बातों की भनक पड़ी।

"तुझे शर्म नहीं आती? 'फेल' होने की बात तेरे मुँह से निकली कैसे? तेरे बाप ने अपना पेट काट-काटकर तुझे पढ़ाया है...।" माँ ने गुर्राकर कहा।

टिकलू जोर से हँस पड़ा, "मुझे और शर्म?"

टिकलू तो इस बात पर शर्मिन्दा है कि वह लटकता-झूलता इतनी दूर तक कैसे चला आया। आखिर उसे इतना पढ़ाने की क्या जरूरत थी बापू को? वह खुद तो एक गन्दी-सी शर्ट पहनकर किसी तरह प्रेस चलाते हैं, ग्राहकों में आलतू-फालतू बातें बनाते हैं। उसे भी बारह साल की उम्र से ही कम्पोजीटर बनाकर अपने यहाँ काम पर लगा लेते। अब तो वह कनकटा हो गया है। बिल्कुल बेशर्म! क्यों, कोई इनसे यह पूछे कि अपने घर की हालत देखकर उन्हें शर्म नहीं आती। चारों तरफ झकाझक चमकते हुए नए-नए मकानों के बीच में टूटे-फूटे पलस्तर वाला गन्दी ईंटों का घर! बापू की हुलिया देखकर लोग उन्हें गलती से मशीन-मैन समझ लेते हैं। जब लोग उनसे भाई-बहनों के बारे में पूछताछ करते हैं तो वह उँगलियों पर गिनने लगते हैं, ताकि कोई बच्चा छूट न जाए। और माँ तो जैसे साही का काँटा है। चौबीसों घण्टे अपने नुकीले काँटों को पैना किए रखती है। उन्हें तो टिकलू पर भी शर्म आती है। उसे बात-बात में ताना मारती है, "तेरे मारे सारे मुहल्ले वालों के सामने शर्मिन्दा होना पड़ता है।..." बचपन में कभी किसी से झगड़ा हो गया था तो उसने गुस्से में आकर पत्थरों की बारिश की थी। मजूमदार के घर की

खिड़की का कांच झनझनाकर टूट गया था।…कभी उसने उस लाल मकानवाली लड़की को देख कर राह चलते सीटी वजायी होगी। हुँह ! लड़कियों को देखकर जैसे और कोई साला सीटी नहीं वजाता ? तो वह भी क्यों न वजाए ? कोई लड़की रून् की तरह आरती सजाकर उसके पास आने से रही।…यानी लड़की हो या नौकरी हो या परीक्षा का रिजल्ट हो…सब कुछ छीन-झपटकर हथियाना होगा। मैं तो खैर, अंग्रेजी का ए अक्षर भी नहीं जानता, और…

ऐसे वाप के वेटे को फेल होने में शर्म क्यूं आएगी ?

टिकलू को तो सुधा को लेकर भी शर्म नहीं आती है। साला अरुण छाती फुलाकर रून् के किस्से वखानता है और वह यूं रस ले-लेकर सुनाता है, मानो इस मामले में वह नितान्त अनाड़ी है।

…उस दिन रेस्तराँ में अरुण ने वताया, "जानता है, टिकलू ! जिस गिलास से मैं पानी पी रहा था, रून् ने वह पानी अपने गिलास में उड़ेलकर पी लिया।" उसने ऐसे गदगद् स्वर में कहा मानो कहीं से पंख खोंस आया हो, "मैंने उसे टोका भी—भई, वह मेरा जूठा पानी है। मैंने उस गिलास में मुंह लगा लिया था। रून् ने जवाव दिया—तो क्या हुआ, तुम्हारा ही जूठा पानी है न।"

…जा व्वावा ! दोनों ने एक ही गिलास में होंठ लगा लिया तो यह हाल, अगर सचमुच होंठ ही छू लेते, तो जाने क्या करते। हुँह, वह लड़की अरुण के सीने पर पाँव रखकर क्या मजे से भरतनाट्यम कर रही है।

"अवे, देख, देख वह लड़की कितनी लव्ली लग रही है।" अरुण ने गली से ट्राम-रास्ते की तरफ आते हुए कहा।

वह स्कूटर दो-एक वार डगमगाया, फिर घर्र घर्र की आवाज करता हुआ सर्राटे से आगे निकल गया। उस गोरी लड़की की पतली-सी कमर, और नंगी पीठ…। उसने साड़ी का एक आँचल खींचकर कमर में खोंस लिया था। यूं वह देखने में वेहद नाजुक और खूवसूरत लग रही थी। वह स्कूटर के पीछे यूं वैठी थी कि लगा वह उस लड़के की पीठ से चिपकी हुई है।

अरुण को रोमांच हो आया। वह तय न कर पाया कि उसके दिल से मुट्ठी भर चैन कौन छीन ले गया—उस शोख लड़की की चटख देह या वह स्कूटर?

अरुण ने जैसे अपने से ही सवाल किया, "स्कूटर देख कर कभी इतना क्षोभ होता है?" जरा ठहरकर क्षुब्ध आवाज में एक वाक्य जोड़ा, "यार, माँ कसम, यह सब सुख अपनी किस्मत में नहीं है। अपने को तो यही बस-ट्राम में लटकते हुए ही आना-जाना होगा।"

"स्कूटर? अमाँ यार, बेहतर है कि सपने देखना छोड़ दे और एक रिक्शा खरीद ले! उस पर रून् को बैठा लेना और घंटी टुनटुनाना।" यह कहते हुए टिकलू ने जोर का ठहाका लगाया। लेकिन रून् का नाम लेते हुए उसे सुधा का ख्याल आ गया।

टिकलू ने सोचा था कि आज-कल में ही कभी दोपहर के वक्त वह सुधा के घर की तरफ हो आएगा। रिजल्ट देखने के बाद, अगर फेल हो गया तो दुःख के मारे शायद उस तरफ जाने की तबीयत ही न हो।

लेकिन उसने जो कुछ सोचा था, सब उलट-पलट गया। सब-के-सब पास हो गये थे। उर्मि ने टॉप किया था।

"शुक्र है, टैक्सीरानी का नम्बर भी निकल आया।" टिकलू ने फिकरा कसा।

अरुण बिगड़ उठा, "अबे, उर्मि ने इससे पहले भी बढ़िया रिजल्ट किया था। वह बहुत शार्प लड़की है।"

"हाँऽ—शार्प तो है ही! बिल्कुल जिलेट ब्लेड की तरह! स्साली, दोनों तरफ से चीर देती है।"

"अबे, तू जानता भी है? परीक्षक लोग यूँ ही नम्बर नहीं दे देते, कापी जाँच कर ही नम्बर देते हैं।"

उर्मि के प्रति उसे कोई क्षोभ नहीं है। असल में सारा गुस्सा टिकलू पर है, क्योंकि अब सुजीत, टिकलू सब उसकी बराबरी के स्तर पर आ खड़े हुए हैं। कौन जाने, टिकलू ने उन सब से ज्यादा नम्बर झाड़ लिये हों। अरे, चाहे मेहनत से पढ़कर पास करो या नकल टीपकर—एक ही बात है। टिकलू अगर सचमुच फेल हो जाता, तो उस

"अच्छा, यह सब प्यार नहीं है ?" टिकलू ने अवाक होकर पूछा।

ऐसी बातों पर उसकी सारी देह झनझना उठती है। बच्चा हो या बूढ़ा, उसके सामने कोई झाँव-झाँव करता है, तो उसके समूचे शरीर में बबूल के काँटे उग आते हैं और वह लोगों पर चोट खाए कुत्ते की तरह झपट पड़ता है। यह सब क्या यूँ ही है ? इसे प्यार नहीं कहते ?

इन दिनों सुधा भी जाने क्यूँ बदली हुई लगती है। लगता है जैसे उससे बचना चाहती है। उस दिन जब उसके मुहल्ले का छोकरा उसके पास से उठने लगा, तो सुधा ने झट से उसका हाथ पकड़कर बैठा लिया। टिकलू को शक होने लगा। यह लड़का यहाँ से दफा क्यों नहीं हो रहा है ? कौन जाने, यहाँ अक्सर ही आता हो।

टिकलू के मन में सुधा के प्रति जितनी नाराजगी होती है, उतनी ही नन्दिनी के पास जाने को तबीयत होती है। रह-रहकर उसका मन ललक उठता है, काश, नन्दिनी ही उसका खालीपन भर देती···।

"विराम ने नाकतला में फ्लैट लिया है, चलेगा ?" टिकलू ने अरुण से पूछा।

वैसे उसे पता था, अरुण नहीं जाएगा। सुधा का उस दिन वाला बर्ताव याद आते ही, उसके सिर पर जैसे खून सवार हो गया। उसने सोच लिया, अब वह सुधा के घर कभी नहीं जाएगा। कौन जाने वह उसका गुस्सा था या अभिमान या शर्म। हाँ शायद उसे शर्म आ रही थी। वह साला, जैसे भिखमंगा है। सुधा को अगर उसका आना पसन्द नहीं है, तो वह हरगिज नहीं जाएगा। उसे अगर किसी और से प्यार करने का मौका मिल जाए, तो वह सुधा की ओर पलटकर भी न देखे। सुधा आजकल उससे कन्नी काटने लगी है। हुँह ! काटने दो !

उससे बेहतर तो नन्दिनी···ना, वह उससे प्रेम ही नहीं करती है। आखिर उसे वह पसन्द क्यों नहीं करेगी ? जब वह अपने घर से नाराज होकर चली आयी थी, उस समय अगर टिकलू न होता, तो वह कहाँ जाती ? नाकतलावाला फ्लैट भी टिकलू की ही खोज है। उसने ऐसी छोटी-मोटी मदद जाने कितनी बार की है। उन लोगों ने कुछ रुपए उधार माँगे थे। उसने प्रेस के बिल भुनाकर करीब-करीब सारा-का-

सारा रुपया उन्हें दे डाला था।

उसने सोचा था, रात को घर लौटकर माँ-बापू को भी अपने पास होने की खबर दे देगा।

"फेल हो जाएगा। देखना, तू जरूर फेल होगा।" अब सोचा करें वह सारे दिन! हुँह! अब वह किसी होटल-वोटल में अपने रहने का इन्तजाम कर लेगा। लेकिन इससे पहले प्रेस से पार किए हुए छोटे-मोटे टाइप का पैसा वसूल लेना जरूरी है।

गैरज के ऊपर एक कमरा, नीचे बाथरूम और एक छोटी-सी रसोई! एक मामूली-सी नौकरी में इससे बेहतर और क्या मिलता?

कुंडी खटकाते ही, गैरज के ऊपर की खिड़की का पर्दा हटाकर किसीने नीचे झाँका।

नन्दिनी ने आकर दरवाजा खोल दिया, लेकिन उसके चेहरे पर हँसी नहीं खिली।

"विराम पास हो गया है न?" टिकलू ने पूछा।

नन्दिनी ने सिर हिलाकर बताया, "नहीं।"

टिकलू पास हुआ या नहीं, नन्दिनी ने यह नहीं पूछा।

टिकलू ने ही अपनी तरफ से कहा, "हम सब तो किसी तरह पास हो गए। एक वही बेचारा···"

नन्दिनी ने टिकलू की तरफ देखकर मुस्कराने की कोशिश की। उसने थोड़ा ठहरकर कहा, "आपने अभी खाना नहीं खाया होगा! आज यहीं खाकर जाइएगा।"

टिकलू ने कहा, "अरे, नहीं, नहीं! अभी तो मैं नहाया भी नहीं हूँ।" नन्दिनी लोग इतनी तकलीफ में हैं, उस पर से एक और आदमी का बोझ···टिकलू ने सोचा।

नन्दिनी हँस पड़ी, "तो यहाँ पानी की कमी नहीं है। आप खुद नहा लेंगे या कोई और नहलाती है?" उसने मजाक किया, "ऐसी बात हो, तो चलिए आज मैं ही नहला दूँगी।"

टिकलू ने उसके मजाक का कोई जवाब नहीं दिया, लेकिन उसकी ठिठोली बहुत भली लगी। काश ऐसा हो पाता, सचमुच अगर नन्दिनी

उसकी देह-पीठ पर साबुन लगाती, मग में पानी भर-भरकर उड़ेलती, तो वह भी मजाक-मजाक में उस पर एक मग पानी उड़ेल देता। पिछली बार जब वह दीघा गया था, तो उस हरी सड़ीवाली लड़की को भीगे कपड़ों में समुन्दर से निकलते देख कर…वह देखता रह गया। उसे यूँ निहारते देखकर वह लड़की भी फिस्स से हँस दी थी, फिर एकाएक गम्भीर होकर आगे बढ़ गयी थी।

टिकलू ने कहा, "आपके हाथ का खाना…सच्ची, ईमान डगमगाने लगा है।"

नन्दिनी ने ट्रन्क में से एक तौलिया निकालकर बाथरूम में रख दिया। साबुन वहाँ पहले से ही रखा था। बाथरूम इतना छोटा-सा था कि तौलिया रखकर बाहर निकलते हुए वह टिकलू से टकरा गयी। टिकलू को उसका स्पर्श फूलों की खुशबू की तरह नशीला जान पड़ा। उसने यह अन्दाज़ लगाने की कोशिश की कि वह जान-बूझकर टकरायी थी या…अरे, धत्त, ये लड़कियाँ क्या कभी अपने मन का पता देती हैं?

टिकलू को याद आया, दक्षिणेश्वर में नन्दिनी ने उसके हाथ से अपना हाथ छुड़ा लिया था और हँसते-हँसते दौड़ गयी थी। उस दिन टिकलू कितना डर गया था। लेकिन लगता है नन्दिनी ने यह बात विराम को नहीं बतायी। हो सकता है, उसे यह बात बहुत साधारण लगी हो या मात्र मजाक। शायद इसीलिए उसने विराम को कुछ नहीं बताया।

टिकलू खाना खाकर, बिस्तर पर आकर बैठ गया। 'मैं अभी आयी।' कहकर नन्दिनी प्लेट और गिलास उठाकर बाहर चली गयी और जाते हुए उसने खिड़की का पर्दा सरकाकर ठीक कर दिया।

अगर इस वक्त विराम लौट आए तो कौन जाने वह कुछ और अर्थ लगा ले।

नन्दिनी झटपट खाना खाकर वापस लौट आयी। तख्त के किनारे पर बैठते हुए उसने तकिया आगे कर दिया, "लीजिए…"

इतनी देर बाद टिकलू ने नन्दिनी की तरफ गौर से देखा। विराम के पल्ले पड़कर, नन्दिनी की हालत बहुत बुरी होगी, टिकलू को शुरू में

अभी हो…

ही लगा था। उसके चेहरे पर अब पहले जैसी चिकनाहट नहीं है। आँखें भी धँस गयी हैं। उसकी हँसी भी कहीं खो गयी है।···इसी नन्दिनी को जब विक्टोरिया में देखा था, तब वह बेहद खूबसूरत लगी थी। उसकी हँसी भी बेहद मोहक थी। टिकलू ने ऐसी उन्मुक्त हँसी पहले कहीं नहीं सुनी थी,···उसी नन्दिनी की हँसी अब पहचानी ही नहीं जाती जैसे कोई पानी का वर्मा खराब हो जाए, तो दो-तीन बार काफी दम लगाने के बाद चुर्र···चुर्र करके थोड़ा-सा पानी टपक पड़े। नन्दिनी की हालत वैसी ही लगी।

टिकलू सोच रहा था—दरअसल प्यार-मुहब्बत सब बकवास है। रुपया ही सब-कुछ है। नन्दिनी ने घर से चले आने के बाद यह महसूस किया होगा कि उसके पैरों तले एक इंच धरती भी नहीं है। विराम भी इस डर से उस पर झुंझला उठा था कि उसके भाई थाना-फौजदारी न करें। ऐसी स्थिति में उसके मन का सारा प्रेम मर गया होगा। जैसे कोई खूबसूरत-सी लड़की कोई भयंकर लम्बी बीमारी भोगती हुई पीली और कमजोर पड़ जाए, नन्दिनी भी उसी तरह बुझी-बुझी लग रही थी।

नन्दिनी ने कहा, "···वरुण 'दा भी आज सुबह-सुबह आने को कह गये थे।"

धत्तेरे की! वरुण 'दा! मुहल्ले के दो-तीन छोकरे आ जुटते हैं, चाय पीते हैं, अड्डा देते हैं। लेकिन नन्दिनी क्या इतनी बुद्धू है कि उनके आने का मतलब नहीं समझती? अच्छा, लड़कियाँ क्या सच ही इतनी बेवकूफ होती हैं? उनके साथ इतना घुलने-मिलने की क्या जरूरत है?

दरअसल प्यार-मुहब्बत में पड़कर लड़के भी बिल्कुल अन्धे हो जाते हैं। अरुण की ही करतूतें देखो न। साला चौबीसों घण्टे रूनू का नाम जपता रहता है। उसका ख्याल है, रूनू उसे बेइन्तहा प्यार करती है। हालाँकि वह अच्छी तरह समझ चुका है, रूनू अन्दर-ही-अन्दर डुबकियाँ लगाकर मजा ले रही है। असल में रूनू भी उर्मि की ही तरह है।

"अरे, अब उन लोगों को भी यह बात समझ में आ गयी है कि जो

मिलना है अभी···अभी ही मिल जाए। वह सब अहिल्या की तरह पत्थर हो पड़ी रहें, और हम इन्तजार में रहें कि कोई आकर उन्हें पैरों से छूकर जिन्दा करेगा—अब इन सब बातों पर किसी को भरोसा ही नहीं रहा।" एक दिन उसी ने कहा था।

सुजीत ने जवाब दिया, "इसमें उनका क्या दोष ? उन बिचारियों को तो यह भी नहीं मालूम कि उनका बाप उनका ब्याह भी कर पाएगा या नहीं। अब नन्दिनी की ही बात सोचो न ! बड़े भाई अपनी गृहस्थी तो चला नहीं पाते और बहन का ब्याह करेंगे ! तभी तो उसने खुद ही विराम को फाँस लिया।"

टिकलू फिर हँसा, "अबे, अब वह सब बातें छोड़ न ! असल में उमरिया बीती जाए, सखी। इन लड़कियों की जो हालत है, वही अपन लोगों की भी है। अरे, इस उम्र में भी जरा फुर्ती-पुर्ती न करें तो आखिर कब करेंगे ?"

अरुण सोचता रहा···और फिर इसके अलावा और कुछ करने को है भी क्या ? ले-देकर तारीफबाजी ! गालियों की धूम ! क्या बात कही तूने ? तबीयत होती है, साली, समूचे सोशल सिस्टम को गर्दन मरोड़ दूँ। मैं कहता हूँ कुछ नहीं होगा। इस देश का कुच्छ नहीं बनेगा। सब-के-सब रसातल में जा चुके हैं ! अरे, धनेरे की नौकरी ! नौकरी मिलते ही, देखना सब हवा···! प्रेम-व्रेम के मामले में भी वही बात है। अभी गोली मारो प्रेम को। यह प्यार-मुहब्बत भी साली, और कुछ नहीं, रुपहले वर्क में लिपटा हुआ सेक्स है। ···माला सिन्हा को देखा है ? अबे, अपनी माला सिन्हा को अपने पास रख ! एलाइट में एक ठो एडल्ट्स ओनली फिल्म लगी है···माँ कसम कभी-कभी मेरा मन होता है, इस नमूने देश को बदल डालूँ ! अमेरिका के ताबेदारों में···साले, सब-के-सब पूँजीपतियों के दलाल हैं ! ···अब जाऽ—जा, जितना गुस्सा है, सब दलालों पर है। क्यों बउआ, खुद भी तो इन पूँजीपतियों को पकड़ सकते हो। बेकार दलालों को क्यों नेशनलाइज किया जाए···अरे यह तो बिलकुल नाकाबिल है। हूँह, ये प्राइवेट मेन्टरवाले भी अपनी सारी योग्यता सिर्फ घूसखोरी में···जैसे इस समूची समस्या का कम्यु-

निजम के अलावा और कोई समाधान नहीं है, गुरू ! ···बाकी सारे समाधान, रबड़-समाधान हैं। उससे सिर्फ पंक्चर सुधारे जा सकते हैं।

···अबे, तो सीधे-सीधे यह क्यों नहीं कहता कि जब तक तमाम कम्युनिस्ट लोगों की तन्खाह डेढ़-सौ रुपए महीने तक नहीं पहुँच जाती, तब तक किसी की भी तन्खाह नहीं बढ़ायी जाएगी···अरे, फिर डेढ़-सौ की ही बात क्यों करते हो, बॉस ? इसी को कहते हैं मिड्ल क्लास बुद्धि ! सब सिर्फ अपनी ही सुविधा की बात सोचते हैं···क्यों साहब, सबके लिए एक जैसा स्टैण्डर्ड···लेकिन ऐसा स्टैण्डर्ड आखिर कौन निश्चित करेगा ? ये जो करोड़ों-करोड़ लोग हैं, वह तो साठ रुपल्ली पाकर ही खुश।··· चलो, यह भी ठीक है।···अगर क्लर्कों की तन्खाह नहीं बढ़ाएँगे तो वोट भी नहीं मिलेगा। अगर कहीं मेरे हाथ में पावर होती, तो बेटों को साल में तीन महीने खूब कड़ी मेहनत का हुक्म देता।···और लोग चाहे जो कहें, जो किसान है वह सुखी है। अगर यही बात है तो गांव ही चला जा न। खाली-पीली लेक्चर क्यों झाड़ रहा है ?···अरे, यार, तू भी कैसी बातें करता है ? मैं और खेल देखने न जाऊँ ? यार, तू जो भी कहे, फुटबाल के खेल में एक स्टैण्डर्ड है।···अपने चुन्नी को अगर इलेक्शन में खड़ा कर दिया जाए···अमाँ, यह सब छोड़ तो ! अच्छा नहीं लग रहा है। बस फुर्ती किए जा, बबुआ, जी भर कर फुर्ती किए जा !

"अरुण को देखा, क्या मजे से ऐश कर रहा है ?" टिकलू ने हँस कर ठहोका मारा।

अरुण बिगड़ उठा, "प्रेम क्या चीज है, साले, तुम लोग समझ ही नहीं सकते। तुम लोगों की समझ में आएगा भी नहीं।"

हुँह, अरुण की जुबान पर हमेशा यही एक बात होती है। प्रेम मानो कोई चाँदफूल या वनलता सेन हो।

···यह प्यार-मुहब्बत का इरादा अभी सूटकेस में ही बन्द रहने दो। इस वक्त पैसा कमाने की फिक्र में बाहर निकलना अधिक जरूरी है। माँ-बापू तो समझते हैं कि वह परीक्षा में पास हो जाएगा, तो उसकी पीठ पर दो पंख उग आएँगे। टिकलू को अपने पास होने का अफसोस

होने लगा। वह पहले ही बेहतर था। अब सब उसे 'बेकार' कह-कहकर खोखा दिया करेंगे। खैर, किसी ने पूछ भी लिया कि आजकल वह क्या करता है तो अपने मुहल्ले के जयन्त भाई की तरह वह भी कॉलर उलट कर कहेगा, 'बिजनेस!' जित्ते दिन नौकरी नहीं मिलती, सब यही कहते हैं। वैसे उसका नौकरी करने का जरा भी मन नहीं है। वह तो झटपट बड़ा आदमी बन जाना चाहता है। उसका मन करता है वह एकदम से बेशुमार रुपया या नाम कमा ले। जिन्दगी में वह पॉलिटिक्स भी कर चुका है, अतः उसे मालूम हो चुका है कि यह कितना गन्दा खेल है। पॉलिटिक्स की दुनिया में जितने बड़-भइए हैं, सब यही चाहते हैं कि वह धूप में बैठ कर सितारा बजाएँ या दूसरों पर फरमाइशें झाड़ें! हुँह!

टिकलू दरअसल क्या बनना चाहता है, वह खुद भी नहीं जानता। वह सिर्फ सबको अवाक् कर देना चाहता है। अब तक लोग उसमें सिर्फ नफरत ही करते आए हैं। उसका मन होता है कि ऐसा कुछ करे कि सब गर्दन उठाकर उसकी तरफ विस्मय से देखने लगें।

रात वह सुधा के घर से बेहद खुश-खुश मूड में लौटा था। सुधा के यहाँ गए बिना वह रह नहीं पाया। वह पास हो गया है, इतनी बड़ी खुशखबरी सुनाए बिना, कोई रह सकता है?

सुधा के घर के लोग आश्चर्य में पड़ गए।

टिकलू निश्चिन्त रूप से गर्व महसूस कर रहा था। वह शान से सीना ताने हुए घर में घुसा। उसे पक्का विश्वास था कि माँ-बापू सुबह से ही बेसब्री से इन्तजार कर रहे होंगे। यह बात सोचकर वह मन ही मन मुस्करा उठा। अच्छा ही है। माँ सोच रही होगी, फेल हो गया होगा, इसीलिए शर्म के मारे वह मुँह नहीं दिखा पा रहा है।

घर में जब किसी ने कुछ नहीं पूछा, तो उसने खुद ही सूचना देने के अन्दाज में कहा, "पास हो गया हूँ।"

माँ काफी गम्भीर दिखी। उन्होंने फौरन उसकी तरफ घूमकर कहा, "सिर्फ पास कर लेने से ही, कोई आदमी नहीं बन जाता।"

बापू टूटी हुई कुर्सी पर बैठे थे। अचानक वह उठकर खड़े हो गए, "सूअर कहीं का, तू तो कह रहा था, बिल के रुपए वसूल हो नहीं हुए।

लेकिन वह तो तू पिछले हफ्ते ही ले आया था। सीधे से बता, उन रुपयों का क्या किया ?"

इधर कई दिनों से शाम को आकाश में बादल छा जाते हैं, लेकिन बरसे बिना ही उड़ जाते हैं। आग के गोले की तरह तपती हुई धूप में सारी सड़क भांय-भांय करने लगती है। रास्ते के कोलतार तक पिघलने लगे हैं। राह चलते हुए चप्पलें चिपकने लगी हैं। इन दिनों ट्राम-बसों में चढ़ना-बैठना भी मुश्किल हो गया है। बस के रॉड जलने लगते हैं। घर पर भी चैन नहीं मिलता। पंखे की हवा भी मानो कुम्हार का आँवाँ हो जाती है। किसी-किसी दिन शाम के वक्त बादल घिर आते हैं, लेकिन थोड़ी-सी राहत देकर, साड़ी के पल्ले की तरह कहीं और उड़ जाते हैं। बारिश का कहीं नामोनिशान नहीं ! असल में बरसात कहीं होती ही नहीं है।

"मान लिया, तू पक्का और सच्चा प्रेमी है, अरुण ! बिल्कुल बाइस कैरेट !" टिकलू ने आवाज कसी।

"हम लोगों को तो, माँ कसम, मोरारजी के पिछलगुए होने का भी चान्स नहीं मिला।" सुजीत हँस दिया।

टिकलू ने विरोध भरे लहजे में कहा, "अबे चान्स दिया भी जाता तो तू अरुण की तरह इस भयंकर गर्मी में डांव-डांव घूम सकता था ?"

हुँह: एक अकेला अरुण ही जैसे भांय-भांय करता धूप सहन करता है ? या अकेला वही पागलों की तरह दौड़ रहा है ? लोग जो चाहें, सोचें,···लेकिन रुनू —वो कितनी दूर से आयी है। उसके चेहरे और आंखों में कैसी थकान उतर आती है। आखिर वह क्यों दौड़-दौड़कर आती है ? सुजीत या टिकलू जब भी उसके मन में रुनू के खिलाफ सन्देह के बीज बोने की कोशिश करते हैं या जब वह खुद ही उसके किसी बर्ताव से आहत हो उठता है, अरुण हरदम अपने को यही समझाने की कोशिश करता है कि सब झूठ है। रुनू क्या सचमुच उसे प्यार नहीं करती ? वह क्या महज खिलवाड़ कर रही है ? यह बात अगर

सच न होती तो वह धूप में बस की भीड़ में धक्के खाती हुई उससे मिलने क्यों आती ? अच्छा, वह क्या किसी और से प्यार करती है ? वरना जब वह उससे मिलने आती है तो अपने को घड़ी के काँटों से क्यों बाँधे रखती है ? अरुण ने चन्दन मिले हुए अबीर में प्यार की पहली खुशबू महसूस की थी। फिर भी कभी-कभी उसे डर लगता है। रुनू इतनी सरल और उन्मुक्त होकर बातें करती है कि कभी-कभी उसे यह आशंका होती है कि रुनू कहीं यह न कह बैठे, "और क्या करती ? होली के दिन किसी से मिलना सम्भव नहीं होता, अतः अपने जान-पहचानवालों को अबीर भेज देती हूँ।" बस, तब तो उसके सारे सपने ही टूट कर बिखर जाएँगे।

सुजीत ने कहा भी था, "उसकी भेजी हुई थोड़ी-सी अबीर लगाकर ही तेरी आँखों में रंग छलक आए ?"

टिकलू ने कहा, "अरे हाँ-हाँ, ऐसे कितने दर्जन लिफाफे खरीदे थे, कौन जाने ?"

…लेकिन रुनू का चेहरा तो झूठ नहीं बोल सकता।…उस दिन दोपहर के दो बज गये थे। रुनू उस भयंकर धूप में भी निश्चित जगह पर पहुँच गयी थी। उसका चेहरा देखकर अरुण को उस पर बहुत तरस आने लगा। धूप में उसका चेहरा झुलसकर लाल हो उठा था। उसने रूमाल से अपना चेहरा पोंछ डाला फिर भी माथे पर पसीने की बूँदें, उसी तरह चमकती रहीं। अरुण बिल्कुल पिघल गया। सच में, इस बिचारी को वह बहोत तकलीफ देता है। लेकिन, उसे देखकर सारी थकान मिट जाती है। वह भी उसे सचमुच बे-हद प्यार करती है।

"अच्छा, तुम्हें मुझ पर भरोसा क्यों नहीं होता ? अगर मैं तुम्हें प्यार नहीं करती, तो मेरे यूँ आने, मुलाकात करने का क्या मतलब है ?" जिस दिन किसी छोटी-मोटी बात पर भी अरुण ने आहत होकर शिकायत की है, रुनू उदास हो उठी है।

"अच्छा, तुम इतने अच्छे क्यों हो, बोलो तो ? दरअसल, तुम बे-हद अच्छे हो।" रुनू ने दुलार से कहा था।

उसकी ये बातें सुनकर अरुण और भी डर गया था। कहीं उसे खो

न दे। असल में वह बिल्कुल भी अच्छा आदमी नहीं है। वह तो रूनू से मिलने के बाद शरीफ हो गया है।…हाँ टिकलू ठीक ही कहता है, वह पॉलिश दे-देकर बातें करता है। वाकई वह बन-बनकर बातें करता है। लेकिन दुनिया का हर आदमी ही ऐसा होता है, अकेले अरुण को ही क्यों दोष दिया जाए ? उस दिन टिकलू के बापू की नजर अरुण पर ही पड़ी थी। वह प्रेस में बैठ कर दो खूसट बुड्ढों के साथ कितनी गन्दी-गन्दी बातें कर रहे थे।

अभी उसी दिन तीन-चार रिटायर्ड बुड्ढे, लाठी टेकते हुए आए थे और लेक में बैठकर कैसी डर्टी बातें कर रहे थे ! उस दिन कॉलेज में दो प्रोफेसर अचानक झगड़ पड़े थे और गुस्से में चीख-चीखकर जो कुछ बकते रहे थे, लग रहा था उनके मुँह में जैसे कोई लगाम ही नहीं है।

अरुण सोचता रहा…हममें से शायद कोई भी पूर्ण मानव नहीं है। बहुत सारे छोटे-छोटे और अलग-अलग व्यक्तियों को मिलाकर, एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व बनता है। अरुण का एक रूप वह है जो टिकलू वगैरह के साथ रहता है, उर्मि के सामने दूसरा व्यक्तित्व। रूनू के सामने एक और रूप और छोटे मौसा के सामने अलग चेहरा।

अरुण को दिदिया के व्याह वाले दिन की याद आयी। उस दिन वह अद्धी का कुर्त्ता और चुन्नटदार धोती पहने हुए हाथ जोड़-जोड़कर सबकी अभ्यर्थना कर रहा था और बरातियों में सिगरेट बाँट रहा था।

अगले दिन माँ ने मुस्कराते हुए कहा था, "तेरा सब गुण-गान कर रहे हैं, रे। कहते हैं तू तो हीरे का टुकड़ा है।"

बेटे की तारीफ सुनकर माँ खुश हो रही थीं। खुश होने की बात भी थी।

लेकिन अरुण मन-ही-मन हँस दिया। हुँह: बौड़म की तरह सिर झुकाकर प्रणाम करो, जरा विनयी दिखो, बस्स। हीरे का टुकड़ा हो जाओगे।…एक दिन उन तीनों ने मिलकर क्या-क्या मजे किये थे। उस दिन कहीं ब्याह था। एक बड़ी-सी जगह में विशाल शामियाना

बाँधा गया था। रोशन चौकी और शहनाई का इन्तजाम भी था। अपने एक दोस्त के पीछे-पीछे तीनों दोस्त चोंगा जैसी पैण्ट पहने हुए, बेधड़क अन्दर घुस गए। और मजे से पकवान, चिगड़ी-फिश और रसमलाई सटक कर चले आए।

…और रून्नू समझती है अरुण बहुत शरीफ है। वैसे वह खुद कितनी शरीफ और सरल है! इतनी खुशदिली से बातें करती है, यह सब वह खुद भी नहीं जानती। रून्नू और लड़कियों की तरह बन-बनकर नहीं बतियाती। चटकदार मेक-अप भी नहीं करती। वह इतनी सिम्पल है कि वह खुद भी नहीं जानती कि उसमें एक ऐसा सहज सौन्दर्य है कि कोई भी उसे देखते ही अनायास प्यार कर बैठेगा। उसे अरुण की बातों पर तो विश्वास ही नहीं होता।

"तुम्हें तो मुझमें सिर्फ खूबियाँ ही नजर आती हैं।" वह हँस दी थी, मानो वह कोई मजाकिया बात कह गया हो।

लेकिन अरुण पर कहीं-कोई जादू जरूर हुआ है, वरना इसकी क्या वजह है कि आजकल वह पहले जैसी कड़वाहट नहीं महसूस करता? पहले जैसी तीखी विरक्ति से अपने को टुकड़े-टुकड़े करने की भी तबीयत नहीं होती। अब तो उसका जीने को मन करता है।

"अबे, पहले तो तू कड़वा-नीम हो गया था। अब तू कदम्ब का फूल हो गया है।" सुजीत ने हँसकर अपनी राय दी।

अरुण भी हँस दिया; "नहीं रे, नीम के पेड़ में भी फूल खिलते हैं। उनसे भी सोंधी-सोंधी महक आती है।"

टिकलू ने अपनी जुबान को तालू से सटाते हुए 'टख' से आवाज निकाली। कहा, "भाई प्रेम ऐसी चीज है कि माथे पर तिल हो, तो तिलक समझ में आता है। बेटा, तुझे भी अब नीम के पेड़ से सेंट की खुशबू आने लगी।"

…उस दिन अरुण से आँखें मिलते ही रून्नू के चेहरे पर हँसी छलक पड़ी।…उस वक्त शाम घिर आयी थी। ढलती धूप अपनी रुपहली रोशनी बिखेर रही थी।

"…एई आज चाय पिलानी पड़ेगी। सारे दिन क्लास किया है।

आज एक भी पीरियड ऑफ नहीं था। फिर थोड़ा ठहर कर पूछा, "माँ कैसी हैं ?"

हुँह ! टिकलू, सुजीत इन सब बातों का मतलब क्या समझेंगे ? वह तो सिर्फ यह पूछते हैं, "अबे, तूने कभी उसे चूमा या नहीं ? मामला कित्ती दूर बढ़ा ?"···उन लोगों के पास मन नाम की शायद कोई चीज ही नहीं है। यह जो उसने चाय पिलाने की फर्माइश की।···कितना अच्छा लगा। अरुण को लगा, रूनू अचानक ही उसके बे-हद, बेहद करीब आ गयी है। ऐसा न होता, तो वह इस तरह फर्माइश कर पाती ? काश, वह हर वक्त इसी अधिकार से बात करे ! हर वक्त इसी तरह हक जताए···। 'माँ कैसी हैं ?' छोटे-से सवाल में कितना अपनापन।

रूनू अचानक हँस पड़ी, "एइ, रुको।" कहते हुए उसने अपनी पर्स से एक सेंट की एक छोटी-सी शीशी निकाली। कॉर्क खोलकर, उसकी शर्ट के कॉलर, सीने और रूमाल की तहों में लगा दिया। अरुण सुख से महक उठा।

···उस दिन धूप ढल चुकी थी। हल्की-हल्की हवा चलने लगी थी।

वह लोग चाय पीकर विक्टोरिया की तरफ चल पड़े। क्या करते ? इस समय टैक्सी या ट्राम या ट्राम-बसों में जगह ही नहीं मिलती।

"···उस दिन भी तुमने यही नीली साड़ी पहनी थी न ! यह साड़ी तुम पर बेहद खूबसूरत लगती है···" अरुण ने रिवाल्विंग-गेट को घुमाकर विक्टोरिया के अन्दर आते हुए कहा।

"···नीला रंग तुम्हें बहुत पसन्द है न ?"

अरुण ने मुग्ध भाव से रूनू की तरफ देखा। कहा, "हाँ, नीला और जोगिया रंग ! तुमने एक दिन जोगिया रंग की साड़ी भी पहनी थी न ?"

"उस दिन नन्दिनी ने भी जोगिया रंग की साड़ी पहनी थी। सुन्दर लग रही थी !" रूनू ने कहा।

"आज तुम भी तो खूबसूरत लग रही हो।" अरुण ने कहा, "उस दिन भी तुम इत्ती खूबसूरत लग रही थी, लेकिन मैं तुम्हारी तरफ आँख

उठा कर, अच्छी तरह देख ही नहीं सका।"

अरुण ने घूमकर रूनू की तरफ देखा। रूनू के होठों पर मुस्कुराहट थिरक उठी।

काफी देर तक दोनों चुपचाप साथ-साथ चलते रहे, फिर एक पेड के नीचे घास पर बैठ गये। एक गिलहरी तेजी से नीचे उतर रही थी। उन्हें देखकर उसी तेजी से दुबारा ऊपर की तरफ चढ़ गयी। चारों तरफ सेण्ट की भीनी-भीनी खुशबू बिखर गयी। मीलू तो बिल्कुल बक-वास है। वह होती तो झट पूछ बैठती, "अरे, आज क्या बात है, रे, भइया? आज तूने सेण्ट लगाया है?"

रूनू पेड़ के तने से पीठ टिकाकर बैठ गयी। अरुण उसके सामने बैठ गया।

पलभर को वह जाने किन ख्यालों में भटक गया। उस करिश्मे को आखिर क्या नाम दे, जो किसी मन्त्र की तरह, उसके मन में भी जादू जगा गयी है?...पंछी? नदी? झरना? फूल या मोर वर्षा कोयल की पुकार? या धान की झुकी हुई सुनहरी बालियाँ? समुन्दर या पहाड़ या पर्वत की चोटी पर बरफ की चादर पर उगा हुआ सूरज?

अरुण ने मानो अपने-आप से कहा, "लगता है बारिश आने वाली है।"

रूनू ने कहा, "हाँ कहीं बारिश हो भी रही है। हवा में ठण्डक है।"

ठण्डी-ठण्डी हवा! सारी देह शीतल हो आयी। चारों ओर से घिरते आते काले-काले मेघ! जल के भार से झुके हुए।

अगले ही क्षण अरुण और रूनू के मन में जैसे जोरों की आँधी बहने लगी। काल-बैसाखी जैसी आँधी।

टप्! टप्! दो एक बूँदें टपक पड़ीं! हुँह होने दो बारिश।

बारिश! बारिश! पत्रहीन ठूँठ पेड़ अपनी हजारहा बाँहें फैलाए बेजान-से खामोश खड़े थे।

बारिश की बूँदें तेज हो उठीं।

अरुण और रूनू उठ खड़े हुए।

अरुण ने कहा, "न, न···अभी रुको न ! अभी जाने का मन नहीं कर रहा है।"

विजली की तरह रूनू के होठों पर हँसी कौंध गयी, "उफ ! कित्ते कित्ते दिन हो गये मैं वारिश में नहीं भींगी।"

उन्होंने देखा, उनके आस पास के लोग जिनकी उपस्थिति वह विल्कुल भूल ही गये थे, अचानक दौड़ने लगे हैं। सव-के-सव तेज कदमों से भाग रहे हैं।

वह दोनों आहिस्ता-आहिस्ता आगे बढ़े। वारिश तेज होकर मूसलाधार रूप से वरसने लगी।

पारदर्शी जलवाले तालाव के किनारों की सारी वेंचें खाली हो गयीं। उसी तरह टिपिर-टिपिर वरसात होती रही।

अरुण और रूनू आवेग में आकर एक-दूसरे से विल्कुल सटकर खड़े हो गये। उनकी आँखों और चेहरे पर एक अजीव-सा शुद्ध-पवित्र भाव था। दोनों खुशी से भर उठे।

दोनों आत्मलीन से एक वेंच पर जा वैठे। इतनी देर से जो लोग जोड़ों में वैठे थे या अकेले और उदास थे, वारिश आते ही दौड़कर पेड़ों के नीचे जमा हो गये।

"सुनो, सव लोग हम दोनों को पागल समझ रहे होंगे।" रूनू ने कहा।

"इस वक्त का सुख वह लोग नहीं जान पायेंगे।" अरुण ने कहा।

दोनों की देह, वाल, कपड़ों से पानी टपकने लगा। उनके मन से भी प्यार झर रहा था। दो अलग-अलग वहती हुई नदियाँ मिलकर मानो एकात्म हो जाना चाहती हों।

वारिश उसी तरह झड़ी लगाकर वरस रही थी। वारिश भी नहीं, वादलों को चीरकर मानो उमड़ा हुआ जल प्रपात ! चारों तरफ कहीं कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था, फिर भी वह दोनों एक-दूसरे को अपलक देखते जा रहे थे।

उस मूसलाधार वारिश में लोगों से नजर वचाते हुए, उस पेड़ के नीचे अरुण पागलों की तरह रूनू के चेहरे तक झुक आया।

"अरे पागल, लोग देख रहे हैं! देख रहे हैं!" रुनू ने विरोध नहीं किया, सिर्फ हँस दी।

दोनों ने अपने पास वाले पेड़ के नीचे की विशाल भीड़ की तरफ देखा। बारिश ने भीड़ के लोगों की आँखों पर एक अस्पष्ट-सा पर्दा डाल दिया था।

अरुण को लगा जैसे प्रार्थना की मुद्रा में आकाश की तरफ उठे हुए असंख्य हाथ, कृतज्ञता से नीचे झुक आए हों। उसकी समूची देह में मानो हरी-हरी पत्तियों के कल्ले फूटे हों।

भयंकर आँधी-तूफान और आकाश-तोड़ बारिश ने, उन दोनों के चारों तरफ शीशे का अस्पष्ट-सा पर्दा खींच दिया था। कहीं कुछ दिखायी नहीं दे रहा था—कहीं, कुछ नहीं। सब कुछ जमी हुई पीली रोशनी की तरह या घिसे हुए काँच की खिड़की से होकर आने वाली शाम की रोशनी की तरह धुंधला नजर आ रहा था।

वे लोग किसी को भी नहीं देख पा रहे हैं, उन्हें भी कोई नहीं देख पा रहा है।

उस मूसलाधार बारिश में अरुण ने अवश होकर रुनू को अपनी बाहों में कस लिया। अपनी भीगी हुई पीठ पर रुनू की हथेलियों का स्पर्श महसूस करता रहा।

वह मानो सृजन की पहली मुखर अनुभूति से बेचैन हो उठा और एकबारगी उसके चेहरे पर झुक आया और उसके होठों पर अपने होंठ रख दिए। उसकी साँसें रुनू की साँसों से टकराने लगीं और दोनों एक-दूसरे के दिल की धड़कनें गिनने लगे।

अचानक बारिश थोड़ी कम हो गयी। काँच के—धुंधलाए हुए पर्दे हट गये और किसी के ठहाके सुनकर वे चौंक कर सजग हो गये।

दोनों उस बारिश में ही रिसेप्शन गेट की तरफ दौड़ चले। पास, बारिश और सुख के क्षण पीछे छूट गये।

हाँ, कहीं कोई खाली जगह नहीं है—पल भर का एकान्त भी नहीं है। आदमी का मन भी इतना सुन्दर नहीं है कि प्यार भरे [illegible] स्नेह-दुलार दे सके।

सब कुछ बेमेल लगता है। बिल्कुल बेमानी ! अन्तर के भावों का बाह्य से कोई मेल नहीं है। दिल की उमड़ती हुई बात और उसे व्यक्त करने की भाषा में भी कहीं कोई मेल नहीं है। उस दिन अरुण ने महसूस किया, वह गुलमोहर के सुर्ख लाल फूलों का दरख्त बन गया है। उसके अन्तर में महीन सुरों की हल्की-हल्की गुनगुनाहट भर गयी है। उसे लगा विक्टोरिया के कम्पाउण्ड में रूनू के पीछे वह जो पत्र-पुष्पहीन वीरान-सा पेड़ खड़ा था, इतने दिनों से उसकी शाखें आकाश की तरफ अपनी शत्-शत् बाहें उठाए मानो प्रार्थनारत थीं। अब उसके पोर-पोर में नए-नए पत्ते हरिया आए हैं और वह कृतज्ञता की मुद्रा में नीचे की तरफ झुक आए हैं। अरुण को लगा, उन हरी-हरी पत्तियों ने मानो उसकी समूची देह ढँक ली हो।

वह दृश्य उसकी आँखों के आगे किसी खूबसूरत से लैण्डस्केप की तरह झूलता रहा।···हरी-हरी घास, हरे-हरे पत्ते, फूलों की क्यारियाँ। रंग-बिरंगे फूल···। रूनू अपनी बाहों के सहारे घुटनों में अपना चेहरा टिकाए हुए। उसके पीछे एक खुला-खुला पेड़। उसके भी पीछे उजला-धुला आकाश।···पश्चिमी छोर पर बादलों का गुच्छा ! घनी-घनी साँवली बदलियाँ !

रूनू का तन-मन भीगता रहा। बारिश थम गयी थी। आकाश साफ हो चुका था। राह-घाटों और बसों में सूखी पोशाकवालों की भीड़।

रूनू को संकोच हो आया। कहा, "देखो, लोग जाने क्या-क्या सोचते होंगे ?"

अरुण ने हँसकर कहा, "कहेंगे, दोनों हेमेन मजुमदार की तस्वीर जान पड़ते हैं या फिर इस जोड़े को किसी पत्रिका के पुराने अंक में देखा होगा।"

रूनू ने हेमेन मजुमदार का नाम नहीं सुना था। उनकी तस्वीर भी नहीं देखी थी। फिर भी अरुण का मतलब समझ गयी। कहा,

"हट, गन्दे ! पाजी कहीं के।"

अरुण को भी यह बात अखर रही थी। अचानक सब कुछ बड़ा निरर्थक लगने लगा। सब फिट्-फाट घूम रहे हैं। उनकी तरह कोई भीगा हुआ नहीं दिख रहा है। बारिश तो बहुत पहले ही रुक गयी थी, फिर भी उनका समूचा शरीर पानी का हौज बना हुआ है। उन्हें लगा आस-पास के लोग बेहद हैरानी से देख रहे होंगे और उन्हें बिल्कुल पागल समझ रहे होंगे। कोई-कोई अपने कपड़े बचाने में लगा होगा। कोई अचम्भे से देख रहा होगा कि इतनी जरा-सी बारिश में वह लोग इतना कैसे भीग गये। किसी के मन के भीतर जब प्यार की बरसात होने लगती है, तो दुनिया वाले उसकी तरफ इसी तरह अचरज से भरकर देखते हैं और उन्हें पागल या दीवाना कहते हैं।

अरुण ने कुछ और कृतज्ञता से भरकर रून् से कुछ कहना चाहा था। उसने कहना चाहा था, "सुनो, आज तुम्हें नया नाम देता हूँ—वृष्टि ! लेकिन जब उसने कुछ कहने को मुंह खोला तो उसकी जुबान से फिसल पड़ा, "एई, इस वक्त तुम हेमेन मजुमदार की जीती-जागती तस्वीर लग रही हो।"

कुछ भी कहने में क्या आता-जाता है ? उसके लिए तो समूचा कलकत्ता शहर ही काव्य बन गया है। इस वक्त ट्राम की घंटी भी बेहद मधुर लग रही है, ट्रैफिक-सिगनल का रंग जरा अधिक चटख लग रहा है।

अरुण के मन के पोर-पोर में सुखद अनुभूतियां जाग उठीं।

टिकलू ने कहा था, "अबे, तुझे कुछ भी नहीं मिलेगा। वह तुझे कुछ भी नहीं देगी। तेरी छाती पर पैर रखकर ताकधिन्ना भरत-नाट्यम नाचेगी।"

इस वक्त अरुण का मन हो रहा था, सारी दुनिया को आवाज देकर बता दे, टिकलू, सुजीत, उर्मि—सबको सुनाते हुए कहे···"देखो, देखो ! हम अभी-अभी देह की वसीयत पर अपने-अपने दस्तखत टांक आए हैं। अभी-अभी मैंने उसके होंठ छुए हैं, उसका धड़कता हुआ वक्ष छुआ है···अब कहीं कोई अविश्वास नहीं, कोई भय नहीं।" वैसे, कभी-

कभी यह आशंका जरूर होती है कि यह सब कहीं खो न जाए।

टिकलू तो बिल्कुल नासमझ है। उसमें किसी की देह की खूबसूरती पहचानने की भी अक्ल नहीं है। दरअसल हममें से किसी में पहचानने की योग्यता नहीं है। किसी के शरीर को सिर्फ शरीर नहीं कहा जा सकता। शरीर का मतलब है, दर्द ! स्वप्न ! और आकांक्षाओं की मुलायम पर्तों में लिपटी हुई रूनू की तरह कोई खास देह-यष्टि।

लेकिन रूनू ने उसे 'गन्दा' 'पाजी' क्यों कहा ? कहीं वह उसे भी टिकलू तो नहीं समझ बैठी ? अच्छा, वह कभी बदल तो नहीं जाएगी ? अरे, नहीं, प्यार-व्यार करने के बाद कोई बदल ही नहीं सकता।...लेकिन, बदल क्यों नहीं सकता है ? अच्छा अयन ने क्या उसे...धत्, शरीर तो नहा लेने भर से शुद्ध हो जाता है। रूनू ने उसे मन भी दिया है। उस मूँछवाले लड़के की तरह दुनिया के और लोग भी बदल जाने के नारे लगाते हैं। अगर यही बात है तो पाँच लड़कों से इश्क जतानेवाली लड़की के बारे में ऊलजलूल क्यों बकते फिरते हैं ? सब कुछ जानने-सुनने के बाद ऐसी किसी लड़की से ब्याह करने को तैयार क्यों नहीं होते ?

असल में यह सब एक भयंकर साजिश है। लड़कियों को बेवकूफ बनाकर उन्हें हथियाने के दाँव-पेंच हैं। लड़कियों के क़रीब आते ही वह उन्हें कसकर चिपटा लेने को बेसब्र हो उठते हैं। स्टुपिड ! स्टुपिड ! ऐसे लोग प्रेम का मतलब ही नहीं समझते।

अरुण कोजीनुक में आकर बैठ गया। पंखे की हवा में अपने कपड़े सुखा लेना जरूरी था। कई दिनों बाद माँ की तबीयत जरा सुधरी है। उसे भीगे हुए कपड़ों में देखकर चीख-पुकार मचाएँगी। वैसे उनमें चीख-पुकार की ताकत ही नहीं रह गयी है, लेकिन बिस्तर पर लेटे-ही-लेटे तेज आवाज में बोलने से बाज नहीं आएँगी। लेकिन माँ खाना बहुत अच्छा बनाती थीं। उनके बीमार होने पर एक रसोइया रखा गया है। उसे तो ढंग का खाना बनाना भी नहीं आता।

"क्यों बे प्रिन्स, क्या हाल-चाल है ?" टिकलू ने हँसकर पूछा, "आज इतने आँसू बहाए कि कपड़े भींग गये ?"

अरुण हँस दिया। कहा, "अबे, बोले जा ! जो चाहे बकवास किए जा ! इस वक्त मैं उड़न तुबड़ी होकर आकाश मे उड़ रहा हूँ, लाल-नीले, रुपहले तारे बिखेर रहा हूँ।" अरुण ने चाय की एक जोर की चुस्की ली, "आऽह।"

सुजीत ने कहा, "ठहर जा साले, आज से ठीक सत्ताइस दिन बाद मेरी भी एकादशी आ रही है !···तब मैं भी तुझे दिखाऊँगा।"

इन दिनो सुजीत को थोड़ी-बहुत उम्मीद बँधने लगी है। विदेश से उसे एक नौकरी का वाउचर मिलने वाला है। बस, उसके बाद सीधे —विदेश। उसने अपनी खुशी दबाते हुए इतना भर कहा, "तब देखना मैं भी अपने लिए एक नहीं···कित्ती-कित्ती रून्नू जुटा सकता हूँ।"

अरुण मन ही मन हँस पड़ा। "हुँह ! प्रेम न हुआ मानो 'पद्मश्री' का खिताब हो गया। अरे, योजना बनाकर पवित्र नहीं हुआ जा सकता, सिर्फ डाका डाला जा सकता है।"

"न बाबा, मैं दिखाने-विखाने के फेर मे नहीं हूँ।" टिकलू ने कहा, "विराम बिचारे का हाल तो देख ही रहा हूँ।"

"क्यो, क्या हुआ ?" अरुण ने पूछा।

टिकलू ने उसे जो कुछ बताया, उसे सुनकर अरुण को बुरा लगा। अहा, बेचारी ! यानी रुपया ही सब कुछ है ? नन्दिनी तो बहुत शरीफ लड़की है। वह कम आमदनी मे भी गृहस्थी चला सकती है। क्या छोटा-मोटा अभाव भी कभी प्रेम का गला घोटकर उसकी हत्या कर सकता है ?

"उनके यहाँ मुहल्ले के कई-एक उठाईगीर लड़के हर वक्त जमे रहते हैं।" टिकलू ने क्षुब्ध आवाज मे कहा।

सुजीत ने ठहाका लगाया, "अबे, यह उनका मामला है, वह लोग समझेंगे। तू क्यों टहलुआ बना फिरता है ?"

अरुण मन-ही-मन हँस दिया। ये ही लोग हैं, जो दावा करते हैं कि मूल्य-बोध या जाने क्या···बदल गया है। अगर यह सचमुच बदल गया है, तो नौकरी के बारे में इतना आशंकित क्यों हैं ? छोटे मौसा ने आश्वासन दिया है, इस महीने के अन्दर-ही-अन्दर उसकी नौकरी पक्की

हो जाएगी। हो सकता है उसे नौकरी मिल भी जाए। लेकिन वह झूठा सर्टिफिकेट हमेशा उसकी गर्दन पर सवार रहेगा। वैसे यह भी जाहिर बात है कि सब बेटा, कहीं-न-कहीं झूठ ओढ़े हुए हैं। फिर भी मन ऐसी चीज है, जो हमेशा शुद्ध-पवित्र रहना चाहता है। अरे, धत्। पार्ट-टाइम दार्शनिक होने से कोई फायदा नहीं। कित्ते सारे लोग जाली सर्टिफिकेट दिखाकर नौकरी जुटा लेते हैं। वैसे असली डिग्री में भी क्या कम मिलावट है ? बहरहाल, अभी उसकी नौकरी का सवाल है। नौकरी मिले तो सही।

अरुण उठ खड़ा हुआ। उसे भीगे कपड़ों में ठंड लग रही थी।

घर की दहलीज पर कदम रखते ही वह सकपका गया। दरवाजे के सामने डॉक्टर की लम्बी-सी कार !

अच्छा, अरुण आखिर क्या करे ? वह क्या चौबीसों घण्टे घरघुसरा बना रहे ? बाहर जाते हुए वह माँ को अच्छी-भली देख गया था। वह धीरे-धीरे बात भी कर रही थीं। इन दिनों बापू ने ऑफिस से छुट्टी ले रखी है। इधर कई दिनों से माँ की जाँच-बाँच के लिए उन्हें लेकर अस्पताल भी गये थे।

डॉक्टर ने साफ-साफ कह दिया कि उन्हें अस्पताल में भर्ती करवाना होगा, लेकिन उसके बापू का जरा भी मन नहीं है।

डॉक्टर के जाने के बाद अरुण माँ के बिल्कुल पास जा खड़ा हुआ।

माँ जाने कैसी सोयी-सोयी-सी लगीं। उनकी आँखें धुंधलायी हुई थीं। मीलू माँ के पास बैठी हुई पंखा झल रही थी। अरुण को देखकर उसने माँ के कानों में फुसफुसाकर कहा, "भइया आ गया। माँ ! भइया आया है।"

माँ शायद ठीक तरह आँखें नहीं खोल पा रही थीं, फिर भी उन्होंने आँखें खोलकर देखने की कोशिश की। उन्होंने बिस्तर पर लेटे-लेटे अपना दाहिना हाथ उठाने की कोशिश की, लेकिन उठा नहीं पायीं। उनकी उँगलियाँ शून्य में ही इधर-उधर कुछ खोजती रहीं।

अरुण माँ के पास बैठ गया। उनका हाथ थामकर पूछा, "माँ, क्या बहुत तकलीफ है ?"

माँ ने सिर उठाना चाहा, लेकिन उठा नहीं पायीं। वह बात भी नहीं कर पा रही थी। सिर्फ उनकी आँखों से झरझराकर आँसू बह निकले।

अरुण का दिल कचोट उठा। तकलीफ और दुःख के मारे उसे खुद भी रुलाई आने लगी। लेकिन वह रोया नहीं। मीलू सोचेगी भइया मर्द होकर भी रो रहा है।

उस दिन अरुण काफी देर तक माँ के पास बैठा, उनका माथा सहलाता रहा। मीलू चाहे जो सोचे, लेकिन माँ जब ठीक हो जाएँगी तो उन्हें सुना-सुनाकर वह उसकी हंसी उड़ाएगी।

लेकिन इस तरह आखिर कितनी देर तक बैठा जा सकता है? मीलू उसी तरह बैठी-बैठी मशीन की तरह पंखा डुलाए जा रही थी। वह थकी हुई भी नहीं लग रही थी। लड़कियाँ यह सब बड़े मजे में कर लेती हैं।

"अरुण—।"

अरुण ने चैन की साँस ली। वह बापू की आवाज सुनकर उठ आया और धीरे से उनके पास आ खड़ा हुआ।

"ना! कुछ नहीं, यूँ ही बुला लिया।" बापू ने एक लम्बी उसाँस लेकर कहा।

अरुण अपने कमरे में चला आया। उसे जोरों की भूख लग आयी थी। लेकिन ऐसी हालत में खाने की फर्माइश नहीं की जा सकती। बापू और मीलू आखिर क्या सोचेंगे? माँ को इतनी तकलीफ है, उसे भी थोड़ी-सी तकलीफ बर्दाश्त करनी चाहिए। हुँह: दिदिया बड़े-बड़े लेक्चर झाड़ा करती थी, उपदेश देती थी। क्यों? अब आते नहीं बना? अब आए न सेवा करने के लिए। मीलू तो खैर, बिल्कुल बच्ची है।

"अरुण, देख, वह तेरी भी तो माँ है। तू ही जरा जोर-जबर्दस्ती करके देख न, डॉक्टर जब ऑपरेशन ही एकमात्र इलाज बताता है, तो क्यों न···" छोटी मौसी ने उससे उस दिन कहा था, जिस दिन बापू माँ को पी० जी० में दिखाने ले गये थे।

अभी हो

लेकिन उस दिन के बाद से कोई कुछ नहीं बोला।

"जीजा जी, उन्हें आखिर बीमारी क्या है? डॉक्टर ने कुछ बताया?" छोटी मौसी ने पूछा।

बापू ने सिर हिलाकर 'ना' कहा और एक लम्बी-सी उसाँस ली।

"अच्छा, बापू कुछ करते क्यों नहीं?" अरुण ने रात को मीलू से कहा।

मीलू का चेहरा भी तमतमा आया। उसने भी आहिस्ते से उसका समर्थन करते हुए कहा, "हाँ इन दिनों बापू जाने कैसे अजीब होते जा रहे हैं। इस समय अगर दिदिया होतीं तो शायद कुछ समझातीं बुझातीं।"

हुँह! इस समय अगर दिदिया होती···वह सिर्फ सलाह देना ही जानती है। यहाँ से जाकर अपनी घर-गृहस्थी में रम गयी होगी।

मिलू ने उसे एक खत भी डाला था, लेकिन उसके आने का तो कोई आसार नहीं दिख रहा है, उल्टे एक काम और बढ़ गया। हफ्ते-हफ्ते उसे माँ की तबीयत की रिपोर्ट भेजते रहो।

ऐसे में अरुण की कहीं नौकरी लग जाती तो रुपये-पैसों की जरा सहूलियत हो जाती।

आजकल उसने खाने के बारे में कहना-सुनना छोड़ दिया है। मछली का टुकड़ा दिन पर दिन इतना छोटा होता जा रहा है···उसे तो यह भी नहीं मालूम कि सोना-माँ पैसा मारती है या बापू ने ही घर-खर्च में कटौती की है। माँ की बीमारी में कम रुपया खर्च हो रहा है! बापू शायद इतना सारा खर्च सम्भाल नहीं पा रहे हैं। इस वक्त अरुण के लिए बेहद जरूरी है कि वह भी कुछ कमाकर लाए और गृहस्थी में हाथ बँटाए। उसे नौकरी में लगा देखकर शायद छोटी मौसी के दिल में भी उसके लिए थोड़ी बहुत इज्जत होती। बड़के मामा तो उसको देखते ही हँस देते हैं मानो वह गुड-फॉर-नथिंग है···बिल्कुल निकम्मा लड़का!

कभी-कभी अरुण को भी यही बात सच लगती है।

उसने जब तक परीक्षा नहीं दी थी, उसके मन में किसी तरह की चिन्ता-फिक्र नहीं थी। वह भी भीड़ में धक्का-मुक्की करके खेल देखने

जाता था। लाइन में खड़े होकर सिनेमा का टिकट खरीदता था। राजनीतिक बहसों में हिस्सा लेता था। हाँ, उस समय तक उसमें इतनी हिम्मत थी कि वह दुनिया वालों को अँगूठा दिखा सके।

लेकिन रातों-रात अचानक जाने क्या हुआ, वह, टिकलू, सुजीत सब जैसे अपनी सारी ताकत ही खो बैठे हों। जैसे वह सब कभी, कुछ भी नहीं थे। भविष्य में भी उन लोगों से कुछ नहीं होगा। उन्हें कुछ करने का हक भी नहीं है। अब तो कहीं-किसी अच्छी नौकरी का विज्ञापन देखते भी हैं तो दूसरों को बताने का मन नहीं करता।

उस दिन ब्रिटिश-काउन्सिल लाइब्रेरी से बाहर आते हुए सुजीत अचानक ही अरुण से टकरा गया। कहा, "एक किताब लौटाने आया था, यार।"

अरुण जानता था, वह झूठ बोल रहा है। दरअसल वह नौकरी के वाउचर के लिए बुरी तरह कोशिश कर रहा है। इस वक्त भी वह ऐसी ही किसी नौकरी का फॉर्म लेने आया था। सचमुच, अगर उसे कोई नौकरी मिल जाए, तो वह विलायत क्यों न जाए? लेकिन सुजीत को तो यह डर है कि इस नौकरी के लिए कहीं अरुण भी एप्लाई न कर दे। अभी कुछ दिनों पहले तक उसने अरुण से लम्बी-चौड़ी बौद्धिक बहसें की हैं। खैर, चलो, इसी बहाने सही, सुजीत जैसे लड़कों की बुद्धि को विलायत पार्सल कर दिया जाए, तो बेहतर है। अच्छा है, उस देश को डुबाया जा सके तो···!

"देख, टिकलू अब तक हम लोग सिर्फ स्टूडेण्ट थे, हम लोग सोचा करते थे कि हम इस धरती को सन्तरे की तरह उछाल सकते हैं···।" अरुण ने कहा।

···लेकिन, अब उसे अपने पर ही हँसी आती है। अब वह खुद ही महसूस करता है कि जब वह अपने कॉलेज के साथियों के साथ इकट्ठा होता था···उनके इकट्ठे होते ही सरकार थर्राने लगती थी, चारों ओर आग जल उठती थी, पुलिस भी सहम जाती थी। लेकिन···अब उनकी कोई परवाह ही नहीं करता। अगर उनमें दो पैसा कमाने का दम नहीं है तो उन लोगों की कोई कीमत नहीं है। ऐसे में उन्हें न घर में

इज्जत मिलती है, न बाहर ! जब तक वह कॉलेज जाता था, माँ से ही एक-दो रुपये माँगकर काम चलाता था। नाश्ते के पैसों से सिगरेट फूंकता था। लेकिन अब मीलू को आगे करके, बापू से रुपये माँगने पड़ते हैं।

"सच मान सुजीत, किसी-किसी दिन मेरा मन होता है कि कोई बहुत बड़ा-सा काम कर डालूं। जी होता है लोग जहाँ झूठमूठ की शान दिखाते हैं, उन सबको गणित के अक्षरों की तरह मिटा डालूं। जी होता है, जहाँ जितना अन्याय है उसे बुहारकर बिल्कुल जड़ से साफ कर दूं।"

उसकी बात पर सुजीत हँस पड़ा, "देखता हूँ, तेरे बदन से कॉलेज की गन्ध अभी गयी नहीं। अबे, वह सब छोड़ और अपना फिउचर यानी भविष्य बनाने में लग जा, समझा ? सब लोग अच्छी-अच्छी नौकरियाँ करें और मैं देश-सेवा करता रहूँ, माँ कसम, यह मेरी जन्म-पत्री में नहीं लिखा है।"

"येस, तू ठीक कहता है।" टिकलू ने आवाज कसी, "लेकिन, भाई, अपना अरुण तो प्यार के सागर में गोते लगा रहा है न, वह तो महान् होने के सपने देखेगा ही। मुझे देख, मैं इन सारे लीडरों को पहचान गया हूँ।"

अरुण ने उन लोगों के सामने बात नहीं बढ़ायी। टिकलू ने शायद सच ही कहा था। प्रेम में दीवाना होकर ही वह चाहता है कि दुनिया भर के गोरखधन्धे मिटा दे, समूची धरती को बदल देना चाहता है।···नहीं, सब बकवास है। इतने दिनों सब यही सोच रहे थे कि वह समूची दुनिया को बदलकर ही दम लेगा, लेकिन अब वह जान गया है, दुनिया को बदलना असम्भव है। अतः अब वह अपने को ही बदल डालना चाहता है। रून् या छोटे-मोटे दूसरे सुख—ये सब चाहने का मतलब ही है अपने को बदल डालो। इस अनमेल दुनिया में खपने को फिर से समझौता कर लेना।

रून् से व्याह करने के बारे में अभी तक उसने कुछ नहीं सोचा। अभी तो वह उसे सिर्फ प्यार करता है। अगर कभी सचमुच ही उसे

ब्याह लाने का मन होगा, तो किसी तरह की बाधा-विरोध नहीं मानेगा। बापू-माँ, दिदिया सबको फूंक मारकर उड़ा देगा।

अचानक उसे माँ का ख्याल आ गया। छिः छिः उसे अपनी जिम्मेदारियों का जरा भी ख्याल नहीं है।

धत्तेरे की! ठीक है···कल से वह रूनू से नहीं मिलेगा। उसके बारे में सोचेगा भी नहीं। रूनू को देखते ही वह अपनी सारी जिम्मेदारियाँ भूल जाता है। कितनी अजीब बात है···रूनू जितनी देर तक उसके पास थी, वह उसी के बारे में सोचता रहा। माँ का उसे एक बार भी ख्याल नहीं आया। रूनू ने कभी उसका दुःख समझने की कोशिश नहीं की, इस बात से वह बुरी तरह आहत हो उठा। इस वक्त भी उसे माँ की बीमारी की बात याद नहीं रही, इसके लिए कौन जिम्मेदार है?

अचानक कोई बात याद करके वह चौंक उठा। गजब हो गया। सुजीत ने खबर दी थी कि उर्मि ने आज उसे फोन करने को कहा था। उसे कोई बहुत जरूरी काम है। सुजीत के साथ बातें करते हुए यह बात वह बिल्कुल भूल ही गया था।

जब से टिकलू ने एस० के० एम० के साथ उसके घूमने-फिरने की बात बतायी थी, तभी से उसके मन में उर्मि के खिलाफ अभिमान हो आया था। अरुण ने चाहा था, उर्मि सचमुच बिजली की तरह पवित्र और विशुद्ध रहे। उसने चाहा था कि वह सिर्फ अपने माइनिंग इंजीनियर को प्यार करे, एक दिन उसी से ब्याह करके सुखी हो। अगर वह भटक गयी या किसी ने उसे आवारा लड़की कह दिया, तो जैसे उसी की इज्जत में बट्टा लग जाएगा।

"अरुण!" बापू ने आवाज लगायी। वे बरामदे में आरामकुर्सी पर लेटे-लेटे विदेशी पत्रिकाएँ उलटते-पुलटते हुए नई-नई दवाओं के बारे में पढ़ रहे थे।

इन दिनों बापू को भी जैसे बीमारी लग गयी है। माँ की बीमारी कौन-सी है, अभी तो यही समझ में नहीं आया है। डाक्टर बता रहा था कि दिमाग की कोई बीमारी है। ऑपरेशन करना होगा। इधर बापू

हैं कि देश-विदेशों की पैम्फलेट-पत्रिकाएँ ला-लाकर घर भर रहे हैं।

बापू की पुकार सुनकर अरुण चुपचाप उनके सामने आकर खड़ा हो गया।

बापू ने एक बार निगाह उठाकर उसकी तरफ देखा, फिर नजरें नीची कर लीं। कहा, "नहीं, अब रहने ही दे।...जा, तू सो जा! काफी रात हो चुकी है।"

टिकलू ने निश्चित रूप से गुनाह किया है। वह सौ बार स्वीकार करता है कि उससे भूल हो गयी है। और कोई उपाय भी तो नहीं था। लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं कि उसका कोई मान-सम्मान ही नहीं है। उसके बापू जरा ठंडे दिमाग से भी तो बात कर सकते थे? उसके पास होने की खबर पाकर माँ थोड़ा-सा खुश भी तो हो सकती थी?

यह करने के बजाय उसके घर पहुँचते ही दोनों प्राणियों ने बेकार की चीख-पुकार मचा दी। बापू, भाई-बहनों के सामने ही गाली-गलौज पर उतर आए। हुँह: उसके ये भाई-बहन तो उससे बदतर निकलेंगे। सब यही सोचेंगे कि जब उसका बड़ा भाई ही ऐसा है, तो वह सब शरीफ होकर क्या करेंगे?

टिकलू को अपने बचपन की याद आने लगी। बापू की कोई इज्जत नहीं करता है। मुहल्ले में उनका कोई रौब-दाब भी नहीं है। सब उनसे कतराते हैं। यही सब देखकर उसने पढ़ने-लिखने की तरफ ध्यान लगाया था। उन दिनों अरुण और सुजीत भी उसे हेय दृष्टि से नहीं देखते थे, वरना उनसे दोस्ती ही सम्भव नहीं थी। उस दिन सुजीत उसके बापू को लेकर अपने एक साथी के सामने खिल्लियाँ उड़ा रहा था अचानक वह जा पड़ा। उसके बाद काफी दिनों तक वह सुजीत से नाराज रहा था।

क्लास में भी लड़के मौका पाते ही अपने-अपने बाप का रौब दिखाते थे। किसका बाप, कितना विद्वान है। कौन कितनी बड़ी

ोकरी करता है। और कुछ नहीं तो इसी बात की धौंस जमाते थे कि
ल्लाँ मिनिस्टर उनके डैडी के मौसा की मँझली साली का देवर लगता
। लेकिन टिकलू के पास रौब जमाने को कुछ भी नहीं है। अतः वह
से मौकों पर खामोश रहता था लेकिन मन ही मन जल-भुन जाता
ा। वह लड़कों के बोली-फिकरों का सारा आक्रोश सीधे अपने बापू
र उतारता है। कभी-कभी तो उसे यह लगता है कि पढ़-लिखकर,
म्तहान में पास होने से क्या फायदा? डिग्री तो रबड़ की तरह है,
द से हद पेंसिल के निशान मिटा सकती है, लेकिन माथे के बदनुमा
ग़ों को कैसे मिटाएगी?

यह भी सच है कि वह शहेबाज शोहदों की तरह फिकरे कसता है,
सिरफिरे लड़कों से दोस्ती रखता है। लेकिन अरुण यह नहीं जानता
कि वह भी एक तरह की स्नॉबरी है। पालिश लगा-लगाकर चमकाए
जानेवाली शराफ़त को मुँह चिढ़ाने का यह भी एक तरीका है। दरअसल
वह चोंगा पैण्ट पहनने वाले उन शोहदे लड़कों से नफरत करता है।
जिनके पास बताने लायक अपना कोई परिचय है, उनके पास अगर
डिग्री न हो तो उन्हें मुँह नहीं चिढ़ाया जा सकता, हद से हद उनके
प्रति नाराजगी व्यक्त की जा सकती है।

टिकलू ने सोचा अगर उसे कहीं सेल्समैन की भी नौकरी मिल जाए
तो वह फौरन कर लेगा। उसने इसके लिए चोरी-छुपे हाथ-पाँव भी
मारे हैं, काफी कोशिशें भी की हैं, लेकिन अरुण या सुजीत से इस बारे
में कुछ नहीं बताया। कलकत्ते में उसके लिए रखा ही क्या है? न
होगा, वह होटल-होटल घूमता रहेगा। उसका घर भी तो एक होटल
ही है।

उसका यह कतई इरादा नहीं था कि वह बापू के सारे रुपये मार
दे। लेकिन यह करता भी क्या? नन्दिनी अचानक कुछ रुपए उधार
माँग बैठी। जेब में रुपए रहते किसी से मना किया जा सकता है?
इसके अलावा वह नन्दिनी को पसन्द भी करता है। सुधा ने उसे जितनी
उपेक्षा दी है, उसका मन नन्दिनी की तरफ दौड़ जाने को उतना ही
उतावला हो उठा है।

असल में टिकलू अपने इस घर से, अपने अतीत से छुटकारा पाना चाहता है। लेकिन इन सबसे छूटकर वह जाना कहाँ चाहता है, वह खुद भी नहीं जानता।

बहरहाल इस वक्त वह नन्दिनी के यहाँ जाने को तैयार होने लगा। अभी वह कपड़े पहनकर तैयार ही हुआ था कि माँ ने आकर कहा, "अरे वाह! हाँ भाई, ऑफिस बाबू जो ठहरा! फिट-फाट होकर बाहर जाने की तैयारी है।" उनके व्यंग्यात्मक लहजे ने अचानक धमकी का रूप ले लिया। "बाहर जा रहा है तो रुपए तो देता जा!"

टिकलू ने लापरवाही से कहा, "कहीं से रुपया मिलते ही चुका दूँगा। तुम लोगों का एक पैसा भी उधार नहीं रखूंगा।" फिर जरा ठहरकर कहा, "लेकिन, अभी इस वक्त मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है!"

"नहीं है?" माँ की आवाज में निराशा झलक उठी, "नहीं है, इसका क्या मतलब? घर का काम-काज कैसे चलेगा? तेरे बापू तो इन्हीं रुपयों के आसरे बैठे थे।"

"नहीं के मतलब नहीं हैं।" टिकलू ने एक-एक शब्द पर जोर देते हुए कहा और मोजा ढूंढ़ने लगा। काफी ढूंढ़ने के बाद एक पैर का मोजा मिला लेकिन दूसरे पैर का जाने कहाँ गुम गया था। रोज-रोज एक ही झमेला। घर भर में भाई-बहनों की भीड़। किसी ने यह खींच लिया, किसी ने वह फेंक दिया। हुँह! उसकी खीझ का कहीं कोई अन्त है! कभी मोजा नही मिलता, तो कभी बनियान। कभी गमछा गायब है। उस पर से, बापू एक दिन उसी के गमछे में मछली ले आए। उस दिन से गमछा ऐसा गन्धाने लगा कि साबुन घिसने के बाद भी साफ नहीं हुआ।

वह मोजा ढूंढ़ता हुआ झुंझला उठा। अपने मन ही मन में बुदबुदाता रहा, "साला, यह घर है या भटियारखाना?"

सचमुच भटियारखाना ही लगता है। तमाम कमरे और बरामदे में ढेर सारे भींगे कपड़े सूखते रहते हैं—साड़ी, धोती, जांघिया, कमीज वगैरह-वगैरह। आते-जाते दूर-दूर तक लहराती हुई भीगी साड़ी का

पल्ला उसके माथे से छू जाता था।

शुक्र है किसी तरह मोजा मिला तो सही। अब रह गयी जूता-पॉलिश। कभी-कभी टिकलू भी अपने को बिल्कुल बादशाह महसूस करने लगता है।

होंठों में सिगरेट दबाकर जब वह पॉलिश करवाने के लिए अपना पैर स्टैंड पर रखकर खड़ा होता है और पॉलिशवाला फटा-फट जूता चमकाने लगता है, तो उसे बहुत अच्छा लगता है।

टिकलू ने बाहर आकर जेब टटोली। जेब में अभी भी तीन रुपए पड़े थे। माँ के सामने क्या मजे से झूठ बोल गया, "रुपया नहीं है।"

वह पल भर को सोचता रहा, सुधा लोगों के यहाँ जाये या नहीं। लेकिन इस तरह रोज-रोज जायेगा तो उसके घर के लोग क्या सोचेंगे! वहाँ जाए भी तो सुधा से अकेले में मिल नहीं पाएगा। अगर वह अकेली मिल भी गयी तो किसी के साथ गप्प लगाने बैठ जाएगी। हुँहः मानो दूध-पीती बच्ची हो। किसी-किसी दिन उस पर इतना गुस्सा आता है न! एक दिन उसने गुस्से में आकर सुना भी दिया था, "तुम्हारा दिमाग ठिकाने लगानेवाला हथियार मेरे पास है, किसी दिन दिखाऊँगा···"

सुधा सचमुच डर गयी। उसके आगे चोंचले दिखा-दिखा कर, उसका गुस्सा शान्त करने की कोशिश की थी। उस दिन उसे थोड़ी लिफ्ट भी दी थी।

लेकिन उस दिन खुद टिकलू को भी यह बात बहुत बुरी लगी थी। यह तो सरासर ब्लैक-मेलिंग है। ऐसे डरा-धमकाकर किसी से प्यार मिल सकता है? उसने अपने मन को ही धिक्कारा था, तू कुछ नहीं समझता टिकलू, तुझमें जरा भी अक्ल नहीं है। हुँहः, जितना कुछ समझता है, वह अरुण का बच्चा ही समझता है! अगर सचमुच वह प्यार का मतलब नहीं समझता तो उस दिन सुधा का बर्ताव देखकर उसे ऐसा क्यों महसूस होता कि किसी ने उसकी देह भर में पिसा हुआ मिर्चा रगड़ दिया है। लेकिन सुधा से वह कभी प्रतिशोध नहीं लेगा। अलबत्ता वह कभी, किसी भयंकर मुसीबत में होगी, तो वह उसकी

मदद कर देगा। उस दिन शायद वह भी समझ सके कि उसका भी शरीर रक्त-मांस से बना हुआ है, वह भी प्यार करना जानता है। तीन साल पहले की तो बात है, एक दिन कई दोस्तों ने मिलकर दस रुपये देकर एक लड़की को सड़क से उठाकर अपनी टैक्सी में बिठा लिया था और खूब हो-हुल्लड़ मचाया, जी भर के आवारागर्दी की, लेकिन उस लड़की को छूकर देखने की तबीयत नहीं हुई थी। सेक्स ! सेक्स ! उसे यह शब्द गाली जैसा घिनौना लगा था। उन दिनों उसे यह नहीं मालूम था कि यह भी एक तरह का प्यार होता है। किसी शरीर के प्रति आकर्षण ! ये दुनियावाले भी अजीब हैं—वीनस की मूर्ति अगर कहीं जी उठे तो लोग उसे भी अश्लील समझने लगें। हुँहः, तब तो यह दिल···दिल के अन्दर धड़कती हुई यह सांस तक बेहद अश्लील है।

उर्मि उसे बात-बात में असभ्य कहती है। हालांकि यह सब लड़कियों के कहने की एक स्टाइल भर होती है। हो सकता है वह लड़की बिल्कुल सरल और मासूम हो। वह लड़का ही उसे बहका-फुसलाकर गंगा-घार ले जाता हो कि चलो, चलो, तुम्हें जहाज दिखाऊँगा ! 'जहाज दिखाना'—उसके इस मुहावरे पर भी आपत्ति उठायी गयी थी। अरे भाई, इस वाक्य में अगर किसी को कोई और अर्थ नजर आए तो यह देखनेवाले का दोष है। सीधी-सादी बातों का अगर सीधा-सादा ही अर्थ लिया जाए तो कहीं कोई झंझट नहीं होता।

उर्मि ने हँसते-हँसते पूछा, "उस दिन क्या तू भी वहीं था टिकलू ? तूने मुझे आवाज क्यों नहीं दी ? उस दिन मैं न्यू मार्केट गयी तो राह में एस० के० एम० से मुलाकात हो गयी। उन्होंने कहा कि वह मुझे घर छोड़ देंगे।" बस ! अरुण को उसकी बातों पर यकीन आ गया। उसने उसके प्रति किसी तरह का अविश्वास नहीं दिखाया। धत्तेरे की !

लेकिन उसे लड़कियों पर जरा भी विश्वास नहीं है। टिकलू सोचता रहा—विराम को भी नन्दिनी पर शायद बहुत भरोसा है और नन्दिनी ? नहीं, नन्दिनी अब यह अच्छी तरह समझ चुकी है कि वह

बार-बार उनके यहाँ क्यों आ धमकता है। टिकलू ने भी मौके-बेमौके अपनी बात समझाने की कोशिश की है।

सामने से अपनी टूटी हुई कमर लचकाती हुई और बेसुरी आवाज में घंटी बजाती हुई एक ट्राम आ रही थी। टिकलू उछलकर चढ़ गया।

दरवाजा खटखटाते ही गैरेज की ऊपर वाली खिड़की का पर्दा सरक गया।

विराम ने कहा, "रुक जा! आ रही है।"

आज टिकलू जान-बूझकर सुबह-सुबह आया था। नन्दिनी के पास आना, बातें करना, उसे अच्छा लगता है। बस, इसके अलावा और क्या? उसने अपने भीतर के असली लोभ को दबा लिया। वह जानता है, उसकी देह को हाथ लगाने का कोई उपाय नहीं है।

नन्दिनी ने ऊपर से आकर दरवाजा खोल दिया। उसका मुँह तमतमाया हुआ था। टिकलू को देखकर उसके होंठों पर हमेशा की तरह मुस्कान नहीं खिली। टिकलू को यह बात आसानी से समझ में आ गयी कि अभी-अभी वह और विराम बुरी तरह झगड़ रहे थे। खैर···आजकल तो उन दोनों में प्रायः ठन जाती है। असल में नन्दिनी शायद यह महसूस करने लगी है कि उसने बहुत बड़ी गलती की है या शायद विराम ही नन्दिनी पर अधिक झुंझलाने लगा है। हो सकता है कि उसे लग रहा हो कि सारी गलती नन्दिनी की ही है। अरे बाबा, प्रेम ही सब कुछ नहीं होता है। उस वक्त तो उन्हें इतनी सारी जिम्मेदारियों, अभावों, खींच-तान और झूठ-झमेलों का ख्याल भी नहीं आया होगा। इन सबके लिए अपने को तैयार करने का उन्हें वक्त भी तो नहीं मिला। हो सकता है, विराम अपने भाई-भाभी, बाप-माँ को छोड़ कर पछता रहा हो लेकिन नन्दिनी के आगे यह बात साफ-साफ स्वीकार नहीं कर पा रहा है।

अभी उसी दिन नन्दिनी ने शिकायत की, "वह तो घर की कोई खोज-खबर नहीं रखते। यह गृहस्थी मैं कैसे चला रही हूँ, यह मैं ही जानती हूँ।"

टिकलू को विराम पर गुस्सा आने लगा। उस समय विराम ऑफिस के लिए तैयार हो रहा था। समूचे कमरे में भात के दाने विखरे हुए थे। लड़ाई-झगड़े में उसने थाली फेंककर मारी होगी।

टिकलू के कमरे में आते ही विराम उठ खड़ा हुआ, "मैं चलता हूँ रे, वरना मुझे ऑफिस के लिए देर हो जाएगी।" उसने गट्-गट् एक गिलास पानी पिया और वाहर निकल गया।

उसके जाने के काफी देर वाद नन्दिनी चेहरा लटकाये हुए कमरे में आयी और छितराया हुआ भात समेट कर थाली में डाल, लिया और वायें हाथ से उस जगह को साफ करके वाहर निकल गयी।

टिकलू ने एक वार अपनी घड़ी की तरफ निगाह डाली और विछौने पर वैठ गया। उसके वाद भी कई वार उसकी निगाह घड़ी पर जाकर अटक गयी। करीव आधा घंटा वाद नन्दिनी एक प्याली चाय लिये हुए कमरे में आयी।

उसका चेहरा विल्कुल ब्लैंक था।

टिकलू की तरफ चाय वढ़ाते हुए उसने मरी-सी आवाज में कहा, "आज विना खाये ही चले गये।" उसकी आवाज रुआँसी हो आयी, "देख रहे हैं न, विना कुछ खाये-पिये ही चले गये!"

टिकलू ने कोई जवाव नहीं दिया। चाय की दो-एक चुस्की लेकर उसने नन्दिनी की तरफ देखा। नन्दिनी दीवार से लगी हुई चुपचाप खड़ी थी। उसका चेहरा नीचे की ओर झुका हुआ था। उसकी डव-डवायी हुई आँखों की तरफ देखते हुए टिकलू को वेचैनी होने लगी। एक अनजाना निश्छल दर्द और लोभ उसके दिल की अतल गहराइयों से उमड़ कर जुवान पर ठहर गया।

"भइया वुलाने आए थे, लेकिन इन्होंने मुझे नहीं जाने दिया।" उसने रुआँसी आवाज़ में कहा।

टिकलू चुपचाप उसकी वातें सुनता रहा, फिर अपने चेहरे पर एक मुस्कान लाते हुए कहा, "आप वैठिए तो सही! ऐसे कितनी देर खड़ी रहेंगी?"

नन्दिनी धीरे से टिकलू के पास आकर वैठ गयी। इससे पहले,

वह उसके इतने पास कभी नहीं बैठी थी। उस दिन जब बाथरूम से निकलते हुए टिकलू की देह से टकरा गयी थी तो टिकलू के समूचे तन-बदन में अचानक ही जाने क्या-क्या होने लगा था।

आज भी उसके तन-बदन में वैसी ही झुरझुरी दौड़ गयी। नन्दिनी को सुधा बना देने का मन हो आया।

उसने नन्दिनी की हथेलियाँ अपनी मुट्ठी में कस लीं। और अस्पष्ट स्वर में तसल्ली देने ही वाला था कि नन्दिनी फफककर रो पड़ी और उसकी गोद में मुँह छुपा लिया।

टिकलू ने नन्दिनी की पीठ पर हाथ रखकर कहा, "न हो, आप लौट जाइए! अपने भइया के पास ही वापस लौट जायें।"

नन्दिनी की देह के प्रति उसका लोभ। नन्दिनी की असह्य यन्त्रणा! कहीं वह उससे दुबारा कुछ रुपया न माँग बैठे—टिकलू के मन में एक साथ तमाम आशंकाएँ जाग उठीं।

काफी देर बाद नन्दिनी ने सिर उठाया। उसके आँसू-धुले चेहरे और पलकों पर लजायी-सी हँसी नाच उठी, "देखिए न, इस वक्त मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है। मैं कैसे क्या करूँ, यह सब जैसे वह समझना ही नहीं चाहते हैं।"

टिकलू का मन हो रहा था कि पल-भर के लिए ही सही, वह उसे सुधा मान ले।

नन्दिनी ने सिर झुकाकर धीमी आवाज में कहा, "आप से भी कहाँ तक माँगूँ? आपने हम लोगों के लिए अपने भरसक बहुत किया है।" फिर झुकी हुई पलकों को और झुकाते हुए उसने लम्बी उसाँस भरकर कहा, "इस वक्त कम-से-कम बीस रुपये···।"

"मेरे पास रुपये नहीं हैं, नन्दिनी, बिल्कुल नहीं हैं!" टिकलू ने उसकी बात काटते हुए कहा।

उसका तन-मन बुरी तरह कड़ुआ उठा। रुपयों का जिक्र आते ही उसे बापू की गालियाँ, माँ के ताने याद आने लगे और वह बुरी तरह झुंझला उठा। कहा, "मैंने कहा न, रुपये नहीं हैं। सचमुच, मेरे पास रुपये नहीं हैं।"

उस वक्त भी उसकी जेब में दस-दस के तीन नोट पड़े थे।

नन्दिनी ने अपना चेहरा उठाकर एक बार टिकलू की तरफ देखा।

लेकिन टिकलू उससे आंख नहीं मिला पाया।

नन्दिनी क्या उसे बेवकूफ समझती है? हर रोज रुपयों की माँग। ब्याह के दिन से ही जो सिलसिला शुरू हुआ, वह क्या सिर्फ देता ही जाएगा? नन्दिनी के लिए उसने क्या नहीं किया? लेकिन नन्दिनी समझती है कि वह उसकी तरफ देखते हुए जरा-सा हंस देगी और वह सन्तुष्ट हो जायेगा—हुँहः!

नन्दिनी ने दुबारा सिर नहीं उठाया। उसी तरह सिर नीचा किये हुए उसने अस्फुट स्वर में कहा, "रुपये मैं यूं ही नहीं मांग रही थी।" अचानक वह फफककर रो पड़ी, "मैं जीना चाहती हूँ, टिकलू दा! मैं जिन्दा रहना चाहती हूँ।" फिर जरा ठहरकर कहा, "नहीं, मैं रुपये मुफ्त नहीं मांग रही हूँ। आप दोपहर को आइएगा।" यह कहते हुए वह शायद शर्म से मुँह छुपाकर भाग खड़ी हुई।

"नन्दिनी! नन्दिनी!" टिकलू उसे पुकारता रह गया।

टिकलू के बुलाने पर भी नन्दिनी दुबारा उसके सामने नहीं आयी शायद उसे शर्म आ रही थी।

टिकलू ने खुद ही उसे ढूंढ़ निकाला। नन्दिनी उस समय दीवार की तरफ मुँह छुपाये खड़ी थी। उसके गोरे-गोरे कान और उसके आस-पास की जगहों में जैसे खून जम गया हो। जा बाब्बा शर्म से कान लाल हो उठने की बात उसने किताबों में ही पढ़ी थी सचमुच, क्या कान यूँ लाल हो उठते हैं?

टिकलू ने जेब से दस-दस के दो नोट निकालकर उसकी तरफ बढ़ा दिये, "लीजिए, ये रख लीजिए।"

इसके बावजूद नन्दिनी ने पलटकर नहीं देखा।

टिकलू ने नन्दिनी का हाथ नहीं छुआ। दीवार के आले में रखकर कहा, "यहां रख दिया है।"

वह बरामदे से होता हुआ दरवाजा खोलकर बाहर निकल आ उसकी सारी देह कांप रही थी। दिमाग जैसे बिल्कुल सुन्न हो

हो। वह जाने कैसी बेहोशी की-सी स्थिति महसूस कर रहा था। ट्राम-लाइन की तरफ जाते-जाते उसका मन हुआ, वह चीखकर कहे, "सा···ले, टिकलू, तुझे मान गया! वाकई, तू ग्रेट है, साले।"

टिकलू जैसे अपने-आप से ही बातें करता रहा। उसे आज तक किसी ने नहीं समझा! कोई उसे समझ नहीं पाया। नन्दिनी को देखकर उसके मन में लोभ जाग उठता है। अरुण भी उससे नफरत करता है···लेकिन वह उन सबसे ढेर-ढेर अच्छा है। वह सचमुच सच्चा है! शरीफ है!

दरअसल उसको अपने पर ही भरोसा नही है। अब वह नन्दिनी के पास कभी नहीं जायेगा—कभी भी नहीं! उसका कोई विश्वास नहीं।

"प्यार के बारे में तू कुछ नहीं समझता, टिकलू! कुछ भी नहीं जानता।" अरुण ने कहा था। दरअसल अरुण ही कुछ नही समझता। टिकलू ने किसी का शरीर नही चाहा था। उसने तो महज इतना भर चाहा था कि किसी की देह की गर्माहट, हल्का-सा प्यार और सहलाव महसूस कर सके।

सामने की सड़क बिलकुल सूनी थी। चारों तरफ वीरान निर्जनता! टिकलू राह चलते हुए अचानक अपने-आप ही ज़ोर-ज़ोर से बड़बड़ा उठा, "मेरे भीतर भी इन्सानियत है रे, अरुण! मैं सच्चा हूँ! तुम सबसे कहीं अधिक सच्चा!"

पिछली बार जब कॉलिज में अचानक ही कोहराम मच गया, ट्राम-बसें जलायी जाने लगीं, तो उसने उर्मि से कहा था, "जानती है उर्मि, मैं अड्डा देता हूँ या चाहे जो करता हूँ, लेकिन मेरे भीतर भी बारूद छुपा हुआ है, लेकिन किसी साले ने आग लगाने की कोशिश नही की।"

अचानक उसे अपनी ही कही हुई बातें दुबारा याद आने लगीं।

,

अरुण के सिर पर इन दिनों दूसरी परेशानी सवार हो गयी।

इधर कुछ दिनों से वह मानो पंखों के बिछावन पर, गुलाब की

पांखुरियों की चादर ओढ़ हुए प्यारी-सी नींद में खोया हुआ, सपने देख रहा था। उसे लगा, उससे बेहतर सुखी कोई नहीं है।

…जब वह सिर्फ सतरह साल का था, नीमा नानक एक पीले-से बीमार चेहरे वाली लड़की से प्यार जता बैठा था। उस लड़की ने अपनी सहेलियों से उसकी इस कमजोरी के किस्से सुना-सुनाकर उसका मजाक उड़ाया था। अरुण का मन होता है वह रूनू को लेकर घूमे-फिरे, हँसी-दिल्लगी करे और सबके सामने ही उसे मुग्ध आँखों से निहारता रहे और नीमा अपनी मरियल और बुझी हुई आँखों से उन्हें ताकती रहे। सचमुच, मजा रहेगा। अब तक नीमा उसे भूल ही गयी होगी। अब उससे अगर कहीं अचानक मुलाकात हो जाये, तो कौन जाने उसे पहचान भी पायेगी या नहीं। ये लड़कियाँ इतनी जल्दी बदल जाती हैं कि उन्हें पहचानना भी मुश्किल है। खैर, लड़कियों को शायद कभी किसी स्थिति में पहचान पाना असम्भव है।

वैसे अरुण को इस तरह की कोई आशंका नहीं है। अनजाने में ही रूनू पर विश्वास-सा होने लगा है। रूनू तो उसे सचमुच प्यार करती है, फिर उसके खो जाने की आशंका क्यों हो? इतने दिनों तक उसे डर था, अतः उसे सुजीत और टिकलू से बचाता रहा। उसे जब फोन करने की जरूरत होती है, तो वह टिकलू के ऑफिस से फोन करता है, अतः उससे तो बचाया नहीं जा सकता। एक दफा तो जब वह रूनू से मिलने गया था, तो सुजीत और टिकलू भी साथ हो लिये थे।

उसका ख्याल था कि उन्हें देखकर रूनू की भौंहें सिकुड़ जाएँगी। मौका पाकर अकेले में वह उससे सारा दिन मिट्टी कर देने की शिकायत करेगी। कहाँ तो वह यह सोच रहा था, कहाँ रूनू सुजीत और टिकलू को देखते ही अनार की तरह वेदाना हँसी बिखेरने लगी। जितनी देर तक वे थे उनसे खूब जमकर बातें करती रही, मानो वह भूल ही गयी कि अरुण भी वहीं है।

रूनू को सुजीत जरा ज्यादा अच्छा लगा, अरुण को यह समझने में असुविधा नहीं हुई। लेकिन रूनू का यह सिर पड़ने का तरीका उसे

बिल्कुल पसन्द नहीं आया। उसने तो चाहा था कि वह सुजीत और टिकलू से जरा दूरी रखकर बातें करे, और अरुण से ऐसे हिल-मिलकर बातें करे कि उन लोगों को लगे वह अरुण को पूरी तरह चाहती है।

रूनू ने सुजीत से जब यह पूछा कि वह दुबारा कब मिल रहा है, तो उसे बुरी तरह गुस्सा आ गया।

सुजीत ने रूनू के सवाल के जवाब में कहा, "मैं? मैं तो अब शायद यू० के० या कनाडा चला जाऊँगा। नौकरी का वाउचर भी मिल गया है।"

सुजीत को रूनू से कतराते देखकर भी अरुण खुश नहीं हो पाया। स्साला, रूनू को विलायत दिखा रहा है। नौकरी का रौब गाँठ रहा है। यह रूनू भी बिल्कुल बुद्धू है। वह शायद इन सब बातों पर विश्वास भी कर लेगी या उसे लगेगा, विलायत में नौकरी करना बड़े गर्व की बात है। हो सकता है वह मन ही मन सुजीत और उससे तुलना करने लगे और उसे लगे अरुण कुछ नहीं है···कुछ भी नहीं।

अरुण मन-ही-मन कुढ़ता रहा। रूनू समझ ही नहीं पायी। उसने अचानक सुजीत के आगे अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा, "जरा देखिए न, मैं कभी विदेश जाऊँगी या नहीं!"

इसीलिए अरुण जब वापस लौट रहा था, उसने एक बार टिकलू की तरफ घूमकर देखा और कहा, "अरे हाँ रे टिकलू, तुझे उस पीली साड़ीवाली लड़की की याद है? आजकल उससे अपनी खासी दोस्ती हो गयी है।"

यानी अगर वह लोग रूनू को सस्ती समझ रहे हों या बाद में उसे लेकर मजाक करें कि वह सुजीत से इश्क फरमाने लगी थी, तो अरुण भी···हाँ, वह भी यह जता सके कि वह भी कहीं डूबा हुआ है। हालाँकि कहाँ की बात कहाँ? पीली साड़ीवाली लड़की के सन्दर्भ में ऐसी कोई सम्भावना तक नहीं थी।

लेकिन टिकलू ने उसकी बातों पर यकीन कर लिया। उसकी आँखें आश्चर्य से फैली रह गयीं। पूछा, "सच्ची, यार तू बड़ा खुशकिस्मत है! गो अहेड! यार, बढ़ना जा! उन छोकरियों को न हो, स्टेपनी

वना लेना···।"

अरुण के चेहरे पर कुछ न समझ पाने का भाव देखकर, उसने हँसते हुए कहा, "गाड़ी में एक फालतू पहिया भी रहता है, देखा है न ? उसे ही स्टेपनी कहते हैं।"

अरुण ने कोई जवाव नहीं दिया। कौन जाने वह भी रूनू के लिए फालतू सामान ही हो।

पहले तो रूनू से फोन पर कभी बातें नहीं होती थीं, लेकिन इन दिनों यह नया रोग लग गया है।

आजकल अरुण को एक नया काम मिल गया है—रोज दोपहर को टिकलू के प्रेस में वैठे रहना। रूनू जानती है, टिकलू के वापू इस वक्त प्रेस में नहीं रहते। फोन नम्वर सुनकर उसने कहा था, "याद रहेगा वावा, याद रहेगा।" वैसे अरुण को यह भरोसा नहीं था कि रूनू कभी उसे फोन करेगी।

इन दिनों उसके लिए वस यही एक काम रह गया है। दोपहर के वक्त, घण्टे-भर फोन के सामने वैठे रहना। टिकलू कभी वहाँ होता है, कभी नहीं ! अगर वह रहता भी है तो ऐसे-ऐसे मजाक करता है कि अगर कहीं रूनू सुन ले, तो वह उसका मुँह भी न देखे। वह भी अकेले में तो उससे जी भर कर बातें कर सकता है। लेकिन टिकलू के सामने अपने को रूनू के कदमों में न्योछावर करने के अन्दाज में बातें करना मुश्किल है। फिर यहाँ से बात करने से क्या फायदा ? असल में वह जो कुछ कहना चाहता है, उसे व्यक्त करने की कोई भाषा नहीं होती। उसका मन करता है, अपने हर शब्द के साथ थोड़े-से आँसू भी मिला दे।

आजकल उसके लिए एक और परेशानी उठ खड़ी हुई है। वह अपना सारा काम-काज छोड़कर हर रोज टिकलू के प्रेस में हाजिरी देने पहुँच जाता है। कितनी तकलीफ होती है। पल-पल जैसे एक-एक पक्ष की तरह लम्बा होता जाता है, उसके मन में सुवह से ही इस पल की प्रतीक्षा शुरू हो जाती है। हर दिन वह उम्मीदों के नये-नये सपने देखता है—रूनू आज जरूर फोन करेगी। शायद उसे फोन करके कहे,

'आज मिलूँगी। आज मुझे तुमसे मिलने की फ़ुर्सत है।' वह जितनी देर भी वहाँ रहता है, उसकी आँखें टेलीफ़ोन की तरफ़ ही लगी रहती हैं।

उस दिन सड़क पर एक खूबसूरत-सी लड़की को गुजरते देखकर टिकलू ने उसे कुहनियाते हुए कहा, "अबे, देख! देख!"

अरुण ने नहीं देखा या देखकर भी अनदेखा कर दिया। उसके कान तो फोन की घण्टी सुनने को उतावले हो रहे थे। यह जानने को बार-बार उसकी निगाह घड़ी पर ही अटकी रही कि आशा-इन्तजार की घड़ी बीतने में कितनी देर है। किसी-किसी दिन तो वह बिल्कुल निराश हो गया और उसे लगा, आज शायद वह उसे याद नहीं करेगी। लेकिन अगले ही पल जैसे उसे एक नयी उम्मीद बँधने लगती थी—नहीं, आज उसका फोन जरूर आयेगा।

एक बार सचमुच ही फोन की घण्टी बज उठी।

घण्टी बजते ही उसने झटपट फोन उठा लिया, "जी नहीं! हरिदास बाबू नहीं हैं। आप घण्टे-भर बाद फोन करें।" और खट् से फोन रख दिया।

टिकलू ने हँसकर कहा, "इस वक्त मेरे पास कोई मूवी-कैमरा होता, तो तेरी एक फिल्म जरूर उतारता। घण्टी सुनते ही तेरा समूचा चेहरा एकाएक दप् से जल उठा और फिर कुप्पी की तरह फुक् से बुझ गया।"

टिकलू को लेकर यही तो आफत है। वह नहीं होता है तो अरुण बेहद निश्चिन्त महसूस करता है। फोन न आने पर, दिल की आग दिल ही में छुपायी जा सकती है। टिकलू सारी बातें उमि और सुजीत को जड़ देता है और फिर सब मिलकर उसका मजाक उड़ाते हैं।

अच्छा, सिर्फ़ एक फोन की ही तो बात है। फोन पर थोड़ी-सी बातें हो जाती हैं बस्स! सारा दिन खुश-खुश बीतता है और सीने की जलन भी ठण्डी पड़ जाती है। रून् उसके लिए इतना-सा काम भी नहीं कर सकती?

जिस दिन रून् का फोन नहीं आता, उसके बाद भी कई-कई दिनों तक फोन नहीं करती। अरुण को सब-कुछ बेस्वाद लगता है। उसका मन होता है, हॉकी-स्टिक घुमाकर समूची दुनिया को बाउण्डरी से बाहर फेंक दे। कभी-कभी उसे लगता है कि उसके सीने में कोई जहरीला जख्म हो गया है, इसी से इतनी तीखी यन्त्रणा है। कभी-कभी उसे अन्दर ही अन्दर इतनी खीज होती है कि अपने भीतर से एक मुट्ठी मांस या अँतड़ी नोचकर बाहर फेंक दे, तो शायद कुछ राहत मिले।

रून् का फोन नहीं आया। नहीं ही आया! अचानक एक दिन—"वृष्टि! मैं वृष्टि हूं।" अरुण जैसे रून् की आवाज पहचान नहीं पा रहा हो, इसीलिए उसे अपना परिचय देना जरूरी हो गया।

अरुण के चेहरे पर टोकरी-भर उल्लास बिखर गया।

'हुँहः, आज कैसे आ सकती हूँ? आज तो···"

बस! उड़ता हुआ फानूस आकाश छूने ही वाला था कि अचानक गैसहीन गुब्बारा बन गया।

"सुनो, कल मिलूंगी। कल क्या है, बोलो तो?" रून् ने हंसते हुए पूछा।

अरुण को जैसे कुछ याद न हो। रून् उसका फोन नम्बर तक याद रख सकती है और वह यह दिन भी याद नहीं रख सकता।

"तुम्हारा जन्मदिन है।"

"जन्मदिन···" रून् ने उसी तरह हँसकर कहा, "मैं तो सोच भी नहीं सकती थी। जाने कितने दिनों पहले तुम्हें बताया था। तुम्हें यह तारीख याद रह गयी?"

"अरे वाह, याद नहीं रहेगी? यह तो अति साधारण-सी बात है।" अरुण को लगा उन दोनों के मन में तो हर वक्त बातें चला करती हैं। अभी कुछ ही दिनों पहले की बात है···कई दिनों से रून् का फोन नहीं आया, तो अरुण ने खुद ही फोन कर लिया।

रून् ने उसकी आवाज सुनते ही कहा, "हाय मां! मैं भी अभी-अभी तुम्हें फोन करने जा रही थी।"

···और उसी रून् का जन्मदिन याद नहीं रहेगा? महीने-भर से

अपने खर्च में कटौती करके उसने थोड़े-से रुपये जमा किये हैं। उसके पास अगर अधिक रुपये होते तो वह कोई कीमती-सा उपहार देता। तीन दिनों से वह हर रोज न्यू मार्केट की तमाम दूकानों के चक्कर लगा रहा है।

उसकी जेब में सिर्फ सात रुपये हैं। आखिर वह क्या खरीदे? कहीं कुछ मिलता ही नहीं! कुच्छ नहीं!! जो चीज पसन्द भी आयी, उसकी कीमत सुनकर वह लौट आया।

यूँ ही चक्कर लगाते-लगाते···घूमते-घूमते···एक शो-केस में टँगे काश्मीरी सिल्क के एक स्कार्फ पर नजर पड़ी। स्कार्फ के कोने में महीन-महीन धागों से एक प्राकृतिक दृश्य कढ़ा हुआ था। शाहंशाहों की तरह शान से सिर ऊँचा किये हुए चिनार का एक ऊँचा-सा पेड़ और उसके तने से बँधा हुआ एक छोटा-सा शिकारा। जरी के धागों से कढ़ी हुई रस्सियाँ!

अरुण ने आगे बढ़कर पूछा, "इस स्कार्फ की क्या कीमत है?"

···अरुण रुनू के आगे बिलकुल भिखारी नजर आता है। लेकिन अपनी शक्ल-सूरत से भी क्या भिखारी दिखता है?

दुकानदार ने मुस्कराते हुए कहा, "कीमती है! इसके दाम बहुत ज्यादा हैं।" दुकानदार को मानो कीमत बताने में भी तकलीफ हो रही थी।

अरुण ने अपनी पैण्ट की जेब में हाथ डालकर एक-एक नोट को छू-छूकर देखा, फिर अपमान से तिलमिलाते हुए उन नोटों को मुट्ठी में मसल दिया। वह बदहवासों की तरह बाहर निकल आया और थोड़ी देर बाद उन मुड़े हुए नोटों को फिर से सीधा करने लगा।

"कीमती है! इसकी कीमत बहुत ज्यादा है।" उसका जी हुआ, वह ऊर्मि से रुपये उधार लेकर, इस दुकानदार के चेहरे पर दे मारे और वह स्कार्फ खरीद ले जाये। लेकिन अगले ही क्षण उसने सोचा—ऊर्मि से उधार लेकर वह रुनू को जन्मदिन का उपहार देगा? यह तो रुनू का सरासर अपमान होगा।

आखिरकार उसने कुछ भी नहीं खरीदा।

जन्म-दिन ! जन्म-दिन !!

अरुण ने एक खाली टैक्सी रोकी और रूनू के साथ प्रिन्सेप घाट की तरफ चला आया।

फोर्ट विलियम के पीछे का हिस्सा बिल्कुल निर्जन था। अरुण ने लॉन की हरी मखमली घास पर बैठते हुए रूनू से कहा, "एइ, बैठो न !"

रूनू ने एक मुस्कान उछालकर कहा, "हुँह:, चलो, उठो तो !"

अरुण बुद्धुओं-सा उठकर खड़ा हो गया।

रूनू ने झुककर पाँव छूकर प्रणाम किया, "मेरे जन्म दिन पर···!"

इक्कीस वर्षीय अरुण अचानक ही बहुत बड़ा हो गया ! बहुत बड़ा !!

काफी दूर पर खड़ा एक फूलवाला उनकी तरफ देख रहा था। अरुण ने उसे हाथ के इशारे से अपनी ओर आने को कहा।

पिछले दिन की तरह नशीली खुशबू बिखेरती हुई जुही की माला, रूनू के बालों की खुशबू की तरह भीनी-भीनी महक, आँख की पुतलियों के आस-पास के हिस्सों की तरह श्वेत ! शुभ्र फूल !

अरुण ने एक माला खरीदकर, रूनू के जूड़े में लपेट दी।

रूनू का चेहरा खुशी से चमक उठा। वह जुही के फूलों की तरह खिल उठी। उसने गजरे में से एक फूल तोड़ लिया और उसे सूँघते हुए आहिस्ते से कहा, "एक बार अयन ने भी ऐसी ही एक माला दी थी।"

बस ! अरुण की सारी खुशी पलक मारते ही बुझ गयी।

अयन ! अयन !! अयन !!!

अरुण मन ही मन खीज उठा। अच्छा, वह अयन क्यों नहीं बन पाया ? अयन ने भी उसे ऐसी एक माला दी थी। यानी रूनू के मन में हर वक्त अयन की याद जिन्दा है ? शायद किसी छोटी-सा गलत-फ़हमी की वजह से दोनों अलग तो हो गये लेकिन रूनू के मन में अब तक कोई दर्द टीसता रहता है ? यानी वह अरुण में भी सिर्फ अयन को ही ढूँढ़ती है। उसमें उसे सिर्फ अयन का चेहरा नजर आता है।

…अरुण के मुहल्ले के आनन्द 'दा का पाँच साल का बेटा गाँव गया हुआ था। वहाँ पानी में डूब गया। अपने इकलौते बेटे के शोक में आनन्द 'दा की बीवी रोते-रोते पागल हो गयी थी। उसका खाना-पीना तक छूट गया और हर वक्त रोते रहने की वजह से आँख की रोशनी भी कमजोर हो गयी। जाने कैसी खोयी-खोयी-सी रहने लगी। उससे कुछ पूछने के लिए तीन-तीन बार पूछना पड़ता था। लोग बताते थे, आनन्द 'दा की बीवी अन्त में एक गुड्डे को पैण्ट-शर्ट पहनाकर, अपने सीने से दुबकाकर सोती थी…।

…जाहिर है, कि रून्नू भी उसे प्यार नहीं करती। उसके लिए वह एक बेजान गुड्डा-भर है। अगर वह कहीं खो जाये या मर जाये या जिस दिन रून्नू को हो यह लगेगा कि वह अयन जैसा नहीं है, उसी दिन वह कोई नया गुड्डा ढूंढ लेगी…।

"एइ, मैंने मामी को तुम्हारे बारे में बता दिया है!" रून्नू ने कहा।

अरुण सहम गया, "अरे, क्यों?" मानो दुनिया-भर का भय सिर्फ उसी के जिम्मे है, फिर पूछा, "क्या बताया है?"

रून्नू हंस दी, "तुम तो पगले हो! मुझ में क्या बुद्धि-शुद्धि नहीं है? मैंने उसे सिर्फ यही कहा है कि तुमसे मेरी जान-पहचान भर है। तुम मेरे दोस्त हो।" फिर थोड़ा ठहरकर कहा, "मेरी मामी यह बात सुनकर खूब हँसीं और मुझे उनके हंसने पर इतना गुस्सा आया कि मैंने उनसे कुट्टी कर ली।" उसने कौतुकी निगाहों से अरुण की तरफ देखते हुए कहा, "मेरी मामी कह रही थीं कि…एक दिन अपने दोस्त को घर ले आओ। और वह झरने की तरह खिलखिला उठी। शाम के झुटपुटे में वह बेहद खूबसूरत लग रही थी। जब वह हंसती है, तो लगता है जैसे रुपहली फुहार झर रही हो।

धूप ढलने लगी। थोड़ी ही देर बाद शाम उतर आयेगी। रून्नू ने अपनी घड़ी की तरफ निगाह डाली।

"क्यों? मुलाकात का टाइम खत्म हो गया?" अरुण अतृप्त खिन्नता से भर उठा।

रून्नू ने मुस्कराकर कहा, "अरे, आज ही सब थोड़ी खत्म हुआ जा

रहा है ? मैं दुबारा भी तो आऊँगी।"

"भली-सी, प्यारी-सी रूनू ! कम-से-कम आज के दिन तो थोड़ी देर और ठहर जाओ, आज तो तुम्हारा जन्म-दिन है।"

रूनू कहीं दूर नजरें गड़ाये हुए, उठ खड़ी हुई, "नहीं, नहीं, मुझे डर लगता है।"

"डर !" अरुण हँस पड़ा। "किस बात का डर ?"

रूनू ने शरमा कर पलकें झुकाते हुए कहा, "आज का अखबार नहीं पढ़ा ?"

गजब ! अरुण तो भूल ही गया था। चारों ओर शाम का घुँधला अँधेरा उतर आया था। अब वह खुद भी डर गया। कुछ दूर पर एक कांस्टेबल ने एकान्त में बैठे हुए उन प्रौढ़-जोड़ों से जाने क्या कहा। उनसे कुछ ही दूर पर एक भारी-भरकम महिला भी बैठी हुई थी।

वह प्रौढ़ अपनी जेब टटोल रहा था।

···आज रूनू का जन्म-दिन है। आज वह दोनों उजली-धुली शाम की हवा में कविता बनकर बिखर जाना चाहते थे। थोड़ी देर के लिए कहीं निर्जन एकान्त चाहते थे। लेकिन निर्जनता शायद कहीं नहीं है—
कहीं भी नहीं !

कुछ ही दूर पर, चार-पांच मनचले शराब की बोतल लेकर बैठ गये। उन लोगों ने शायद रूनू को सुनाने के लिए कोई गन्दा-सा फिकरा कसा। उनके करीब से गुजरते हुए कांस्टेबल के कानों में उनकी बात नहीं पड़ी या हो सकता है, उन्होंने पहले से ही उसका मुँह बन्द कर दिया हो।

अरुण आज बहुत-सी बातें सोच कर आया था। बहुत-सी बातें सजाकर रूनू से कहने का मन था। लेकिन कुछ भी कहते न बना।

साथ-साथ चलते हुए रूनू ने अचानक ही अरुण का दाहिना हाथ पकड़ लिया। उसकी उँगलियों में अपनी उँगलियाँ फँसाते हुए उसने एक बार अरुण के अतृप्त चेहरे पर नजर डाली। उसकी आँखों और चेहरे पर एक कोमल-सी उदासी बिखर गयी। उसने भर्रायी हुई आवाज में कहा, "सुनो, तुम मुझसे कभी ढेर-सारा एक साथ मत

माँगना ? हम लोगों को यह जो थोड़ा-थोड़ा करके मिल रहा है न, वही बहुत है ! इतना ही काफी है।" फिर अरुण की तरफ देखते हुए, उसने अपने जूड़े से जुही का गजरा उतार लिया और उसकी खुशबू में मुँह छुपा लिया।

हुँह ! यह जिन्दगी भी कोई जिन्दगी है ? यह टुकड़े-टुकड़े सुख की तलाश में इधर-उधर भटक रहा है, लेकिन छोटा-से-छोटा दुःख उठाने को राजी नहीं है। वह क्या इन्सान रह गया है ? अरुण ने सोचा।

"उन सबको दोष देने से कोई फायदा नहीं प्रकाश, उन लोगों की जात ही दूसरी है।" एक दिन बड़े मामा ने अरुण को सुनाते हुए बापू से कहा, "तुम अगर बीमार भी होगे तो टैक्सी से ऑफिस नहीं जाओगे कि जब खूब सारा पैसा जमा हो जायेगा तो रोज ही टैक्सी पर ऑफिस जाया करेंगे। और यह लोग ? जेब में रुपये हुए तो अगले दिन के बस-किराये की चिन्ता किये बिना, वह झट से टैक्सी की सैर कर आयेंगे।"

सचमुच ऐसा ही होता है। पिछली बार सब लोग जब पुरी गये थे तो वह बापू को होटल में ठहरने के लिए किसी तरह भी राजी नहीं कर पाया। अरुण और मीलू ने कहा भी, "हम लोग थोड़े से दिनों के लिए तो आये हैं। मजे में ऐश से घूमने के बजाय माँ वहीं रसोईघर में जुट गयी और बापू वहीं सौदा-सुलफ के लिए बाजार घूमने चल दिए।"

अरुण बापू को किसी तरह भी नहीं समझा पाया। वह आने वाले भविष्य की चिन्ता में इस कदर डूबे रहे कि किसी दिन अपने वर्तमान को भी ठीक तरह नहीं जी पाये। बड़े मामा भी बिल्कुल बापू की तरह हैं। उन्होंने भी समझाया, "प्रकाश, दरअसल हम-तुम ही सच्चे अर्थों में जीना चाहते हैं। तुममें अगर दो मंजिले तक चढ़ने की शक्ति नहीं है तो तुम चढ़ने की कोशिश भी नहीं करोगे। लेकिन आजकल के लड़के सिर्फ ऐश करना चाहते हैं। पूजा की छुट्टियों में जब इन्हें

रहा है ? मैं दुबारा भी तो आऊँगी।"

"भली-सी, प्यारी-सी रूनू ! कम-से-कम आज के दिन तो थोड़ी देर और ठहर जाओ, आज तो तुम्हारा जन्म-दिन है।"

रूनू कहीं दूर नजरें गड़ाये हुए, उठ खड़ी हुई, "नहीं, नहीं, मुझे डर लगता है।"

"डर !" अरुण हँस पड़ा। "किस बात का डर ?"

रूनू ने शरमा कर पलकें झुकाते हुए कहा, "आज का अखबार नहीं पढ़ा ?"

गजब ! अरुण तो भूल ही गया था। चारों ओर शाम का धुँधला अँधेरा उतर आया था। अब वह खुद भी डर गया। कुछ दूर पर एक कांस्टेबल ने एकान्त में बैठे हुए उन प्रौढ़-जोड़ों से जाने क्या कहा। उनसे कुछ ही दूर पर एक भारी-भरकम महिला भी बैठी हुई थी।

वह प्रौढ़ अपनी जेब टटोल रहा था।

...आज रूनू का जन्म-दिन है। आज वह दोनों उजली-धुली शाम की हवा में कविता बनकर बिखर जाना चाहते थे। थोड़ी देर के लिए कहीं निर्जन एकान्त चाहते थे। लेकिन निर्जनता शायद कहीं नहीं है—कहीं भी नहीं !

कुछ ही दूर पर, चार-पाँच मनचले शराब की बोतल लेकर बैठ गये। उन लोगों ने शायद रूनू को सुनाने के लिए कोई गन्दा-सा फिकरा कसा। उनके करीब से गुजरते हुए कांस्टेबल के कानों में उनकी बात नहीं पड़ी या हो सकता है, उन्होंने पहले से ही उसका मुँह बन्द कर दिया हो।

अरुण आज बहुत-सी बातें सोच कर आया था। बहुत-सी बातें सजाकर रूनू से कहने का मन था। लेकिन कुछ भी कहते न बना।

साथ-साथ चलते हुए रूनू ने अचानक ही अरुण का दाहिना हाथ पकड़ लिया। उसकी उँगलियों में अपनी उँगलियाँ फँसाते हुए उसने एक बार अरुण के अतृप्त चेहरे पर नजर डाली। उसकी आँखों और चेहरे पर एक कोमल-सी उदासी बिखर गयी। उसने भर्रायी हुई आवाज में कहा, "सुनो, तुम मुझसे कभी ढेर-सारा एक साथ मत

घर में किसी के बीमार होने का मतलब है मेहमानों की ठसाठस भीड़। आजकल नाते-रिश्तेदारों से समूचा घर भरा रहता है। आने-जाने वाले लोगों की भीड़। उन्हें चाय पिलाना, उनके लिए रिक्शा बुलाना, लिलुआ से आयी हुई रांगा बुआ के बाल-बच्चों के लिए नाश्ते का इन्तजाम! बस, दिन-भर यही करते रहो।

ऊपर से, सबके आगे उसे ही शर्मिन्दा होना पड़ता है। लोग उसी से सवाल करते हैं, "अस्पताल क्यों नहीं ले जाते? ऑपरेशन क्यों नहीं करवा रहे हो?" जैसे उसी के कहने से सब हो जाएगा।

बापू तो बस, जिद पकड़े बैठे हैं, "ऑपरेशन से हम लोगों को क्या फायदा होगा? डॉक्टर लोग अपना-अपना हाथ पक्का करेंगे। बस!—"

कभी-कभी उसे लगता है, बापू या तो बेहद निर्मम हैं या महा-कंजूस। उसे तो यह भी शक होता है कि बापू के दिल में माँ के लिए शायद जरा भी मुहब्बत नहीं है।

अरुण चाहता है, माँ को बड़े-बड़े डॉक्टरों को दिखाया जाये, अस्पताल में रखकर ऑपरेशन करवाया जाये। उन्हें बचाने या उनकी तकलीफ कम करने से भी ज्यादा अहम बात यह है कि कोई यह न कह सके कि उन लोगों ने कुच्छ नहीं किया।

उस दिन सुजीत ने ही आश्चर्य से पूछा था, "यह क्या, अभी तक ऑपरेशन नहीं कराया?"

मानो, उसी ने माँ का खून किया हो। अतः उसका सारा गुस्सा घूम-फिरकर बापू पर ही उमड़ता है।

"अरुण—!"

आज वह सुबह से ही लड़-झगड़ कर बाहर निकल गया था। उसके बाद से माँ के कमरे में भी नहीं गया। बापू की आवाज सुनकर पहले तो उसने जवाब ही नहीं दिया, फिर जाने क्या सोचकर उनके सामने आ खड़ा हुआ।

बापू ने आँख उठाकर उसकी तरफ देखा, फिर कुछ कहने की कोशिश की, "सुन…।" उन्होंने पथरायी हुई आँखों से देखते हुए,

जल्द मौत आ जाए, ताकि उन्हें तमाम दुःख-तकलीफों से छुटकारा मिल जाए।

उसके मुहल्ले के नंनी बाबू का जब ऑपरेशन हुआ था, तो उन्हें रेडियम किरणों के सहारे करीब छः महीने तक जिन्दा रखने की कोशिश की गयी थी। इससे उनकी तकलीफ और बढ़ गयी थी। आखिर छः महीने बाद वह मर गए।

उसकी माँ भी नहीं बचेगी! बचना असम्भव है! जितने दिन जिएँगी, तकलीफ भोगेंगी, शायद बेजान लाश की तरह निस्पन्द लेटी रहेंगी।

अरुण ने अपनी विचारधारा पलटने की कोशिश की। माँ की मौत! उनका कष्ट!—यह सब कुछ नहीं है।

बड़े मामा कहेंगे, "उसकी उचित दवा-दारू किए बिना, तुम लोगों ने उसे मार डाला।"

छोटी मौसी कहेंगी, "एक बार ऑपरेशन भी करवाकर देख लेते। शायद···"

टिकलू कहेगा, "हाँ, हो सकता है, वह बच जाती।"

उर्मि और सुनीत भी यह कहने से बाज नहीं आएँगे कि उन लोगों ने खर्चे के डर से कुछ नहीं किया।

दिदिया की ननद नर्सिंग होम क्यों गयी थी, अब यह बात वह धीरे-धीरे समझ रहा था। वहाँ अगर वह मर भी जाती तो कोई दोष नहीं देता। सब यही कहते कि नर्सिंग होम में मरी है।

यूँ नर्सिंग होम जाने की बात उसे हमेशा ही महज एक स्नॉबरी लगी है! ढकोसला! यह एक कोरा विज्ञापन है कि दुनिया में कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो मामूली लोगों की तरह अस्पताल या अस्पताल जाना पसन्द नहीं करते। लेकिन अब उनका विचार बदल गया है। अब नर्सिंग होम में जाना दायित्व-पालन लगता है। इसीलिए बड़े-बड़े डाक्टरों से राय ली जाती है, ताकि बाद में कोई किसी तरह का इल्जाम न दे। लोगों से कम-से-कम यह कहा जा सके कि मरनेवाले को डॉक्टर वगैरह को *दिखाया गया था।*

मम्मी हो···

अचानक अपने मकान पर निगाह पड़ते ही उसे लगा, माँ गौण हो गयी। उसकी बीमारी की बात भी नगण्य है। इन दिनों यह घर रथ-यात्रा का मेला बन गया है। अनगिनत लोग आ-जा रहे हैं, हँस-बोल रहे हैं। उन्हें वक्त से चाय न दी गयी तो खट् से नाराज हो उठते हैं।

असल में लोग क्या कहेंगे, यही अहम बात है। अरुण का मन हुआ, वह अचानक ही कोई बड़ा सारा काम कर डाले। दो-चार बड़े-बड़े डॉक्टर बुला लाए, माँ को अस्पताल ले जाकर ऑपरेशन करव डाले। इस तरह महीनों तक रोज-रोज रुपए-पैसे खर्च करते हुए वह लोग बिल्कुल कंगाल हो जाएँ। घर के तमाम लोग इतनी दौड़-धूप करें कि बीमार पड़ जाएँ। वाकई, माँ की तकलीफ कुछ नहीं है। उसकी मौत से भी कुछ नहीं आता-जाता। सब एक स्वर में यही कहेंगे कि उस बेचारी ने सचमुच बहुत तकलीफ सही,'''लेकिन उसके घरवालों ने भी उसकी सेवा-टहल में कहीं, कोई कमी नहीं रखी।

वह भी दिदिया की ननद की तरह शान से कह सकेगा, "डॉक्टर *स्वामी ने ऑपरेशन किया था! डॉक्टर स्वामी ने!"*

"भइया, एक लड़का तुझे बुला रहा है। देखने-सुनने में काफी खूब सूरत है।" मीलू ने खबर दी।

अरुण को देखते ही पन्द्रह वर्षीय एक लड़के ने हाथ जोड़ दिए और उसकी तरफ एक छोटी-सी चिट बढ़ा दी।

चिट पर नन्हे-नन्हे अक्षरों में लिखा हुआ था, "जरूरी काम है! फौरन चला आ!" नीचे किसी का दस्तखत नहीं था, लेकिन उसे समझने में कोई असुविधा नहीं हुई।

"कहाँ?" अरुण ने पूछा।

वह लड़के के पीछे-पीछे बाहर निकल आया। उर्मि बाहर टैक्सी में बैठी हुई थी।

उसका चेहरा गम्भीर लगा। अरुण से परिचय कराते हुए कहा "यह मेरा भाई है!" फिर उसने अपने भाई से कहा, "तुम ट्राम से घर चले जाना।" और अरुण की तरफ मुड़कर देखा, "चल, अन्दर आ जा।"

उर्मि से इधर काफी दिनों से मुलाकात नहीं हो पायी थी। इन दिनों जाने क्यों उसे लगने लगा है कि उर्मि उन सबसे कतराने लगी है।

अरुण ने उसे दो बार फोन भी किया था। एक दिन तो उसने जान-बूझकर बहाना बनाकर टाल दिया था। और एक दिन वह कहकर भी कॉफी-हाउस नहीं पहुँची।

अरुण को कभी-कभी बहुत बुरा भी लगता है। खैर, रूनू से न मिलने जैसा तीखा दर्द तो नहीं हुआ, लेकिन अन्दर से वह कहीं खाली-खाली महसूस कर रहा था।

टिबलू और सुजीत के सामने मन की पीड़ा को दबाए रखना पड़ता है। ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो उससे नहीं की जा सकतीं। लेकिन वह उर्मि को बेझिझक बता सकता था। उसे उर्मि ही समझ सकती है। उसकी निगाह में रूनू की कीमत कहीं से रंचमात्र भी कम नहीं है।

लेकिन आज उर्मि को देखकर लगा उसे कुछ हुआ है। शायद वह बुरी तरह बीमार है।

"इन दिनों तेरा चेहरा बहुत खराब हो गया है रे, उर्मि!"

उर्मि ने कोई जवाब नहीं दिया।

अरुण को अचानक अपनी माँ की याद आ गयी। कहा, "मेरी माँ बहुत बीमार है रे! मुझे जल्दी घर लौटना होगा।"

उर्मि ने इस बार भी कोई जवाब नहीं दिया।

उर्मि के चेहरे पर पहले जैसी वह खिल्-खिल् हँसी नहीं थी। उसकी देह की खूबसूरती भी जैसे बुझी-बुझी लगी। उसकी बातों का जादू भी कहीं खो गया है।

"तू इतने-इतने दिन कहाँ गुड़प् हो गयी थी? क्या हुआ था तुझे?"

उर्मि ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया। वह किन्हीं ख्यालों में खोयी हुई थी। वह इस कदर परेशान लग रही थी, मानो समूची धरती टूटकर उसके माथे पर आ पड़ी हो।

अभी हो···

उनकी टैक्सी भीड़-भरे रास्ते से होकर गुजर रही थी। अरुण मन-ही-मन डर गया। अब तक उसे छोटी मौसी या बड़े मामा का ख्याल नहीं आया था।

अचानक रूनू का ख्याल आते ही वह सहम गया।

इस वक्त अगर रूनू उसे देख ले तो जाने क्या सोच बैठे। निस्सन्देह, वह यही सोचेगी कि अरुण महान लम्पट है। शायद वह उर्मि को ही प्यार करता है और उससे सिर्फ खिलवाड़। लेकिन उर्मि से यह नहीं कहा जा सकता कि वह यहीं उतरना चाहता है।

अरुण आंख गड़ाए हुए भीड़ की तरफ देखता रहा और उसकी आंखें उस भीड़ में रूनू को ढूंढ़ती रहीं।

उसने निगाह घुमाकर अचानक उर्मि की तरफ देखा।

उर्मि टैक्सी की खिड़की पर हथेलियां रखे, अपना माथा टिकाए बैठी थी। उसके आंखों में एक खामोश-सी रुलाई उमड़ आयी थी।

कई दिनों की लगातार बारिश के बाद, आज तीखी धूप निकल आयी थी।

न, कल बारिश नहीं हुई थी, लेकिन बादलों में नमी थी। आज की दोपहर तो ऐसी लहकती हुई थी कि उस पर रोटियां सेंकी जा सकती है। चारों तरफ वीरान निर्जनता···अरुण अपने को बेहद अकेला महसूस कर रहा था। इस वक्त अगर रूनू भी साथ होती तो वह उसके माथे पर दरख्त की छांव कर देती और इस भरी दोपहरी में उसके तपते हुए अकेलेपन को मिटा देती। जब वह उर्मि के साथ होता है, तो कभी-कभी ऐसा भी होता है कि रूनू का अभाव भी नहीं खलता। एक दिन टिकलू के प्रेस में काफी देर तक रूनू के फोन का इन्तजार करना पड़ा था। वह बिल्कुल बोर हो गया। उस दिन जब उसका फोन नहीं आया वह यूं ही चल दिया था। रास्ते में अकेले-अकेले चलते हुए वह अजब-सा खालीपन महसूस कर रहा था। उस दिन काफी देर तक किसी छांव की तलाश में इधर-उधर भटकता रहा। रास्ते पर भागती-

दौड़ती बसों-ट्रामों और गाड़ियों की खिड़की में झाँकती हुई खूबसूरत शक्लों को निहारते हुए उसने अपने को तसल्ली देने की कोशिश की थी।···अचानक एक बहुत पुरानी जान-पहचान वाली लड़की से मुलाकात हो गयी थी। उसने उसे ही अपनी लच्छेदार बातों में उलझाए रखने की असफल कोशिश की। रूनू के लिए उसके दिल का दर्द अचानक ही कम हो गया। उस समय अकेले होते हुए भी यह नहीं लगा कि वह अकेला है।

···आज तो उर्मि उसके साथ है। लेकिन जाने क्यों उसे लग रहा है, जैसे वह अकेले ही चल रहा है। इधर उर्मि के मन में जरूर कहीं कोई दुराव आ गया है। साथ-साथ चलते हुए दोनों एक-दूसरे से दो-एक बार टकरा भी गए लेकिन उर्मि मानो वहाँ थी ही नहीं। वह जाने किन ख्यालों में खोयी हुई अनमनी-सी साथ चल रही थी। उसे ऐसा कौन-सा दर्द कचोट रहा है, अरुण को समझ नहीं आया।

रास्ते के बीचों-बीच एक मूँगफलीवाला गन्दी-सी घघरिया और फटी हुई चोलीवाली उस लड़की से छेड़खानी कर रहा था। पेड़ की छाँव में एक आइसक्रीमवाला अपनी गाड़ी पर लेटा हुआ खर्राटे ले रहा था।

उर्मि और अरुण चक्करदार दरवाजे से होकर विक्टोरिया मेमोरियल के भीतर चले आए।

अरुण सोच रहा था···रूनू उस पर जरा भी विश्वास नहीं करती। लेकिन उसका भी आखिर क्या दोष ? सुजोय और टिंकलू तक उसकी बातों पर विश्वास नहीं करते। उन्हें भी उस पर थोड़ा-बहुत शक है। उसकी बातों पर मुँह दबाकर हँसते हैं, "अरे भाई, उर्मि की जुबान पर हर वक्त बस, एक ही बात रहती है—इस वक्त अरुण भी होता, तो मजा आ जाता। क्यों···? हम लोग जैसे कुछ हैं ही नहीं ?"

यह सब सोचते हुए अरुण को अचानक ही उर्मि बेहद भली और अपनी लगी। उसे बस, यही डर था कि कहीं रूनू न देख ले। रूनू उसे गलत न समझ बैठे। ऐसी गलतफहमी होना नेचुरल है। उर्मि की हँसी, बातचीत और बिहेवियर किसी के भी मन में सन्देह जगा देते

सभी ही··· -- ···

हैं। सुजीत, टिकलू या कॉलेज के दूसरे लड़कों के सामने, यह सब अच्छा लगता था। उसे वहुत मजा भी आता था। लेकिन रून् उसे गलत कैसे समझ सकती है? फिर वह कैसा प्यार करती है? लेकिन, कौन जाने, वह उसे प्यार ही नहीं करती। अच्छा, इस रेस्तरां में अगर इस वक्त कहीं रून् किसी खूबसूरत नौजवान या अयन के साथ दिख जाए तो···? अरुण उसी दम जान दे देगा, दम तोड़ देगा। अच्छा, उसे पता भी न चले और बिना किसी तकलीफ के साँस टूट जाए, ऐसा कोई उपाय नहीं है? लेकिन,···रून् अगर उसे ठुकरा दे या धोखा दे दे या उसी के सीने पर खड़ी होकर भरतनाट्यम् नाचती हुई खुशियाँ मनाए···तो भी क्या वह बेवकूफों की तरह उसके पीछे जान देकर जग-हँसायी कराएगा? नहीं, वह बुरा आदमी बन जाएगा··· ब-होत बुरा आदमी! वह भी तो एक तरह की मौत ही होगी।

दोनों एक रेस्तरां में आकर आमने-सामने बैठ गये।

"हाँ, तो अब बता!" उर्मि के चेहरे की तरफ देखते हुए उसकी आँखों में सवाल उभर आए।

उर्मि का चेहरा पत्थर की तरह जड़ और मूक था।

अरुण को उसकी पारदर्शी आँखें शीशे की पर्त की तरह धुंधलायी हुई लगीं। ऐसी धुंधलायी हुई आँखें, उसने एक बार पहले भी देखी थीं, नन्दिनी की आँखें। जिस दिन वह अपना घर छोड़कर चली आयी थी, जिस दिन उसका प्यार आने वाले भय, अनिश्चय और भविष्य की आशंकाओं से जख्मी होकर दम तोड़ चुका था।

उर्मि के उदास चेहरे का दुःख, उसे समझ नहीं आया। उर्मि को भी कोई दुःख हो सकता है, वह कभी सोच भी नहीं सकता था।

वैसे भी आम लड़कियों का चेहरा हमेशा स्नो-पाउडर से रँगा-पुता रहता है। लेकिन इतने दिनों से वह उर्मि के चेहरे पर एक और ही चीज देखता आ रहा था—उसकी हँसी। उसके चेहरे और आँखों से झरती हुई उन्मुक्त हँसी। इसी लिए वह जहाँ भी होती है, पलक झपकते ही फूलों की झाड़ बन जाती है, और समूचे पेड़ में बेले की कलियाँ चिटखने लगती हैं।

"अभी, अरुण, यह सब फुर्ती तो दौलत के दम पर होती है। अगर मेरा भी कोई ऐसा बड़ा भाई होता, तो मेरा चेहरा भी हमेशा मर्करी-ट्यूब की तरह रोशनी बिखेरता रहता।" टिकलू ने कहा था।

उसकी बात गलत भी नहीं थी। उर्मि के भाई कोई बहुत बड़े सरकारी अफसर थे। अरुण इतना ही जानता था। जिस दिन उर्मि ने अपने तीनों दोस्तों को अपने यहाँ दावत दी थी, अरुण तो अवाक् रह गया था। सुजीत की आँखें भी चौंधिया गयीं और टिकलू जैसा स्मार्ट और हाजिरजवाब लड़का कैसी बुद्धूपने की बात करता रहा। उर्मि के भाई-भाभी दो-चार औपचारिक बातों के अलावा, उनसे कतराते रहे। अरुण ने दरवाजे के पीछे दबी हँसी भी सुनी थी। वह होंठ बिचकाकर मानो यह कहना चाह रही थीं, "कैसे-कैसे दोस्त हैं, बाबा।"

"जानता है अरुण, वह घर मेरे लिए जेलखाना है। वहाँ मेरा दम घुटता है।" उर्मि ने बताया था, "इतना बड़ा घर, इतना बड़ा लॉन देखकर लोग जाने क्या-क्या सोचते होंगे, लेकिन मेरे पास अपना कहने को महज़ एक छोटा-सा कमरा है। घर के बाहर-भीतर—हर जगह हर वक्त अपने को उनके साथ फिट करके चलना पड़ता है। मेरी अपनी किसी रुचि का कोई सवाल नहीं। मेरे भले-बुरे का ख्याल भी कोई मायने नहीं रखता। मेरी पसन्द-नापसन्द जैसे कुछ है ही नहीं।"

"लेकिन मैं समझता था, तू बिल्कुल आजाद है। हम लोगों से अधिक आजाद!" अरुण ने कहा।

उर्मि के चेहरे पर दर्दभरी हँसी उभर आयी। उसने खुद अपना मजाक उड़ाते हुए कहा, "हाँ, शायद तू ठीक ही कहता है अरुण! खैर, अब तुम लोगों को किसी दिन यहाँ आने को नहीं कहूँगी।"

अरुण को चाहे सारी बात समझ में न आयी हो, लेकिन थोड़ा-थोड़ा समझ गया था, अतः वह चुप हो रहा।

लेकिन उर्मि तो चुप रहने वाली लड़की नहीं है। उसने कहा था, "जानता है अरुण, एक दिन मैं भइया के दफ्तर गयी थी। वह इतनी ऊँची तनख्वाह पाते हैं, इत्ते बड़े अफसर हैं—वहाँ जाकर देखा,

उनके जैसे, कहूँ, उससे भी बड़े-बड़े जाने कितने अफसर थे। वहाँ भइया के लिए एक छोटा-सा कमरा। उस ऑफिस बिल्डिंग के विशाल अहाते में भइया बेहद तुच्छ और नगण्य लगा।"

अरुण हँस पड़ा, "अरे, तो उसमें क्या हुआ? भीतर से सभी एक जैसे ही होते हैं।"

उर्मि उसकी हँसी में साथ नहीं दे पायी। उसने कहा, "दरअसल, वह लोग भी जानते हैं कि वह कितने तुच्छ हैं, इसीलिए बड़े-बड़े फ्लैटों के सपने देखते हैं, घर सजाते हैं। ग्रेट होने का पोज करते हैं। लेकिन असल में किसी खास जगह सिर उठाकर खड़े नहीं हो सकते, अतः अपने घर में ही अपने को वी० आई० पी० जाहिर करने की कोशिश करते हैं।"

अरुण चुप हो गया।

उर्मि ने अपनी बात जारी रखी, "तुम लोगों के पास नारा बुलन्द करने लायक कोई परिचय नहीं है न, इसी से तुम लोग उन्हें तुच्छ लगे। वह लोग यह नहीं जानते कि कोई कितना भी छोटा हो, लेकिन सबके पास कम-से-कम अपना-अपना कमरा तो है, जो उनकी तरह ही छोटा भले ही हो, लेकिन वह उनका निजी कमरा है।"

अरुण ने कहा, "अच्छा, छोड़ यह बात, हम लोगों को तुझसे तो नाराजगी नहीं है, उर्मि! वैसे, सारा दोष सिर्फ उन लोगों का ही नहीं है, थोड़ा-बहुत हम लोगों का भी है। हम लोग ही उन लोगों के साथ अपने को फिट नहीं कर पाते।"

उर्मि पल भर को चुप हो रही, फिर कहा, "जानता है, कभी-कभी मुझे अपने पर ही गुस्सा आता है! कहने को मैं फ्री हूँ, लेकिन मेरी आजादी, मेरे लिए कितनी बड़ी यन्त्रणा है, यह तू नहीं जानता।"

अरुण को उसकी बातें जैसे समझ में नहीं आ रही थीं। वह अवाक् आँखों से उर्मि के चेहरे की तरफ देखता रहा।

उर्मि शिथिल आवाज में बताने लगी, "कॉलेज की ये लड़कियाँ देखने में कितनी मॉडर्न होकर घूमती-फिरती हैं, उधर घर में ब्याह की तोड़-जोड़ भी चलती रहती है। बाहरी लोग जब उन्हें देखने आते हैं,

तो वह घरवालों पर काफी बिगड़ती-बिफरती भी हैं, लेकिन फिर खुश-खुश ब्याह के पटरे पर बैठ जाती हैं। लेकिन तू सोच सकता है, मैं कितनी परेशान हूं ? भइया-भाभी मेरी खिल्ली उड़ाते हैं। भाभी पूछती हैं, 'धनबाद कित्ती दूर है, उर्मि रानी ?' भइया कहते हैं, 'भई, कम-से-कम हम लोगों को तो एक महीने की नोटिस जरूर दे देना।' हालांकि जिसके बारे में वह इतने निश्चिन्त हैं, वही माइनिंग-इंजीनियर क्या अपने मन की थाह लेने देता है ?"

अरुण को कोई जवाब नहीं सूझा।

उर्मि की आवाज भर्रा आयी, "भइया-भाभी, नाते-रिश्तेदार, सभी उसे जानते हैं और निश्चिन्त हैं। लेकिन उस आदमी को कैसे बांध रखूं यह न मेरी समझ में आता है और न मुझे इसका भरोसा है।"

अरुण उर्मि के बारे में कितना निश्चिन्त था !...उस दिन की बात याद करते हुए अरुण की आंखों के आगे उसका वह असहाय चेहरा तैर गया।

लेकिन वही उर्मि आज और असहाय हो आयी है। उसका चेहरा बिल्कुल बेजान लग रहा है।

अरुण ने दो-चार हल्की-फुल्की बातें करके उसे हंसाने की कोशिश की।

"जानती है, उर्मि, उस दिन तेरे भइया के हाथों एस० ओ० एस० का खिताब पाकर, मैं तो बिल्कुल नर्वस हो गया था।"

उर्मि के चेहरे पर हंसी आते-आते अचानक उदासी से बुझ गयी। वह उसी तरह खामोश हो रही।

थोड़ी देर बाद उर्मि ने चुप्पी तोड़ने के लिए हंसने की कोशिश की, लेकिन उसकी हंसी आंखों से आंसू बनकर बरस पड़ी। रेस्तरां का बैरा दूर खड़ा-खड़ा, उर्मि की तरफ विस्मित निगाहों देखता रहा।

अरुण को अजीब लग रहा था। दोपहर के वक्त रेस्तरां में उसके अलावा और कोई नहीं है, यह देखकर निश्चिन्त हो आया।

उर्मि की आंखों में आंसू डबडबा आए। वह मानो कुछ कहना चाह रही हो, लेकिन कह नहीं पा रही हो।

उसने अपनी रुलाई दबाते हुए, भर्रायी हुई आवाज में कहा, ररुण, तुझसे मुझे कोई शर्म नहीं ! एक तू ही है, जिससे मैं निःसंकोच कर कुछ भी कह-सुन सकती हूँ। सुन···मैं···माँ बननेवाली हूँ।"

"माँ ?" अरुण का सिर चकराने लगा, "तू क्या कह रही है, र्मि ?"

अगले ही क्षण उसे सारी बात समझ में आ गयी और वह एक-ारगी चुप हो आया। थोड़ी देर बाद बेहद टूटी और शिथिल आवाज i कहा, "तू इतनी बुद्धू है, उर्मि ? तूने इतनी बड़ी बेवकूफी कर डाली ?"

उर्मि अरुण से आँखें नहीं मिला पा रही थी। अरुण में भी उसकी आँखों की तरफ देखने की ताकत नहीं है।

अरुण ने शर्म से सिर झुकाए हुए, बेहद स्थिर आवाज में पूछा, "कौन है ? एस० के० एम० ?"

"छिः छिः···तूने यह कैसे सोच लिया, अरुण ?"

अरुण अपने झूठमूठ के शक पर खुद ही सकुचा उठा। कहा, "तू तो कहा करती थी, माइनिंग-इन्जीनियर बेहद शरीफ है ! उसके जैसा कोई नहीं है। तुझे तो उस पर बेहद भरोसा था न ?"

उर्मि के चेहरे पर बेजान-सी हँसी झलक आयी। लेकिन वह अरुण से आँख मिलाकर बात नहीं कर पा रही थी। वह बेकार ही चाय की प्याली में चम्मच हिलाती रही। कहा, "तू नहीं जानता अरुण। आदमी सिर्फ अपने-आप से डरता है। असल में हमें अपने-आप पर ही भरोसा नहीं होता।"

अरुण ने प्रश्नभरी निगाहों से उसकी ओर देखा।

उर्मि को उसके सवाल पर मानो हँसी का दौरा पड़ गया, "तुझे नहीं पता तू क्या कह रहा है अरुण? जो आदमी जान-बूझकर मुझसे कतराकर निकल जाना चाहता है,···तो क्या मुझमें इत्ता-सा भी आत्म सम्मान नहीं है ?···नहीं···नहीं, मैं उसे जरा-सा भी दोष नहीं देती कसूरवार तो दरअसल मैं हूँ···सिर्फ मैं ?"

"लेकिन अब···?" अरुण ने आँखों ही आँखों में कोई खामोश-स

सवाल किया।

उर्मि उसके उत्तर में डबडबायी हुई आँखों से उसकी तरफ देखती रही।

थोड़ी देर को चारों ओर मौन नीरवता छा गयी।

अरुण ने ही बात शुरू की, "क्या जाने···" कहते-कहते वह अचानक ही चुप हो गया। टिकलू की बात याद आ गयी, "चंचल दा की बात याद है, अरुण? चंचल राय? हम लोग उन्हें चंचल दा कहा करते थे। आजकल वह खूब पैसा पीट रहा है। उस दिन अचानक मुलाकात हो गयी···"

अचानक उर्मि की आवाज सुनाई दी, "तू मेरे साथ है न, अरुण? बस, मुझे इतना ही जानना था! इसके अलावा मैं कुछ नहीं जानती··· कुछ नहीं जानती।"

अरुण ने हाथ बढ़ाकर उर्मि की हथेलियाँ अपनी मुट्ठी में ले लीं, "हाँ, हाँ, मैं हूँ, उर्मि! मैं हमेशा तेरे साथ हूँ।"

अरुण ने फिर कई सवाल किये।

उर्मि ने जवाब में सिर हिला दिया। फिर अपना सफ़ेद पर्स खोलकर एक मुड़ा-तुड़ा कागज निकालकर अरुण को पकड़ा दिया।

अरुण ने अन्दाज से समझ लिया। उसे खोलकर नहीं देखा। उसने वह कागज चुपचाप अपनी जेब में रख लिया।

उर्मि मानो बेहद निश्चिन्त हो आयी।

अरुण ने कहा, "देख, इस बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं है, फिर भी···"

अचानक रुनू के सन्दर्भ में टिकलू का वह मजाक याद आ गया, 'अबे, कभी उसकी जरूरत पड़े, तो मुझसे कहना।' लेकिन टिकलू की बात उर्मि को नहीं बताई जा सकती। टिकलू से भी उर्मि के बारे में बातचीत नहीं की जा सकती। ये बातें अगर टिकलू को मालूम हो गयीं तो वह ऐसा चेहरा बनाएगा मानो कोई जंग जीतकर आया हो। कहेगा, 'मैंने कहा नहीं था? मैंने तो बहुत पहले ही कहा था।'

—अरुण ने कुछ पूछा है···

उर्मि ने धीमे-से जवाब दिया।

अरुण ने फिर कुछ कहा है···

उर्मि ने फिर बुदबुदा कर जवाब दिया है।

मानो वह सेशन-कोर्ट के इजलास में खड़ी हो और बहुत दिनों के लगातार सवाल-जवाब के बाद आज आखिरी फैसला सुनाया जाने वाला हो। उसने अपनी उत्सुक निगाह अरुण के चेहरे पर टिका दी।

अरुण ने उसे तसल्ली दी, "मैं हूँ, उर्मि! मैं तेरे साथ हूँ।"

उर्मि की आंखों से आंसू झरने लगे। उसकी रोती हुई आंख मानो हँस दी हों, "जानती हूँ, अरुण! मुझे पता था···।"

लेकिन अरुण के सिर पर दूसरी चिन्ता सवार हो गयी। उसका चेहरा बुझ आया। उर्मि भी किसी दुविधा में थी अतः उसका भी चेहरा भावहीन हो आया। उनकी चाय ठण्डी हो चुकी थी। उस पर पपड़ी जम गयी थी। दोनों ने चाय की प्यालियों को हाथ भी नहीं लगाया। ठंडी और जमी हुई चाय की तरह ही, उनका चेहरा भी जम गया था।

घर लौटते हुए, अकेले में अरुण के दिमाग में बहुत सारी दुश्चिन्ताएं चक्कर काटती रहीं। उसे लगा, उसका सिर घूम रहा है, लेकिन कहीं से वह अपने होने की सार्थकता भी महसूस कर रहा था। उसे लगा वह सब लोगों से अचानक ही बहुत ऊपर उठ गया है। विक्टोरिया-मेमोरियल के गुम्बद पर खड़ी उस परी की तरह वह भी सिर ऊँचा किए शान से खड़ा है।

उसने सबसे नजर बचाते हुए, आहिस्ते से वह मुड़ा हुआ कागज निकाल लिया। उसे खोलकर एक बार देखा और फिर मोड़कर जेब में रख लिया। कागज पर छोटे-छोटे रुद्राक्ष के दानों की तरह कोई डिजाइन बनी हुई थी। अचानक अरुण ने अपने को भी रुद्राक्ष की माला की तरह विशुद्ध और पवित्र महसूस किया।

···नन्दिनी के ब्याह की नोटिस देने की बात पर टिकलू साले ने रुपए की बात उठायी थी।

हर जगह रुपया! रुपया!

लेकिन उसने क्या सचमुच कोई पाप किया है ? फिर उसके मन में यह कशमकश कैसी है ?

अरुण के खून में क्या अभी तक वही पुराने विवेक, संस्कार, पिछले विश्वास ही घुले-मिले हैं ? वह चाहकर भी अपना पिछला सब कुछ टूक्षा साबित करके उनसे मुक्त क्यों नहीं हो पा रहा है ? वह अपने को समझा-बुझाकर नये-नये विश्वासों के सहारे जीना चाहता है, लेकिन वह अपने मन को इसके लिए तैयार नहीं कर पा रहा है। उफ ! इसी लिए तो हर कोई दोनों सिरों में झुलस रहा है। दर्द सह रहा है।

अरुण को लगा इस देश में जवान होना पाप है। जवानी मानो कोई धूमकेतु हो, अपने कक्ष से उड़ती-उड़ती अचानक दुनियावालों के घर जबरन आ धमकी हो। तभी तो हर कोई साँस रोके इस इन्तजार में होता है कि किसी तरह यह पाप विदा हो तो उनकी जान बचे।

टिक्लू ने कहा था, "कहीं कुछ नहीं है, रे ! हर जगह बस, एक ही चीज की कद्र है···रुपया !"

अरुण को लगा टिक्लू ने सच ही कहा था। रुपए की सचमुच बहुत बड़ी ताकत होती है। उसके अभाव में आज हर कोई उसकी तरह असहाय हो जाता है। अगर रुपये का जोर न होता तो उर्मि भी किसी मुर्दा-घर में चीर-फाड़ के बाद नंगी लाश भर होती। सिर्फ एक मृत देह !

···हाँ, मैं हूँ···। कौन जाने ? इसके लिए···एस० के० एम० तो जिम्मेदार नहीं···? या माइनिंग-इंजीनियर ?···नहीं, मेरा ही दोष था, हुजूर ! कहीं चंचल दा···? छिः-छिः कैसा गन्दा सन्देह ! अटूट प्रेम ! यही कोई विश्वास नहीं। किसी गायनाकोलोजिस्ट की खोज करनी होगी।···खूबसूरत प्रेम।···एइ, अरुण, मैं मर तो नहीं जाऊँगी ? देखूँ,···पता करूँगा। मुझे इस बारे में कोई जानकारी नहीं है···। हाँ, मैं ही उर्मि। असम्भव ! भइया-भाभी कतराने लगे हैं। मैं तेरा साथ नहीं दे सकता उर्मि ! असम्भव ! प्रेम मर गया। एक ही दिन में कई-कई दिनों की मौत हो गयी ! छिः छिः !···हाँ, मैं जानती थी,

अभी हो··· :

अरुण···! अच्छा, ये नन्हे-नन्हे पल यूं पहचाने जाते हैं ? असम्भव ! वह अगर उसकी तरफ बढ़े भी, तो भी वह जानता है कि इन नन्हे-नन्हे पलों में प्रेम भर गया होगा।···अच्छा, घरवालों को बता दूं ? नहीं ! नहीं ! यह कोई खास परेशानी की बात नहीं है ! वह जिन्दा रहेगा ! उसका प्रेम अगर मर भी गया, तो भी वह जिन्दा रहेगा। न्ना···कभी कोई बात खत्म नहीं होती···! कहीं कुछ शेष नहीं होता ! अरुण··· कहीं मैं मर तो नहीं जाऊँगी ? मैं हूँ, उर्मि ! तेरे साथ ही हूँ···अरुण अपने बेतरतीब ख्यालों में भटकता रहा।

जैसे कोई बाजीगर सिर्फ दो हाथों से एक साथ दस-दस गेंदों का खेल दिखा रहा हो, वैसे ही एक साथ असंख्य शब्द अरुण के दिमाग में चक्कर काटते रहे। वह बेहद निरुपाय हो आया। मां की बीमारी चिन्ताजनक हो उठी है। उनके दिमाग में कैन्सर है। कहीं अरुण के दिमाग में भी कैन्सर तो नहीं होने वाला है ? कैन्सर दिमाग को एकबारगी कुतर-कुतर कर खा जाता है ? ना ! वह कैन्सर की बीमारी के बारे में कुछ नहीं जानता। वह तो बस, इतना भर जानता है कि यह एक भयावह शब्द है। उर्मि के मुंह से 'मां बनने' की बात भी बड़ी भयावह लगी थी।

कैन्सर शायद कठफोड़वा पंछी है। दिन के वक्त अपनी चोंच से मिट्टी खोदता रहता है और रात में कठफोड़वा पाखी बन जाता है। कैन्सर का जखम भी दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है। इसे रोका न जाये, तो मौत हो जाती है। निश्चित मौत ! लेकिन इसे रोकने का कोई उपाय भी नहीं है। अरुण को लगा उर्मि को भी कैन्सर हो गया है। आजकल यह जख्म हर इन्सान के दिलो-दिमाग और खून में घुल-मिल गया है। आधुनिक समाज के हर अंग में कैन्सर हो गया है।

टिकलू को यह बात बतायी जाये या नहीं, अरुण सोचता रहा। टिकलू का कोई भरोसा नहीं है। वह कोई बात नहीं पचा सकता। उर्मि के मान-सम्मान का क्या होगा ? स्साला, माइनिंग इन्जीनियर ! अगर वह इस वक्त मिल जाता तो वह उसका खून कर देता और उसके खून के जुर्म में अगर गिरफ्तार हो जाता तो लोग यही अन्दाज लगाते

कि उसने दुश्मनी या ईर्ष्या में उसका खून कर डाला। उर्मि के प्रति, टिकलू के मन में नाजायज लोभ है। हो सकता है, वह बेटा मौके का फायदा उठाना चाहे।···हुँह!···अगर ऐसा हुआ तो वह टिकलू का भी खून कर डालेगा।

अरुण को अचानक रूनू की याद आने लगी। अच्छा, अगर वह टिकलू को सारी बात न बताए, अपने चंचल 'दा से सिर्फ परिचय करा देने को कहे, तो···?···अचानक उसकी निगाह सामने वाले मकान के नेम-प्लेट पर जा पड़ी—डॉ० चपल चन्द्र! अगर वह डॉ० चन्द्र से जाकर कहे कि एक व्यक्ति भयंकर मुसीबत में पड़ गया है···तो? नहीं, नहीं! आदमी को सचमुच बात करने का सलीका नहीं आता। वह भी बात करना नहीं जानता। वैसे किसी से बात करने का कोई उपाय भी तो नहीं है। टिकलू सुनेगा तो स्वाभाविक है कि वह यही सोचेगा कि रूनू माँ बनने वाली है। छि.! छि! रूनू तो खूबसूरत-सी चिड़िया है, जो अपने रंगीन पंख फैलाए सुदूर आकाश में कुलाँचें भरती है। धूप में उसके नीले पंख और चटख लगते हैं। वह उन्मुक्त पंछी को बन्दी नहीं बनाना चाहता। वह तो चाहता है कि वह किसी पेड़ की निचली डाल पर बैठी रहे और वह उसे निहारता रहे या वह उस पर मेहरबान होकर, उसकी तरफ अपना एक नीला पंख फेंक दे और फुर्र से उड़ जाये।

अच्छा, रूनू भी तो ऐसी मुसीबत में फँस सकती थी। हो सकता है अभन ही···। तब तो रूनू की समस्या, अरुण की अपनी समस्या बन जाती। रूनू की खातिर वह सब कुछ कर सकता है—सब कुछ! या हो सकता है कुछ नहीं···। "तू इतनी बुद्धू है, उर्मि?" अरुण ने कहा था। अचानक उसे उर्मि की बात याद आ गयी। उर्मि को जैसे अपने पर ही भरोसा नहीं है। अरुण को भी अपने पर विश्वास नहीं आता। हाँ, खून-मांसवाले इस शरीर का विश्वास नहीं किया जा सकता।

उसने एक रात सपने में रूनू को देखा था।

टिकलू को लगेगा रूनू मुसीबत में फँस गयी है। उसे यह सोचते हुए बहुत बुरा लगा। वह नहीं चाहता कि रूनू के शरीर पर एक बूँद भी

अभी हा···

दाग लगे।

इससे वेहतर है वह अपने-आपको ही बुरा या गलीज साबित कर बैठे। रुनू के सारे अपराध वह अपने सिर ले लेगा। धत्तेरे की! "प्यार-मुहब्बत सब बेकार की बकवास है रे, टिकलू! तुझे नीली साड़ीवाली उस लड़की की याद है, जो अपने बरामदे में खड़ी-खड़ी मुस्कराया करती थी?" उसके फेर में फंसकर उन लोगों ने कितना खुराफात···।

टिकलू, से मुलाकात होते ही अरुण ने भिनभिनाकर सिर्फ इतना-भर कहा, "टिकलू यार, मैं बहुत बड़ी मुसीबत में फंस गया हूं, माँ कसम! भयंकर मुसीबत में।"

दरअसल टिकलू बेहद डरपोक है। अच्छा ही है, वर्ना वह उर्मि को विशुद्ध और पवित्र नहीं रख पाता। उर्मि आखिर उसकी कौन है? कोई नहीं! 'हम सब तो महज पौधे हैं,' अरुण ने सोचा। लेकिन चन्दन-वन में आस-पास खड़े वाकी दूसरे पौधों से भी चन्दन की खुशबू आने लगती है न···।

टिकलू अरुण की बात सुनकर इतना डर गया कि वह उसके साथ जाने की हिम्मत नहीं कर पाया। उसने फोन पर डॉ० चन्द्र का पता दे दिया।

शाम को···अँधेरा होने के बाद दोनों डॉ० चन्द्र के बरामदे में से होकर, उनके कमरे में दाखिल हुए।

अरुण का परिचय पाते ही उन्होंने उर्मि की तरफ देखा। उसकी रजनीगन्धा जैसी छरहरी देह की तरफ प्रश्नभरी निगाहों से घूरते रहे। उसके बाद नर्स को आवाज देकर कहा, "इन्हें अन्दर ले जाओ।"

"कहीं मर-वर तो नहीं जाऊँगी, अरुण?" उर्मि ने हँसने की कोशिश की, लेकिन उसकी हँसी में भय की छाया उतर आयी।

उसने अन्दर जाते हुए एक बार पलट कर अरुण की तरफ देखा।

डॉ० रुद्र ने अरुण की तरफ एक कागज बढ़ाते हुए कहा, "इस पर दस्तखत कर दीजिए।"

"दस्तखत ?" अरुण को जैसे कुछ समझ नहीं आया।

उसने एक बार पूरा कागज पढ़ डाला, फिर आँख मूँद कर दस्तखत कर दिया। उसके बाद धीमी चाल में बाहर निकल आया। रास्ते पर खड़े-खड़े उसने नर्सिंग होम की तरफ दुबारा निगाह डाली।

नर्सिंग होम के ठीक सामने ही एक 'बार' है। इस वक्त वहाँ भीड़ इकट्ठी होने लगी है। पान की दुकान पर भी शराबी और लम्पटों की भीड़। एक चीप किस्म की लड़की अपने कूल्हे मटकाती हुई बेहद अनमने भाव से खाली टैक्सी की तरह, धीमी गति से फुटपाथ पर टहल रही है। उसे देख कर लगा कि अगर कोई उसकी तरफ बढ़ आए तो वह मीटर-डाउन टैक्सी की तरह अपने को दौलतमन्द समझने लगे।

अरुण के सीने में दबी-घुटी रुलाई और भय का अजीब-सा शोर उमड़ आया। वह मानो अभी, इसी दम टूट-फूटकर बिखर जायेगा।

नर्सिंग होम के उस सीलन-भरे अँधेरे में नर्स का चेहरा निर्विकार लग रहा था।

"कहीं मर-वर तो नहीं जाऊँगी, अरुण ?"

वर्मि के सवाल पर डॉ० रुद्र हल्के से हँसे। कहा, "डर की कोई बात नहीं है।"

लेकिन उन्होंने उससे दस्तखत क्यों करवाया ? उस कागज पर दस्तखत करने के पहले तक, वह टिकलू को डरपोक समझ रहा था। उसे भी बेचैनी हो रही है। अच्छा, क्या वह कागज वापस नहीं लिया जा सकता ?

उसे याद आया, उस कागज पर दस्तखत करते हुए उसके हाथ काँप गये थे।

अरुण मन-ही-मन अपने को हिम्मत बँधाता रहा, अरे, ऐसी कौन-सी बड़ी बात हो गयी ? मामूली-सा दस्तखत भर ही तो किया है। सिर्फ दस्तखत करने से कोई बात एकदम सच्ची नहीं हो जाती। असल में यह महज एक खिलवाड़ है—स्टेज पर खेले जाने वाले नाटकों के मियाँ-बीवी के रोल की तरह। उन दोनों ने भी, सिर्फ एक-दो दिन के

लिए पति-पत्नी का स्वांग रचाया है। इससे उर्मि की सारी मुसीबत दूर हो जायेगी। वह सब-कुछ दुबारा पा लेगी।

उर्मि अरुण की दोस्त है। उसमें इतना दम है कि वह उर्मि को किसी भी मुसीबत से रिहाई दिला सकता है।

लेकिन वह अपने मन का भय क्यों नहीं हटा पा रहा है? सारी पृथ्वी मानो उसके माथे पर घहरा कर···उसे तहस-नहस कर डालने को आतुर हो उठी हो।

उसे याद नहीं है कि कब और किस बस में चढ़ गया और कैसे घर पहुँच गया। रास्ते में उसे एक भी आदमी नजर नहीं आया··· कहीं कुछ भी नहीं दिखा। उसके दिमाग में एक गहरी दुश्चिन्ता चक्कर काटती रही।

आज उसने कागज पर दस्तखत करके स्वीकार किया है कि वह उर्मि का पति है।

डॉ० रुद्र ने तो कहा ही है, डर की कोई बात नहीं। लेकिन अगर सचमुच डर की कोई बात नहीं थी, तो उससे दस्तखत क्यों करवाया? सब अपने-अपने को बचाकर चलते हैं! अच्छा, उर्मि अगर मर गयी तो···? उफ, अरुण का दिमाग ब्लैंक हो आया। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। अविनाश बाबू ने सर्टिफिकेट के लिए अपने लैटरहेड वाला कागज पकड़ाते हुए कहा था, "कोई जाँच-पड़ताल नहीं करता···।" डॉ० रुद्र ने कहा है—डर की कोई बात नहीं। अरुण निरा बेवकूफ है! बुद्धू है। उसने जान-बूझकर अपने सिर जोखिम मोल ले लिया। शायद उस जैसे लोग ही जोखिम मोल लेते हैं। वैसे, उन जैसों लोगों के लिए खतरा उठाने के अलावा और कोई राह भी नहीं होती। अविनाश बाबू या डॉ० रुद्र जैसे लोगों को खतरा उठाने की जरूरत नहीं पड़ती। वह लोग तो सफल व्यक्ति हैं। जो सफलता का मुँह देख चुके हैं, वह अपने को बचाकर चलते हैं।

अरुण को लगा उसकी सारी देह थर-थर काँप रही है। शायद उसे तेज बुखार हो आया है या सीने में गहरा घाव हो गया है—शायद कैन्सर! हां, जैसे कोई तक्षक सांप उसके फेफड़े, अंतड़ियों और

पसलियों को कुतर-कुतरकर चबा रहा है।

अरुण घर लौट आया। उसे बिल्कुल भूख नहीं है। सुबह ही जो थोड़ा-बहुत खा-पीकर निकला था। वह भी अच्छी तरह नहीं खाया गया। इधर कई दिनों से जैसे उसकी भूख ही मर गयी है। अब तो जिन्दा रहने की भूख भी खत्म होती जा रही है।

वह माँ के कमरे में कुछेक मिनट रहकर लौट आया। आज उसका माँ के पास बैठने, उसके माथे पर हाथ फेरने का भी मन नहीं हुआ। एक अनजाना भय उसे अपनी माँ से अलग कर गया था। इस वक्त उसे सिर्फ डर लग रहा है।

इस वक्त वह किसी आदमी को सहन नहीं कर पा रहा है। मीलू, बापू, छोटी मौसी, दिदिया···कोई भी नहीं! यहाँ तक कि रसोइये की शक्ल भी अच्छी नहीं लगी। मोना माँ ने उससे कुछ पूछा था, उसने कोई जवाब नहीं दिया।

···अच्छा उमि बच जायेगी न? अगर मर गयी, तो सारी दुनिया जान जायेगी! उसके नाम पर थू-थू करेगी।

मीलू सोचेगी, 'छिः छिः, भइया ऐसा नीच है! उस दिन ऊपर से कितनी मासूमियत से हँस-बोल रहा था?'

दिदिया कहेगी, 'अरे, तू क्या कह रही है, मीलू? उस दिन उसे, माँ के माथे पर हाथ फेरते हुए देखकर, मैं तो सोच रही थी कि···'

बापू का भी कोई भरोसा नहीं है। वह मारे शर्म और ग्लानि के, अपने शेविंग मार्का उस्तरे को रगड़-रगड़कर तेज करने में व्यस्त हो जायेंगे और गुस्से में आकर उसका गला ही उतार लेंगे।

माँ बेहद तकलीफ भुगत रही है। अब वह नहीं बचेंगी।···अच्छा है, वह मर ही जायें···जल्द-से-जल्द दम तोड़ दें। सब लोग उनके शोक में डूब जायेंगे और जान भी नहीं पायेंगे कि उनका बेटा आखिर अपराधी है! एक खूनी आसामी है!

टिरन्तु हँस देगा, 'मुझे पता था रे, सब पता था! ऐसा सीधा बनता था मानो तली हुई मछली भी उलटकर खाना नहीं जानता! हुँहः!!'

अच्छा, उर्मि अगर मर गयी, तो पुलिस सबसे पहले उसके घर आ धमकेगी ! डॉ० रुद्र तो उसका दस्तखत किया हुआ कागज सामने कर देंगे। उस कागज पर उर्मि के पति का दस्तखत है। उसकी हेल्थ के लिए यह ऑपरेशन जरूरी था···। पति ?···पति नामक जीव की खोज होगी और लाश पोस्टमॉर्टम के लिए भेज दी जायेगी !

उफ ! सब-कुछ कितना भयावह होगा ! अरुण अब आगे कुछ नहीं सोच पाया। इतना छोटा-सा कलेजा ! उसका दिल आखिर कितना बोझ सहे ? दुनिया-भर का अपमान ! धिक्कार !!

अरुण को अपने दिल की धड़कन तक साफ सुनाई देने लगी। पहले तो इतनी तेज धुकधुकी नहीं होती थी।

अरुण मेज पर सिर टिकाकर बैठ गया। दिदिया ने आकर उसके माथे पर हाथ रखकर कहा, "जा अरुण, माँ के मुँह में जरा गंगा-जल डाल दे।" कहते हुए वह अरुण के तख्त पर लोट गयी और बिफरकर रो पड़ी।

अरुण भागता हुआ माँ के कमरे में आया। माँ की नब्ज बन्द हो चुकी थी। वह शायद बहुत पहले ही दम तोड़ चुकी थीं।

लेकिन अरुण को दुःख नहीं हो रहा है। उसकी माँ तकलीफ और यन्त्रणाओं की नदी पार कर गयी हैं।

"···स्काउण्ड्रल कहीं के ! तुम···आप बराए मेहरबानी मुझे कभी फोन न करें, वर्ना आपके खिलाफ मुझे पुलिस में रिपोर्ट लिखानी होगी।" अरुण को जैसे रूनू की आवाज सुनाई दी।

अरुण एकबारगी रो पड़ा। उसकी आँखों से आँसू बह निकले और वह बिलख-बिलखकर रोता रहा।

छोटी मौसी भी रो रही थी। अरुण की पीठ सहलाते हुए कहा, "रो मत अरुण, ऐसे नहीं रोते, पगले ! माँ हमेशा तो नहीं रहती, रे !"

मीलू ने भी रोते-रोते कहा, "भइया, तू रो मत, भइया !"

कई और लोग भी तसल्लियाँ दे रहे थे। अरुण को होश नहीं था। वह बिलख-बिलखकर रोता रहा और मन-ही-मन कहता रहा, "रूनू,

हाँ, मैं स्वार्थान्ध हूँ। मैं लम्पट हूँ। मैं उर्मि का पति [redacted]। अपराधी हूँ। हाँ, मैं खूनी आसामी हूँ, लेकिन कम-से-कम तुम मेरी बेइज्जती न करो, स्नू! ···स्नू! ···हुजूर! धर्मावतार! मैं कुछ नहीं जानता था। मेरी माँ सख्त बीमार थी। वह उसी दिन मर जायेगी, मुझे पता था। जरा मेरी मनःस्थिति पर गौर फरमाने की कोशिश करें, हुजूर। उर्मि मेरी दोस्त थी···वही मुझे ले गयी थी। उसी ने मुझसे उस कागज पर दस्तखत करने का आग्रह किया था। हुजूर! मैंने सोचा उसे बचा दूँगा तो शायद मेरी माँ भी बच जायेगी। मैं उसे मारना नहीं चाहता था, माई लॉर्ड! मैं तो अपनी माँ को बचाना चाहता था।

गंगा मइया, मेरे सारे पाप धो दो। मुझे स्नू के काबिल बना दो···माँ, मैं फिर जन्म लूँगा। तुम रहोगी न? मैं तुम्हारी ही गोद में आऊँगा। देखना, इस बार मैं तुम्हें अब नहीं सताऊँगा। तुम्हारी सारे दुःख-तकलीफ मैं खुद सह लूँगा।

···उर्मि, तू क्या सचमुच मर चुकी है? तू मेरा इन्तजार करना। दरअसल हम लोग बहुत अफरातफरी में, अपेक्षित समय से बहुत पहले ही दोस्त बन गये थे। कुछ दिनों बाद हम दुबारा मिलेंगे, फिर से दोस्त होंगे। देखना, लोग हमारी बात समझ सकेंगे। हमें अण्डरस्टैंडिंग भी देंगे!

स्नू···प्यार के सामने में न्याय-अन्याय के इन्साफ में मत उलझो। आओ, चलो, हम उस गुफा के किनारे बैठें! मैं तुम्हारी ग्रीवा, बालों, और वक्ष पर रक्त-पलाश की माला सजा दूँगा। मैं तुम्हारी उन पलक-पाँखुरियों को होले-से चूम लूँगा। मैं तुम्हारे वक्ष के हिमशिखरों में मुँह डुबाकर राहत महसूस करूँगा।···

वरुण गंगा में डुबकियाँ लगाकर बाहर निकल आया। लोगों के पीछे-पीछे चलता हुआ घर लौट आया।

उसका मन अब थोड़ा हल्का लग रहा था। उछलती हुई गंगा नदी के अघोर पाटों की तरह वह कोमल हो आया। उन्मुक्त आकाश में उड़ानें भरते हुए पंछी की तरह उसने अपने को हल्का महसूस किया। उजले-धुले वस्त्र की तरह निर्मल और स्वच्छ!

···अचानक उर्मि का ध्यान आते ही उसकी धड़कन तेज हो गयी। अच्छा, उर्मि कमजोर दिल की तो नहीं है ? उसे क्लोरोफॉर्म···क्लोरोफॉर्म या एनेस्थीशिया···उसने सहन कर लिया होगा न ?

घर के लोग मातमपुर्सी की औपचारिकताओं में व्यस्त थे। समूचे घर में सन्नाटा छाया हुआ था। किसी के मुँह में जैसे जुबान ही नहीं थी। किसी ने कुछ बोलने की कोशिश भी की है तो शब्द हवा में फुसफुसाहट बनकर बिखर गये।

मीलू, दिदिया, छोटी मौसी सबकी-सब शोक-सन्तप्त उदास बैठी हुई थीं।

अरुण के बापू पत्थर की तरह निर्विकार दिख रहे थे।

अच्छा, उर्मि की कोई खबर क्यों नहीं मिली ? लेकिन खबर कौन देता ? उर्मि शायद अभी नर्सिंग होम में ही हो। अभी शायद दो-एक दिन और लगेंगे। अगर वह घर लौटी होती, तो अपने भाई के मारफत खबर जरूर भेजती। अरुण को लगा, उससे बहुत बड़ी गलती हो गयी। उसे उर्मि से कहना चाहिए था कि घर लौटते ही खबर भिजवा दे। खैर, उर्मि का भी तो कोई फर्ज था। वह खुद भी तो जानती होगी कि चिन्ता के मारे उसकी नींद हराम होगी।

अरुण ने सोचा वह डॉ० रुद्र को फोन कर ले या फिर वह खुद ही, इन कोरे कपड़ों में ही उसे देखने चला जाये ?···न्ना···उसे बहुत डर लग रहा है। कौन जाने कल रात ही उर्मि की मौत हो चुकी हो ?

इस तरह की खबरें वह रोज ही अखबारों में पढ़ता है। कोई निश्चित रूप से कुछ नहीं बता सकता। कोई यकीन भी नहीं दिला सकता। मौत और किस्मत के आगे विज्ञान भी लाचार है।

अरुण का मन हुआ, वह एक बार नर्सिंग होम हो आये। सिस्टर से ही पूछ आये, 'उर्मि अच्छी है न ?'

उसकी आँखों के आगे नर्सिंग होम का अँधेरा बरामदा नाच उठा। छोटे-छोटे अँधेरे कमरे, गन्दा-सा बेड, मुर्झायी हुई शक्लें···कैसा रहस्यमय सन्नाटा ? चारों ओर अजब-से खौफ का माहौल ! नर्स, मरीज और डॉक्टरों की फुस्फुसाहटें। हर आहट पर सिर्फ चौंकाता हुआ

आतंक। उस वक्त तो उस अँधेरे में भी एक उम्मीद बँधी थी—जिन्दा रहने का मन्त्र सुनायी दिया था। लेकिन···सिर्फ भय ! खौफ !

अरुण ने उस दिन का अखबार उठा लिया और निगाहें दौड़ाकर जैसे कुछ खोजता रहा। कहीं कोई छोटी-सी खबर या बड़े-बड़े हर्फों में कोई सनसनीखेज रहस्योद्घाटन ! अगर उर्मि कल मर गयी होती, तो आज अखबारों में उसकी सूचना जरूर होती। कौन जाने वह मरी न हो, जिन्दा हो ! लेकिन उर्मि अगर जिन्दा होती तो अरुण को खबर जरूर देती। लेकिन वह किसके हाथ खबर भिजवाती ? उर्मि तो अभी भी उस अँधेरे रहस्यमय कमरे में लेटी होगी।

अच्छा, उर्मि अगर सचमुच मर गयी हो ? डॉ० रुद्र ने पुलिस को भी खबर कर दी होगी या पुलिस को खुद ही खबर हो जायेगी ? अरुण को इन सब गोल-माल गोरखधन्धों के बारे में कोई जानकारी नहीं है। उसे यह भी नहीं मालूम कि इन मामलों में कौन-से नियम-कानून लागू होते हैं।

उसने आँख मूँद कर मन ही मन प्रार्थना की, उर्मि की जान बच जाये। उर्मि बच जाये।

गंगाधार में माँ का अस्थि-भस्म बहाकर, जब वह नहाकर बाहर निकला तो उसने फिर एक बार भगवान् से प्रार्थना की, उर्मि की जान बच जाये प्रभु ! वह सही सलामत लौट आये।

"सुनिये, यह दस्तखत आपका ही है ?" पुलिस के आदमी ने उसके सामने वह कागज बढ़ा दिया है। "लेकिन पता चला है वह आपकी बीवी नहीं है। आपने डॉक्टर को अपना झूठा परिचय दिया था। वह लड़की तो अविवाहिता थी। आप कानून की नजरों में अपराधी हैं। आपको गिरफ्तार किया जाता है।"

···नहीं, नहीं, वह उसकी खोज-खबर लेने नहीं जायेगा। हो सकता है, पुलिस ने सारा नर्सिंग होम घेर लिया हो। लेकिन उस कागज पर अरुण ने अपना पता नहीं लिखा था। उर्मि ने तो कोई पता नहीं दे दिया ? हो सकता है उसने अपने घर का या फिर कोई झूठमूठ का पता लिखवा दिया हो। फिर भी पुलिस उसे नहीं छोड़ेगी। उसे खोज

निकालने की हर सम्भव कोशिश करेगी। हो सकता है, पुलिस उसका पता न लगा सके। लेकिन···पुलिस आखिर पुलिस है। वह उसे जरूर ढूंढ़ निकालेगी। डॉ० रुद्र टिकलू का पता जरूर जानते होंगे। टिकलू तो हर वक्त चंचल 'दा, चंचल 'दा का नाम रटा करता है। लेकिन यह भी हो सकता है कि वह टिकलू का घर न पहचानता हो।

अरुण को लगा वह लोग उसकी तलाश में समूचा कलकत्ता छान डालेंगे। अरुण कौन है? कहां रहता है?

···अचानक वह किसी की आहट सुनकर चौंक उठा। वह बाह दरवाजे की तरफ बढ़ा। उसके दरवाजे पर एक काले रंग की पुलिस वैन क्यों खड़ी है?

"अरुण—!" किसी ने उसे दुबारा आवाज दी।

अगले ही क्षण सुजीत को देखकर उसका दिल धक् से रह गया वह किसी बुरी आशंका से कांप उठा : यानी टिकलू को भी गिरफ्ता कर लिया गया है? अब ये लोग अरुण को गिरफ्तार करने आये हैं अब बच रहा सिर्फ लांछना और धिक्कार! अरुण का मन हुआ व इसी दम वहां से भाग खड़ा हो और आत्महत्या कर ले। लेकिन व आत्महत्या करेगा कैसे? इस वक्त तो उसे आत्महत्या का भी को तरीका याद नहीं आ रहा है।

अरुण सियाह चेहरा लिये हुए आगे बढ़ आया।

"मैंने तो आज ही सुना···" सुजीत ने विपन्न आवाज कहा।

सुजीत ने क्या सुन लिया?

"यूं उदास मत हो अरुण," सुजीत ने कहा, "किसी की भी म हमेशा जिन्दा नहीं रहती। देख न, मेरी मां तो तभी···जब मैं सिप पांच साल का था।"

अरुण के मन का खौफ, आतंक पसीना बनकर बह गया। व पसीने से नहा उठा। उसके माथे पर भी पसीने की बूंदें चमक उठीं।

उफ! कितनी राहत मिली! पुलिस-वैन हॉर्न बजाती हुई गुज गयी। उसे ख्याल नहीं था कि वह वैन तो रोज ही इसी रास्ते

आती-जाती है।

"चल सुजीत, एकाध सिगरेट पी जाये!" अरुण ने कहा। इन मातमी कपड़ों में सिगरेट पीने से लोग सोचेंगे, उसे माँ के मरने का कोई दु:ख नहीं! माँ के लिए जितना कुछ दु:ख, शोक और कसक थी, वह किसी खौफ के घेरे में कैद हो गयी है।

उर्मि! उर्मि जैसे उसके समूचे तन-मन से चिपक गयी है। इस वक्त वह रूनू को भी सहन नहीं कर सकता। अब तक वह टिकलू के प्रेस में फोन करते-करते परेशान हो उठी होगी, या सोच रही होगी कि अरुण उसे भूल गया।

...ना! अभी वह रूनू से भी बात नहीं कर पायेगा। अगर कहीं सचमुच ही उर्मि मर गयी हो। अगर वह सचमुच ही गिरफ्तार कर लिया जाये, तो वह क्या सोचेगी? वह सोचेगी कि वह स्काउण्ड्रल और लम्पट था। उसे यह सोचते हुए अपने पर शर्म आने लगी।

अरुण ने अपने लिए कुछ नहीं चाहा था। वह तो सिर्फ उर्मि को कलंक और मृत्यु से बचाना चाहता था। एक ज़रा-सी गलती के लिए उर्मि इतना बड़ा जुर्माना क्यों भरे? 'मैं विशुद्ध और पवित्र हूँ!' उर्मि की इस बात पर उसे जैसे दुबारा यकीन होने लगा। हाँ, जो सचमुच पवित्र होते हैं, वही ऐसी छोटी-मोटी भूलें कर बैठते हैं। जो अपवित्र होते हैं, उनसे कभी कोई गलती नहीं होती। वह हमेशा सतर्क रहते हैं।

जो दरअसल पवित्र होते हैं, वही नदी या विक्टोरिया या लेक के किनारे अँधेरे एकान्त में, आवेग के किसी उद्दाम क्षण में, किसी शरीर को प्यार कर बैठते हैं। जो शुरू से ही अपवित्र हैं, उनके लिए तो कलकत्ते शहर के तमाम होटलों के दरवाजे खुले पड़े हैं।

लेकिन इस वक्त यह उपदेशात्मक बातें उसे अच्छी नहीं लग रही हैं। अपनी बात किसी को समझायी भी नहीं जा सकती। अरुण सोचता रहा—उन्हें किसी ने नहीं समझा, कोई समझेगा भी नहीं। दुनिया-भर के बड़े-बूढ़ों, असफल प्रेमियों, समाज, सरकार के हाथों में सिर्फ एक ही रंग होता है—'कालिख का रंग'। वह लोग दुनिया की हर बात पर

कालिख पोत देना चाहते हैं। इसीलिए वह लोग अँधेरे से कतराते हुए चलते हैं···काला चश्मा पहनते हैं। ताकि अँधेरे में कुछ दिखाई न दे, कुछ खोजना भी न पड़े। ऐसे लोग दुनिया की हर काली चीज को नजरअन्दाज करते हुए चलते हैं, क्योंकि काले पर काला रंग कभी नहीं चढ़ता। अतः उनकी दुश्मन नजर हमेशा उजाले और शुभ्रता पर लगी रहती है।

"देख तो सुजीत!" अरुण ने हाथ दिखाते हुए कहा, "मुझ पर कोई मुसीबत तो नहीं आनेवाली है?" फिर सिगरेट का पैकेट उलट कर उस पर अपनी जन्म-पत्री बनाते हुए कहा, "अच्छा···ले, जरा इसे देखकर बता तो, कोई डर-वर की बात तो नहीं है?"

कभी यही अरुण सुजीत का मजाक उड़ाता था। आज उसकी तरफ ऐसी सहमी हुई निगाहों से देखा, मानो सुजीत कोई भविष्य-द्रष्टा ऋषि-मुनि हो।

सुजीत अगर अपनी जुबान हिला दे तो उसके माथे का कलंक धुल जायेगा। इस वक्त जैसे वही इस मुसीबत से रिहाई दिला सकता है। कैसा अधःपतन है। लड़के की माँ मर गयी है और जरा इसकी करतूतें तो देखो।

अरुण को लगा सारी दुनिया ही उसका मजाक उड़ाने पर उतर आयी है।

माँ की एक छोटी-सी तस्वीर थी। बड़के मामा उसे बड़ा करवा लाये।

तस्वीर देखकर दिदिया ने कहा, "देख रे अरुण, माँ की तस्वीर देखकर लगता है, उन्हें अन्दर-ही-अन्दर सचमुच तकलीफ़ थी। सारी तकलीफ़ उनके चेहरे पर उभर आयी है।"

मोलू ने तस्वीर देखकर कहा, "सच्ची रे, दिदिया! माँ को देख-कर कभी ऐसा नहीं लगा, तस्वीर में उनका दर्द बिलकुल स्पष्ट है।"

अरुण भी उस तस्वीर की तरफ एकटक देखता रहा। वही परिचित चेहरा! लेकिन उस तस्वीर में जाने ऐसा क्या है, जो उसने इससे पहले

कभी नहीं देखा था। उसे भी यही लगा। सच ही, उस तस्वीर में माँ उतनी हँसमुख नहीं लग रही है। अरुण को ख्याल नहीं पड़ रहा है कि उसने अपनी माँ को कभी हँसते हुए देखा भी था या नहीं।

सचमुच माँ को बेहद तकलीफ थी—अरुण सोचता रहा। दरअसल हर किसी के मन में बड़ी-बड़ी तकलीफें रहती हैं, लेकिन उन्हें कोई देखने या समझने वाला नहीं होता।

बापू के सीने में भी बहुत सारे दु:ख-दर्द हैं। लेकिन उन्हें देखकर, वह लोग कुछ समझ पा रहे हैं? जरा भी नहीं! माँ की मौत पर उसने बापू की आँखों से झर-झर आँसू बहते देखे हैं। उसके बाद से ही वह बिल्कुल चुप हो गये हैं, लेकिन क्रिया-संस्कार में, जरा-सी भी त्रुटि नहीं होने दी है। वह खुद खड़े होकर जरूरी निर्देश देते रहे। अपने हाथों से माँ का पलंग सजाया, तमाम विधि-कर्मों को बड़ी आस्था से पूरा किया है। वह संस्कार के सारे विधि-विधान निभा रहे हैं।

दरअसल ये तमाम विधि-विधान बेहद मशीनी होते हैं। बापू के भी चलने-फिरने, बातों का लहजा बिल्कुल मशीनी हो गया। अरुण भी यह सब स्वीकार करके चल रहा है। इस स्वीकार की वजह वह खुद भी नहीं जानता। पहले वह इन विधि-विधानों को बिल्कुल नहीं मानता था। उसे यह सब महज ढोंग लगते थे। हिपोक्रेसी! ऋषिकेश बाबू को प्रणाम करने पर वह माँ-बापू पर नाराज हो उठा था। अब उसने सब मान लिया है। इतने दिनों तक उसने कभी माँ की तरफ आँख उठाकर नहीं देखा, माँ की तकलीफ भी नहीं समझ पाया, इन दिनों वह उनके प्रति भी अपने को अपराधी महसूस कर रहा था। मानो इन विधि-विधानों के माध्यम से वह प्रायश्चित्त कर रहा है या शायद माँ की वह बात उसके कानों में बज उठी हो—'तुझे तो सब हीरे का टुकड़ा कहते हैं।' अजीब बात है! दुनिया में नियम-कानून ही सबसे बड़ा है। कोई दिल के भीतर बैठकर नहीं देखता! रून्नू भी कहाँ देखती है? वह भी सिर्फ जुबानी बातों को अहमियत देती है। हुँह! जरा सजा-संवारकर बातें करने से, हर तरफ से अपना मन मारकर चलते रहने से ही जैसे सब-कुछ सहज हो जाता है। वह कभी अभिमान

में आकर जरा-सी उपेक्षा दिखाता है तो, रूनू सोचती है, वह उसे प्यार ही नहीं करता। लेकिन माँ? उसे लगा, तस्वीर में माँ हाथ उठाकर उसे आशीष दे रही है। उर्मि को लेकर उसके दिल में जो डर समा गया है, माँ की तस्वीर की ओर देखते हुए, उसे सह पाने में आसानी हो रही है।

अच्छा, माँ कहीं उर्मि की वजह से ही तो नहीं मर गयी? हो सकता है, बेटे का मुँह देखकर, वह उर्मि की जान बचाने की कोशिश में, खुद अपने लिए मौत को आवाज दे बैठी हो। बेटे को कलंक लगने-वाला है, माँ शायद यह जान गयी थी···।

उसे एक कहानी याद आने लगी—किसी बेटे का ख्याल था, प्रेमिका से बढ़कर कहीं कोई नहीं है। माँ ने उसे रोका भी था—उसके पास न जाना बेटे! हरगिज न जाना। प्रेमिका ने आमन्त्रण दिया! 'आओ, मेरे पास आओ न! लेकिन अगर अपने प्यार का प्रमाण दे सको, तभी आना।' लड़के ने जानना चाहा, 'तुम्हें कौन-सा प्रमाण चाहिए?' 'तुम अपनी माँ की हत्या करके मुझे उसका कलेजा लाकर उप-हार दे सकते हो?' वह लड़का बिना कोई जवाब दिये चला गया। उसने अपनी माँ का कलेजा चीरकर उसका दिल निकाल लिया और ताजे खून से लिपटा हुआ अपनी माँ का दिल लेकर अपनी प्रेमिका के कमरे में आया। लेकिन प्रेमिका के कमरे में दाखिल होते हुए वह दहलीज से टकरा गया। माँ का दिल बोल उठा, 'हाय रे! तुझे चोट तो नहीं लगी, बच्चे!'

अरुण के मन में भी उर्मि के लिए खौफ समा गया। लेकिन माँ की तस्वीर की तरफ देखते हुए उसे लगा, मानो वह कह रही हो, 'डर की क्या बात है, रे बच्चे! मैंने मौत आखिर क्यों कबूल की? तेरे ही लिए तो!'

धत्तेरे की! वह जाने कैसी आलतू-फालतू बातें सोच रहा है! उर्मि उसकी प्रेमिका तो नहीं है। उसकी दोस्त है!

लेकिन अगर सचमुच उर्मि मर चुकी हो और वह गिरफ्तार कर लिया जाये तो उसकी इस बात पर आखिर कौन विश्वास करेगा···? छिः छिः, उसकी खातिर बापू, दिदिया, मीलू सबका सिर नीचा होगा।

लोग उन पर हँसेंगे, दिदिया के ससुराल वाले ताने कसेंगे, मीलू से कोई ब्याह करने को ही राजी न हो। सब कहेंगे, 'जब इसका भाई ही ऐसा निकला तो···' लेकिन दुनिया का हर इन्सान पौधा-भर है, और सब एक-दूसरे से बिल्कुल अलग-अलग खड़े हैं, तो अरुण के लिए उन लोगों का सिर क्यों नीचा होगा ? सिर्फ इस वजह से कि अन्दर-ही-अन्दर उन सबकी जड़ें एक-दूसरे से गुँथी हुई हैं ?

जब तक वह उर्मि को फोन नहीं कर लेता, उसे चैन नहीं आयेगा। इतने दिनों से उसके मन में हजारों-हजारों शाही के काँटे चुभ रहे थे। अब वह चुभन तो मिट गयी, लेकिन उसके मन में अभी तक उसका खौफ समाया हुआ है।

पोस्ट ऑफिस यहाँ से बहुत दूर है। वहाँ से उर्मि को फोन किया जा सकता है। लेकिन अपने इन कोरे कपड़ों में और बढ़ी हुई दाढ़ी लेकर ट्राम पर चढ़ने में संकोच हो रहा था। रास्ते पर खाली पैर चलते हुए और भी शर्म आती है। लेकिन इस वक्त इन सब बातों की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। वह ट्राम में चढ़ गया और सीधे पोस्ट ऑफिस के सामने आकर उतरा।

राह में एक बार रूनू की जरा-सी याद आयी। लेकिन इस वक्त उर्मि की खबर जानना ज्यादा जरूरी लगा। उर्मि का नम्बर डायल करने पर घण्टी बजते ही उसने पैसा डाल दिया। यह स्लॉट मशीन भी एक मुसीबत है! उधर से अब अगर कोई फोन न उठाये, तो पैसा बरबाद गया। उधर से कोई फोन उठाकर हैलो-हैलो करे, उसके बाद पैसा डालो, तो उधर वाले तक हमारी बात देर से पहुँचेगी। इसी बीच वह दो-एक बार हैलो-हैलो करके फोन रख देगा। कहेगा, 'जाने क्या चक्कर है, बाबा! किसी ने जवाब ही नहीं दिया।' असल में अपनी सरकार के दिमाग में जरा भी बुद्धि नहीं है। इसके बजाय अगर यह सिस्टम कर दिया जाये कि हमारी बात दूसरी तरफ सुनाई देने लगे, तब हम पैसा डालें और पैसा डालने के बाद ही उधर की बात इधर सुनाई दे, तो बेहतर हो। तब उधरवाला फोन झट् से बन्द नहीं करेगा। बहुत से लोगों का ख्याल है, पहले की स्लॉट मशीनें अच्छी थीं। पुरानी

स्लॉट मशीनों के बारे में उसे कोई जानकारी नहीं है। खैर, पहले का तो सभी-कुछ ही अच्छा था।

उधर फोन की घण्टी बज रही है। अरुण का दिल धड़कने लगा। पिछले दो दिनों से उसे खौफ सहने की आदत पड़ गयी है। अचानक फिर उसकी साँस रुक गयी और उसे घबराहट होने लगी। जाने क्या खबर मिले ?

आवाज सुनकर अरुण समझ गया, उर्मि की मामी बोल रही थीं। "जरा उर्मि से बात करा दीजिए।" उर्मि घर पर है या नहीं, यह पूछने की हिम्मत नहीं कर पाया।

"वह तो बाहर गयी हुई है। अभी तक लौटकर नहीं आयी।" मामी ने जवाब दिया, "दीघा गयी हुई है। कल लौटने की बात थी।"

अरुण का हाथ काँपने लगा। उसका दिल धौंकनी की तरह धड़क उठा। वह अभी लौटकर नहीं आयी। दीघा गयी है।···पास होने की खुशी में कॉलेज की सहेलियों के साथ दीघा घूमने गयी है। कल लौटने की बात थी, लेकिन अभी तक नहीं आयी।

दीघा ! दीघा तो एक बहाना है। उर्मि ने उसे खुद ही बताया था।

एक असहनीय तकलीफ, दुःख और भय के मारे, अरुण की आँखों में आँसू आ गये। बातें करते हुए उसकी आवाज काँपने लगी। फोन रखते हुए उसका हाथ भी काँप रहा था।

उसे क्या करना चाहिए, वह तय नहीं कर पा रहा था। उसने सोचा था उर्मि की खबर मिलने पर, वह रूनू को फोन करेगा। लेकिन, इस स्थिति में रूनू की भी याद नहीं आयी।

वह अभी तक नहीं लौटी ! नहीं लौटी !! नहीं लौटी !!! क्यों नहीं लौटी ? वह डॉ० रुद्र का घर पहचानता है। टिकलू उसके साथ पहले दिन भी नहीं गया था। उसे अकेले ही जाना पड़ा था। अच्छा, उसे क्या वहाँ खुद जाना चाहिए या डॉ० रुद्र को फोन करे। उसकी हिम्मत नहीं पड़ी।

अरुण वापसी ट्राम में बैठ गया और सीधे 'बार' के सामने उतरा।

दिया। वह लोग जरूर यही सोच रहे होंगे कि उस लड़के की माँ या बाप अभी हाल ही में चल बसे होंगे और शराब के बिना उसकी तबीयत परेशान है।

अरुण अनमने भाव से इधर-उधर टहलता रहा। बीच-बीच में वह नर्सिंग होम की खिड़कियों की तरफ भी एक नजर डाल लेता।

काश, उर्मि सिर्फ एक बार खिड़की का पर्दा सरकाकर, उसके सामने खड़ी हो जाये। उसकी सारी दुविधा-आशंका मिट जाये।

"देख सुजीत, हम लोग अपने-अपने वर्तमान को लेकर इतने परेशान हैं, लेकिन असली बात क्या है, जानता है? हम लोगों ने खुद ही जैसे किसी गमछे के बीचों-बीच कसकर गाँठ लगा दी है और उसे लगातार खींचे जा रहे हैं। इस तरफ अतीत है, उस तरफ भविष्य।" जाने किस बात पर उसने कहा था।

इस वक्त भी अरुण को यही लग रहा था कि भीतर-ही-भीतर कोई उसे गमछे की तरह निचोड़े डाल रहा है। खौफ! यन्त्रणा! दुःख! जाने क्या-क्या कसक रहा है उसके मन में! लेकिन वह इतना डरा हुआ क्यों है? माँ तो अब पास्ट-टेन्स बन चुकी हैं। लेकिन उसके पुराने संस्कार, विवेक, अपराध-बोध, माँ की विरासत के रूप में अभी भी उसके खून में जिन्दा हैं। ये तमाम संस्कार उत्तराधिकार के रूप में शायद हर किसी के खून में जिन्दा रहते हैं, वर्ना वह भी छाती फुलाकर दावा कर सकता था, उसने कहीं कोई गलती नहीं की, सिर्फ अपना कर्त्तव्य निभाया है। उर्मि भी प्रकृति के खिलाफ नहीं गयी। जिन लोगों ने इस पर बन्दिशें लगायी हैं, उन्होंने दरअसल जीवन के नियमों की अवहेलना की है।

अच्छा, माँ अगर अतीत थी, तो रूनू क्या उसका भविष्य है? एक तरफ उसके पुराने संस्कार और दूसरी तरफ भविष्य की आकांक्षाएं-सपने उसे गमछे की तरह निचोड़ डालना चाहते हैं। अच्छा,—अब उसकी समझ में आया। उसके जैसे सभी लोग पुरानी, जर्जर आस्थाओं और नवनिर्मित विश्वासों के बीच झटके महसूस कर रहे हैं, इसी लिए आदमी के मन में इतना सब दर्द-तकलीफ है। वह लोग आधुनिक भाव-

बोध के माध्यम से मूल्यबोध के नये अर्थों तक पहुँचना चाहते हैं।

दोनों ओर से आती-जाती असंख्य गाड़ियाँ, डबल-डेकर बसें, ट्राम की घंटियाँ···अरुण ने रास्ता पार किया और लपककर एक चलती हुई बस में चढ़ गया।

घर! परिवार! काश, वहाँ जरा-सी भी शान्ति होती।

वह लौटकर अपनी गली में दाखिल हुआ ही था कि देखा कोई पुलिस का आदमी हाथ में एक कागज लिये किसी घर का नम्बर खोज रहा है।

अरुण वहीं रुक गया। वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सका। उसका सिर घूमने लगा। उसने एकदम से बेहोशी की स्थिति महसूस की और उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। बस, और थोड़ी-सी देर होती तो वह गिर पड़ता। पुलिसवाला उसी की तरफ आ रहा था। वह क्या भाग खड़ा हो या कह दे कि वह अरुण नामक किसी लड़के को नहीं पहचानता।

"अच्छा, आठ नम्बर किस तरफ पड़ेगा, बता सकते हैं?" पुलिस-वाले ने पूछा, "अवनी बाबू—अवनी चैटर्जी का मकान?"

शुक्र है! उसने राहत की साँस ली। उसके घर का नम्बर सत्ताईस है। वह कितना हल्का महसूस कर रहा है।

घर लौटकर वह माँ की उस बड़ी तस्वीर के सामने आ खड़ा हुआ। उनकी तरफ अपलक देखते हुए उसने बेहद सुरक्षित महसूस किया। उसे लगा माँ उसके सीने पर हाथ फेरती हुई कह रही हैं, 'अरुण, तुझ पर कोई मुसीबत नहीं आ सकती। तेरी दोस्त मुसीबत···इतनी बड़ी मुसीबत में थी···तूने उसकी मदद करके इन्सानियत निभायी है। तेरे अन्दर भी आखिर इन्सान का दिल था न···।'

शाम को टिकलू ने आकर बताया, "रून्नू तुझ पर गुस्से में बिल्कुल फायर हो रही है। इधर कई दिनों से वह लगातार फोन कर रही है। प्रेस में भी कोई नहीं था। आज मैंने फोन उठाया तो···।"

उफ!···कहीं भी चैन नहीं है। जब वह तल्ख मूड में था, तब भी अपने को बर्दाश्त नहीं कर पाता था। लेकिन उस वक्त उसे यह

तेरी, माँ की मौत की खबर सुनकर उसकी आवाज जाने कैसी हो आयी। आज शाम को वह तुमसे मिलने आयेगी।"

टिकलू से रुनू के बारे में सारी सूचना मिल गयी। उसने अपने बालों पर हाथ फेर कर देखा। वह आइने के सामने खड़े होकर अपनी खाली देह पर चादर लपेटकर, अपना निरीक्षण करता रहा। इस हुलिया में वह रुनू के पास जाने लायक है कि नहीं? इन मातमी कपड़ों में रुनू के पास जाते हुए उसे शर्म आने लगी।

"अच्छा, तुम कैसे हो जी? मुझे जरा-सी खबर भी नहीं दी?" रुनू की पलकें बादलों की तरह भारी हो आयीं, "माँ को एक बार देखने की कितनी साध थी।" फिर जरा ठहरकर कहा, "मैं श्मशान जाकर देख लेती। अनजान-अपरिचित की तरह दूर से ही दर्शन कर आती।"

अरुण चुप रहा। शायद वह मन-ही-मन पछता रहा था। रुनू उसकी माँ को इतना अपना समझती थी—उर्मि शायद सब मटियामेट कर देगी।

"तुम माँ को बहुत प्यार करते थे न? तुम्हारा मन बहुत नरम है। मैं जानती हूँ, माँ को प्यार किये बिना किसी का मन इतना कोमल हो ही नहीं सकता।"

अरुण ने कहा, "खैर, माँ को तो सभी प्यार करते हैं।"

उसे नहीं लगा कि वह झूठ बोल रहा है। वह भूल गया कि माँ जब तक जिन्दा थी, उसे सिर्फ कड़वाहट ही मिली। उसने भी सिर्फ कड़वाहट दी है। लेकिन यह सब तो महज ऊपरी बातें हैं। अच्छा, सिर्फ ऊबड़-खाबड़ दाढ़ी, रूखे-सूखे बाल रखने और कोरे कपड़े पहनने से ही प्यार झलकता है? किसी का दिल चीरकर कोई कुछ नहीं देखना चाहता।

"सुनो, भाभी रोज-रोज तगादा करती हैं कि मैं अपने दोस्त को एक दिन घर ले आऊँ। अगर नहीं जाओगे, तो वह समझेंगी कि हम लोग सच्चे दोस्त ही नहीं हैं···।" रुनू हल्के से मुस्कुरा दी।

अरुण को आज रुनू की मुस्कुराहट अच्छी नहीं लगी।

"अच्छा, एक बात बताओ ! उर्मि तुम्हारे यहाँ गयी थी ? उसको तो तुमने खबर दी ही होगी।"

अरुण गुस्से के मारे बिल्कुल असहाय और चुप हो आया, फिर धीरे-से कहा, "नहीं।"

"अरे, वाह ! वह तो तुम्हारी दोस्त है।" रूनू की आवाज में किसी तरह के सन्देह का आभास नहीं था।

—लेकिन अरुण को लगा, वह उर्मि का नाम जैसे सह नहीं पा रही हो।

"क्यों ! उसके जाने में क्या हर्ज था ?"

रूनू इसी तरह की दो-चार बातें करके चली गयी। अरुण धर्मतल्ले से ढेर सारे अखबार खरीदकर लौट आया।

इधर कई दिनों से वह नियमित रूप से मुहल्ले के रीडिंग रूम में जाता है, बड़ी उत्सुकता से सारे अखबार उलट डालता है। सुबह के वक्त वहाँ मुहल्ले-भर के लोगों की भीड़ जमी रहती है, अतः वह अच्छी तरह से अखबार भी नहीं देख पाता। उसके पास इतना पैसा भी नहीं है कि दुनिया-भर के अखबार खुद खरीद सके। अब तो माँ भी नहीं रही कि उसके आगे हाथ फैलाये।

"माँ को तू मनी-बैग कहकर क्यों नहीं बुलाता ?" एक दिन दिदिया ने ताना कसा था, "अगर तुझे रुपये की जरूरत न हो तो माँ जिन्दा है या मर गयी, तू इसकी भी खबर न रखे।

इस वक्त ठीक-ठीक याद नहीं आ रहा है, वह कौन-सी महिला थी, जिसने ब्याहकर आते ही अपने पति से परिचय कराते हुए कहा था, "यह मेरे मनि-बैग हैं।" हाँ, हाँऽ याद आया, वह बहुरिया दिदिया की ननद की कोई रिश्तेदार थी···बेहद स्मार्ट और खुशमिजाज !

दिदिया ने नाक सिकोड़कर कहा था, "हुँह ! ढोंगिन कहीं की !"

दरअसल लड़कियाँ बेहद बेमुरव्वत और अकृतज्ञ होती हैं। वह न तो किसी की दोस्त हो सकती हैं, न प्रेमिका और न बीवी ! सब सिर्फ

के इशारे पर उसे नचाती फिरेगी, और वह उस दैत्य की तरह उसके हुक्म तामील करता रहेगा ?

बेमुरव्वत ! अकृतज्ञ ! रूनू उससे कहीं अधिक खूबसूरत और सहज है।

"नहीं, नहीं, यह सब मैं कुछ नहीं सुनना चाहती। मुझे आज तुमसे मिलना ही है। उस दिन तुम पांच मिनट भी नहीं रुके थे।" रूनू ने जिद की।

अरुण को हिचकिचाहट हो रही थी। अपने सिर पर हाथ फेरते हुए, उसे हँसी आ गयी, "अच्छा, टिकलू तू ही बोल न, मैं क्या करूँ ?"

"अबे, बनावटी विग लगाकर लड़कियाँ अपने बालों की बहार दिखाती हैं या नहीं, इसी तरह तेरा गंजापन भी बनावटी है !"

अरुण और सुजीत दोनों हँस पड़े। लेकिन अरुण की परेशानी कम नहीं हुई। अब, जब जीवन में दुबारा रंग लौट आया है, तो रूनू को और उद्दाम भाव से प्यार करने को मन हो आया। उसने अपनी चांद पर हाथ फेरकर देखा, 'बनावटी गंजा' टिकलू ने सच कहा था।

न्ना ! शर्ट-पेंट के साथ सफाचट चांद बिल्कुल सूट नहीं करता। उसे लग रहा है मानो किसी और का सिर उधार लेकर उसके धड़ पर बैठा दिया गया है। दिदिया ने पूजा के मौके पर उसे एक धोती-कुर्ता दिया था। काफी देर ढूंढ़ने के बाद, वह धोती-कुर्ता मिल गया। अरुण धोती-कुर्ता पहनकर आइने के सामने आ खड़ा हुआ।

टिकलू ने पीछे से आकर उसकी गंजी खोपड़ी पर हाथ फेरते हुए कहा, "तुझ पर यह सफाचट चांद अच्छा लगता है। तू जँच रहा है।" फिर हँसकर कहा, "सिर्फ तेरी भौंहें देखकर लग रहा है जैसे गोंद से चिपका दी गयी हों।"

धत्तेरे की ! सिर पर बाल उगने में कितने दिन लगेंगे, इसका कोई ठीक-ठिकाना नहीं है। इतने दिनों तक वह रूनू को देखे बिना रह पायेगा ?

अरुण रास्ते में एक पैकेट सिगरेट खरीदने को रुक गया। माचिस खरीदते हुए वह अचानक ठिठक गया। एक दिन उसकी माचिस से खेलते

हुए रूनू ने कहा था, "सुनो, मोम लगी हुई छोटी-सी डिबिया क्यों नहीं खरीद लेते ? देखने में वह कितनी खूबसूरत लगती है ! अब से वही खरीदना।"

अरुण काफी दिनों तक वह माचिस खरीदता फिरा था। काश, वह उसका यह छोटा-सा अनुरोध रख पाता तो उसे खुशी होती।

उसने बहुत खोजा ! वह कई-कई दुकानों में माचिस खोजता फिरा था और वह पैदल काफी दूर निकल गया था। बहुत सारी दुकानों में खोजने के बाद उसने वह माचिस ढूँढ़ निकाली थी।

"एई, धोती-कुर्ता में तुम अद्भुत खूबसूरत लग रहे हो।" रूनू ने कहा।

अरुण ने हँसकर वह माचिस निकालकर उसके सामने कर दिया।

रूनू उस माचिस से कई तीलियाँ निकालकर एक-एक करके जलाती रही। रेस्तराँ की मद्धिम रोशनी में तीलियों की जगमगाहट, उसके चेहरे पर रोशनी बिखेरती रही।

अचानक उसने कहा, "इस माचिस की तीलियाँ कितनी खूबसूरत हैं ! अपन भी यही माचिस रखता था।"

रूनू अरुण के लिए जापानी माचिस लायी थी, जिस पर एक खूबसूरत-सी तस्वीर बनी हुई थी।

पूरी माचिस जल्दी खर्च न हो जाए, इस डर से वह रोज सिर्फ रात को सोने से पहले, एक तीली जलाकर दिन-भर की आखिरी सिगरेट सुलगाता था। मानो जितने दिन उसके पास वह माचिस रहेगी, वह रूनू को भी अपने करीब महसूस करता रहेगा।

उस दिन तांत की सफेद साड़ी में रूनू कुछ और ही लग रही थी। जरी के चौड़े किनारेवाली साड़ी में लिपटी हुई उसकी भरी-भरी देह अरुण की आँखों को बेहद ठण्डी और स्निग्ध लगी। उस दिन उसने जूड़ा नहीं बाँधा था। पीठ तक छितराये हुए घने बाल, कमर से नीचे तक लहरा रहे थे। वह बातें करते हुए बीच-बीच में बालों को समेटकर आगे कर लेती थी और कभी ढीला जूड़ा बनाकर उन्हें समेटे रहने की कोशिश कर रही थी, लेकिन उसकी उजली-धुली हँसी के साथ वह बार-बार खुल-खुलकर बिखर जाते थे।

उससे बातें करते हुए वह मुग्ध भाव से उसे निहारे जा रहा था।

"आज तुम्हें चलना ही होगा। मामी ने बुलाया है।" रूनू ने कहा।

अरुण ने उसकी मामी को देखा नहीं था, अतः वह हिचकिचा रहा था।

"देखो, आज अगर तुम नहीं गये तो मैं कभी नहीं आऊँगी।" रूनू ने मुंह फुलाकर कहा।

उफ! इसी बात से अरुण को चोट लगती है, यही बात उसने कभी नहीं समझी। नाराजगी में भी वही धमकी 'अब कभी नहीं आऊँगी।' मानो वह उसके शरीफ बने रहने, उसको खुश करने के लिए इनाम देने ही आती है। उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं होती? उसका प्यार करने को मन नहीं होता? यानी रूनू जानती है, उसके न आने से अरुण को तकलीफ होगी। उसे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। ये लड़कियाँ कितनी आसानी से स्लेट की तरह धो-पोंछकर सब-कुछ मिटा देती हैं। अरुण बिल्कुल असहाय हो आया। उसने चेहरे पर एक मुस्कान लाते हुए कहा, "चलूंगा! चलूंगा!! लेकिन आज शाम को तो···।"

आज की सारी शाम, वह कंजूस की तरह आहिस्ते-आहिस्ते खर्च करना चाहता है। आज वह कितने दिनों बाद उससे मिलने आयी है। अरुण का मन हो रहा था, उसे फूलों से सजाकर उसमें एक उद्दाम तूफान जगा दे और फिर उसकी फूल जैसी देह की एक-एक पर्त झरते हुए देखता रहे।

"एई, कित्ते दिन हो गये, तुमने मुझे प्यार भी नहीं किया।" रूनू ने कहा।

चारों ओर शाम का हल्का-हल्का अँधेरा छाने लगा था। निर्जन एकान्त! वह दोनों एक पेड़ की आड़ में बैठे हुए, गंगा की लहरों की तरफ देख रहे थे। दोनों एक साफ-सुथरे बेंच पर एक-दूसरे से सटे हुए बैठे थे। गंगा की लहरों पर मोटर-लांच की सीटी! रूनू के बालों की मीठी महक। अरुण ने रूनू को और करीब खींच लिया और उसकी पलकों को होले से चूम लिया। रूनू जब पलकें मूंद लेती है, तो ऐसा

लगता है, जैसे कमल की कच्ची कली हो।

रूनू हल्के से हँस दी। उसकी तरफ एक बार भरपूर निगाहों से देखा, फिर शर्माकर पलकें मूँद लीं। वह बिल्कुल अवश हो आयी और सुखद आवेग में वह अरुण के और करीब सट आयी।

पल-भर के लिए दो दिलों ने एक-दूसरे को आवाज दी। अरुण एकबारगी उसकी तरफ झुक आया और उसे पागलों की तरह चूमने लगा। मारे उत्तेजना के वह नहा उठा।

"अरे, पागल !···पागल राम ! यह तुम्हारे रॉबिन्सन-क्रूसो का निर्जन द्वीप नहीं है।" रूनू अपने को छुड़ाती हुई उठ खड़ी हुई और खिलखिलाकर हँस दी।

"एई, जरा देर और बैठो न···सोना।"

अरुण का मन हो रहा था, उस खूबसूरत-सी शाम को बूँद-बूँद पी ले। उसे अब तक शामें बेहद परायी लगी थीं, जिन्हें वह लोगों से चुरा-छिपाकर जी लिया करता था।

रूनू ने घड़ी की ओर देखकर कहा, "उफ ! गजब हो गया।"

उधर से दो-तीन सिरफिरे लड़के गुजर रहे थे। रूनू की बातें उनके कानों में पड़ते ही, उन्होंने घूमकर पीछे देखा।

उनमें से एक ने उन्हें सुनाकर फिकरा कसा, "बस, इतने में ही गजब ?"

दूसरा, जो शक्ल से कवि-कवि-सा दिख रहा था, बोल उठा, "हमने तुम्हारी आँख में···"

अरुण और रूनू संकोच में गड़ गये। वह उठ खड़े हुए और तेज कदमों से आगे बढ़ गये।

रूनू ने नाराजगी के स्वर में कहा, "सुन लो, अब किसी दिन भी नहीं···किसी भी दिन···।"

अरुण को एक पुरानी कहानी याद आती रही···एक प्रेमी-युगल ने जीते-जी स्वर्ग में पहुँच जाने की धुन में धरती से लेकर आकाश तक सीढ़ी तैयार करने का निश्चय किया। हर रोज काफी मेहनत के बा-वजूद वह सिर्फ एक-दो पायदान-भर बना पाते थे और ···

रोज उनकी बनायी हुई सीढ़ियाँ तोड़ देता था। एक दिन गुस्से में आकर उस लड़की ने पूरी सीढ़ी तोड़ डाली और चीख पड़ी, "मैं नहीं जाऊँगी ! नहीं जाऊँगी !"

…माँ कहाँ गयी है ? सचमुच वह कहीं चली गयी है या यहीं है ? अरुण ने अक्सर अपने से यह सवाल किया है। अगर सचमुच ही कोई स्वर्ग होता, तो शायद उसे थोड़ी-बहुत तसल्ली होती।

अरुण जैसे लड़कों के पास कुछ भी नहीं होता, न कोई अतीत, न भविष्य ! ऐसे लोग सिर्फ अपने वर्तमान को ही टुकड़ों-टुकड़ों में महसूस करते हैं, बूंद-बूंद करके जीते हैं। चारों ओर फैले हुए तीखे असन्तोष के बीच यह नन्हा-सा सुख !

आजकल अरुण को लगता है, बापू बिल्कुल मशीन हो गये हैं। कर्त्तव्य निभाने के नाम पर, जिन्दगी-भर की गुलामी का पट्टा लिख देनेवाली एक मशीन-भर रह गये हैं यानी अब वह बेजान पत्थर या पेड़-भर रह गये हैं। पेड़ की तरह निश्चल ! मौन ! लेकिन अडिग-अचल खड़े हैं।

सुबह के वक्त बापू आराम-कुर्सी पर अधलेटे-से पड़े थे। आजकल वह बेहद चुप रहने लगे हैं। वह किसी से भी बात नहीं करते। यूँ लोग भी उनसे ज्यादा बात करने की कोशिश नहीं करते। शोक की एक मजबूत दीवार खड़ी करके, बापू ने अपने को सबसे अलग कर लिया है।

उन्होंने सुबह-सुबह आवाज दी, "अरुण !"

अरुण बिना किसी प्रत्युत्तर के उनके करीब जाकर खड़ा हो गया।

"तेरी नौकरी का कुछ बना ?" बापू ने पूछा।

अरुण ने कहा, "छोटे मौसा बता रहे थे कि शायद इसी हफ्ते मुझे कोई एप्वायंटमेंट-लेटर मिल जायेगा। दो साल के लिए कोई विलायत जा रहा है, उसी जगह के लिए। टेम्परेरी नौकरी है !

वैसे भी यह नौकरी अगर मिल भी गयी तो उसे कोई खास खुशी नहीं होगी। कोई चीज अभी…इसी दम मिल गयी, बस, इतना-भर

ही ! स्थायी रूप से तो कुछ नहीं हुआ । अरुण की सारी उमंग तो यह वाक्य सुनकर बुझ गयी थी कि कोई छुट्टी लेकर विलायत जा रहा है । यानी अरुण फालतू है । दरअसल, वह सब—टिकलू, सुजीत, अरुण सब फालतू हैं ! उन लोगों के लिए कहीं कुछ नहीं है । कहीं, कोई भूमिका निश्चित नहीं है । सबके सब टैम्परेरी हैं । एक्स्ट्रा लोग । नाटक में अगर अचानक कोई पात्र अनुपस्थित हो जाये तो उसकी जगह उस जैसे लोगों को दो-एक रात की ऐक्टिंग का चांस दे दिया जाता है । वह लोग बस, दो-एक दिन लोगों की वाहवाही लूट सकते हैं ।

कभी-कभी तो तारीफ भी नहीं मिलती । उसे याद है बहुत दिनों पहले, वह लोग कोई थियेटर देखने गये थे । उर्मि भी उनके साथ थी । कोई प्रसिद्ध नाटक चल रहा था, उसमें कोई विख्यात हीरो काम कर रहा था । वह लोग एक बार पहले भी यह नाटक देख चुके थे । उर्मि ने नहीं देखा था । इसी से दुबारा चले आये थे ।

उसने उर्मि से कहा था, "उर्मि, तू सोच भी नहीं सकती ! एक जरा-सा रोल है, लेकिन कितनी बढ़िया ऐक्टिंग है ।"

वह लोग अपनी-अपनी सीट पर बैठे ही थे कि स्टेज पर से किसी ने घोषणा की, "हमें अफसोस है···आप लोगों में बहुत से लोग जिनकी ऐक्टिंग देखने आये हैं, वह आज अनुपस्थित हैं ।"

उस दिन उस हीरो की जगह अरुण या सुजीत या टिकलू की तरह किसी नौसिखुए ऐक्टर ने वह पार्ट किया । अरुण को लगा उसने असली हीरो से भी बेहतर ऐक्टिंग की थी । लेकिन किसी ने भी उसकी तारीफ में ताली नहीं बजायी । उस दिन किसी भी दर्शक के चेहरे पर खुशी नहीं दिखी थी । सब मन में गहरा असन्तोष लेकर वापस लौटे ।

अरुण भी उसी तरह खाली जगहों का क्षणिक पूरक-भर है । असली हीरो कुछ दिन गैरहाजिर रहेगा, अतः उसे बुला लिया गया है । वह चाहे जितनी भी बढ़िया ऐक्टिंग करे, कोई ताली नहीं बजायेगा ।

"अपन कभी ऐसे पेश नहीं आता था···" रूनू ने लौटते हुए कहा ।

थोड़ी देर पहले अरुण को लगा था, उससे बढ़कर सुखी कोई नहीं है । उसका ख्याल था, दरअसल कोई कुच्छ नहीं समझता । प्यार में

शरीर आता ही नहीं।

टिकलू, रूनू या ये बुजुर्ग लोग सेक्स का मतलब नहीं समझ पाये। सेक्स का अर्थ है, हवा-धूप में गुच्छे-गुच्छे फूलों की तरह खिल उठना। दरअसल, यह एक किस्म की दोस्ती है, सारी दुनिया के खिलाफ दो व्यक्तियों की एक होने की घोषणा!

अयन कभी ऐसे पेश नहीं आता था···

···अरुण जानता है···अच्छी तरह जानता है, रूनू उसे जरा भी प्यार नहीं करती। उसे अयन से कभी ईर्ष्या नहीं हुई। उन दोनों की बात सोच कर उसे तकलीफ ही हुई है। उसे लगा, रूनू अयन से उसकी तुलना कर रही है, और अयन बेहतर साबित होता जा रहा है। मानो वह कहना चाह रही हो, "तुम अनुपस्थित अभिनेता की जगह ले लिये गये हो, लेकिन उसकी तरह ऐक्टिंग नहीं कर पा रहे हो। तुम उस असली अभिनेता की जगह ले ही नहीं सकते।"

"यह तीलियाँ बहुत खूबसूरत हैं न? अयन यही माचिस रखता था।" रूनू ने कहा।

भय भी शायद एक किस्म की मौत है। लगता है भय ने इस युग का सारा रस सोख लिया है, सारी खुशियाँ छीन ली हैं।

अरुण को विराम और नन्दिनी का ख्याल हो आया। नन्दिनी की उद्भ्रान्त चुभती हुई निगाहें। उस दिन जब उसके सारे दोस्त सलाह-मशविरा और साजिशों में लगे रहे, समस्या का समाधान खोज निकालने में व्यस्त हो गये, नन्दिनी के कानों तक एक भी नहीं पहुँच रही थी।

विराम ने कहा था, "उसका भाई अब तक पुलिस में जरूर खबर कर चुका होगा।"

नन्दिनी खामोश सुनती रही थी, फिर भर्रायी हुई आवाज में कहा था,...

क्या कहा था, इस वक्त याद नहीं आ रहा है।

उस दिन रूनू पुलिस या भाई से नहीं शायद अपने अनिश्चित भविष्य को देखकर डर गयी थी। खौफ ने उसके अन्दर पलते हुए प्रेम का गला घोटकर मार डाला था। सिर्फ एक दिन में ही नन्दिनी का सारा प्यार मर गया। वह बेजान और बदरंग लाश-भर रह गयी थी।

अरुण को लगा, उन दोनों के बीच भी प्रेम अब कहीं नहीं है। उर्मि के सन्दर्भ में उसके मन में जो भय समा गया था, वह उसे तमाम लोगों से बहुत दूर खींच ले गया। बापू, मीलू, दिदियाँ यहाँ तक कि माँ से भी काटकर अलग कर गया। वह किसी के आगे सिर उठाकर बात भी नहीं कर पाता था। उन दिनों सुजीत और टिकलू भी उसे असहनीय लगने लगे थे।

"हिप्-हिप् हुर्रे! हिप्-हिप् हुर्रे!" खुशी से उमड़ता हुआ सुजीत करीब-करीब उछलते-कूदते हुए कैफे के अन्दर दाखिल हुआ। उसके हाथ में एक लम्बा-सा सफेद लिफाफा था। उसने जब चाय की मेज पर लिफाफा रखा, अरुण की निगाह लिफाफे पर लगे हुए विदेशी टिकट पर पड़ गयी।

"अबे, यह रहा नौकरी का वाउचर," सुजीत ने उमगते हुए कहा,

"देख लिया, मैदान मार लिया।"

विलायत में बढ़िया-सी नौकरी! बढ़िया तनखाह! बस, उसे और कुछ नहीं चाहिए था।

"साले, अब मुझे एक्सचेन्ज की भी परवाह नहीं है। तेल लगा-लगाकर पी० फार्म और पासपोर्ट जुगाड़ लिया। इसके बाद सीधे..." मारे खुशी के उसने मुँह में दोनों उँगलियाँ डालकर जोर से सीटी बजायी, लेकिन अगले ही क्षण उसके अन्दर जमा हुआ आक्रोश फूट पड़ा, "इस देश में इन्सान नहीं बसता, समझा, अरुण? तू साला, रुपये कमा-कमाकर इन्कम-टैक्स भरेगा और यहाँ के मन्त्री लोग विलायत जा-जाकर ऐश करेंगे। तेरी बारी आयेगी तो देश का हवाला देंगे और फॉरेन एक्सचेन्ज का रोना लेकर बैठ जायेंगे।"

अरुण को यह सब बातें जरा भी अच्छी नहीं लगीं। सुजीत की किसी भी बात का उस पर कोई असर ही नहीं हुआ। भयंकर दहशत ने जैसे उसके मन का सारा रस निचोड़ लिया हो।

"माँ कसम, इन दिनों तू जाने कैसा होता जा रहा है?" सुजीत ने कहा, "लगता है यह रूनू तुझे डुबायेगी।"

रूनू? इस वक्त अरुण रूनू के बारे में सोच ही नहीं रहा था। उन लोगों की यही बातें उसे अच्छी नहीं लगतीं, लेकिन फिर भी वह अनमनी-सी हँसी हँस दिया।

सुजीत ने मुस्कराते हुए पूछा, "अच्छा, बता, वहाँ जाकर तेरी रूनू के लिए क्या भेजूँ?"

अरुण ने कोई जवाब नहीं दिया।

टिकलू ने कहा, "अबे, उसके लिए रूनू है ही, मेरे लिए ब्रिजित्-बार्दॉट किस्म की कोई कमसिन मेम भेज देना।"

सबने जोर का ठहाका लगाया।

सुजीत ने कहा, "अमाँ यार, वह तो मैं अपने लिए ले आऊँगा।"

ब्रिजित्-बार्दॉट! अरुण ने मन-ही-मन सोचा—ये लोग उसकी मनःस्थिति समझ पाने के काबिल ही नहीं हैं। अगर जीना लोलो ब्रिगिडा भी मिनी-स्कर्ट पहनकर रूनू के मुकाबले में आ खड़ी हो, तो

भी वह उस पर नजर नहीं डालेगा।

मस्ती, शौक ऐसी चीज है, कि एक बार अगर उसकी झलक-भर दिख जाए तो आदमी अपनी पुरानी मन:स्थिति में नहीं लौट सकता। नन्दिनी के मन से आतंक निकल गया, लेकिन उसका पुराना प्यार फिर नहीं लौटा। अरुण के मन में भी उर्मि को लेकर अब कोई परेशानी नहीं है, लेकिन फिर भी रन्नू पर जान छिड़कनेवाले प्यार की दीवानगी जैसे कहीं खो गयी हो। किसी फिल्म में रोमाण्टिक दृश्य देखते हुए जैसे अचानक रील कट जाये और सामने का पर्दा बिल्कुल ब्लैंक हो जाये तो दर्शकों में अचानक शोर मच जाता है···फिर कुछ ही पलों बाद, फिल्म शुरू होते ही, सारा शोरगुल सन्नाटे में बदल जाता है··· अरुण को लगा शौक भी वैसा ही एक सफेद ब्लैंक पर्दा है।

···बापू ने विराटी वाली जमीन आखिर खरीद ही डाली। रिटायर होने के बाद कहीं तो रहना था। कम-से-कम एक छोटे-से घर की जरूरत पड़ेगी। बापू को भी यही एक चिन्ता है···दो दिनों बाद क्या होगा? सब कहां रहेंगे? वह सारी जिन्दगी भविष्य से आशंकित रहे, इसीलिए कभी कुछ भी नहीं पाये! उन्होंने छोटे मौसा से भी एक दिन कहा था, "कुछ जमा-वमा भी कर रहे हो या नहीं? सब-कुछ खा-उड़ा डालोगे तो भविष्य में···"

मौसा हंस पड़े थे, "मुझे तो इस ख्याल तक से खौफ होने लगता है, इसी से मैं भविष्य के बारे में कुछ सोचता ही नहीं। सोचता हूं जितने दिनों नौकरी-चाकरी है, मजे में ऐश कर लूं, फिर देखा जायेगा।"

शायद इसीलिए छोटे मौसा अरुण को बेहद अपने लगते हैं। हां, सच ही तो···जो मिलने वाला है, वह अगर इसी वक्त न मिला, तो फिर बाद में मिलने से क्या फायदा? उर्मि तो मौज से जिन्दा है, ऐश में है। उस पर ही बेवजह एक भय हावी हो गया है, जो उसे रन्नू से अलग करता आ रहा है। लेकिन···साला, माइनिंग इंजीनियर! वह बेटा भी शायद यही चाहता होगा! जो मिलना है, वह···अभी! इसी दम···!"

जब सभी लोग इन्हीं लाइनों पर सोचते हैं, तो वह आखिर किसे

अभी ही···

दोष दे ? उर्मि भी तो बुरी तरह डर गयी थी, अब क्या वह फिर वही पुरानी उर्मि बन पायेगी ? आज भी जब वह पहले की तरह खिलखिल हँसेगी, तो उसकी समूची देह रजनीगन्धा के नाजुक गुच्छों की तरह लहरायेगी न ? माइनिंग इन्जीनियर से उसे निश्चित रूप से नफ़रत हो गई होगी। उस जैसे नीच आदमी से नफ़रत करना ही उचित है ! लेकिन, आज उसे उर्मि पर इतनी खीज क्यों हो रही है ?

"अरे, आप इतना डर क्यों रहे हैं ?" रूनू ने हँसते हुए कहा, "डरने की कोई बात नहीं है। मामी ने किसी पुरोहित वगैरह का इन्तजाम नहीं कर रखा है कि जाते ही, आपको पकड़कर जबर्दस्ती ब्याह के पटरे पर बिठा देंगी।"

अरुण अप्रतिभ हो उठा। उसने अपने चेहरे पर सायास हँसी बिखेरते हुए कहा, "अरे, हटो, भला मैं क्यों डरने लगा ?"

दरअसल, वह उसके यहाँ जाने में संकोच महसूस कर रहा था। रूनू तो बिल्कुल सहज भाव से उसे मामी के सामने हाजिर कर देना चाहती है, लेकिन मामी को क्या कुछ समझ नहीं आयेगा ? या रूनू ने उन्हें सब कुछ बता दिया है ? उसने नन्दिनी को तो बता ही दिया था। इन लड़कियों का कोई भरोसा है ? ब्याह की बात पर वह जरा सकुचा आया।

रूनू ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा, "अरे बाबा, जाते ही, तुम्हें धर-पकड़कर ब्याह करने को नहीं कहेंगी।"

रूनू क्या ब्याह की बात सोच रही है ? उस दिन अरुण को रूनू के साथ जाना ही पड़ा।

रूनू की मामी उसे देखते ही हँस दीं, "अरे, यही अरुण है ? मैं तो सोच रही थी···" लेकिन पल-भर में उन्होंने अपनी हँसी का स्विच ऑफ कर दिया ताकि अरुण को यह न लगे कि वह उसका बेल जैसा घुटा हुआ सिर देखकर हँस रही हैं।

अरुण उनसे मिलने से पहले संकोच महसूस कर रहा था, लेकिन बातचीत के दौरान, वह भूल ही गया कि वह यहाँ पहली बार आया है। उसे अपने घुटे हुए सिर का भी ख्याल नहीं रहा। आजकल वह

अक्सर यह बात भूल जाता है।

मामी जब चाय लाने चली गयीं तो रुनू ने उससे बिल्कुल सटकर उसके कानों में फुसफुसाते हुए कहा, "एइ, इस वक्त तुम्हारी बगल में अपने को बिल्कुल विष्णुप्रिया-विष्णुप्रिया-सी महसूस कर रही हूँ।"

अरुण ने हँसकर अपने सिर पर हाथ फेरा। धोबी-धुले धोती-कुर्ते की क्रीज ठीक की। धोती पहनकर चलने-फिरने में उसके अनाड़ी-पन की छाप जाहिर हो जाती है। उसे परेशानी भी होती है। लेकिन मामी की बातें सुनकर उसे लगा, वह पैण्ट पहनकर नहीं आया, यह अच्छा ही किया।

मामी चाय का पानी चढ़ाकर वापस लौट आयी। उन्होंने खेद प्रकट किया, "रुनू को बहुत रंज हुआ था। काफी रोयी-धोयी भी थी कि तुमने उसे अपनी माँ के मरने की खबर तक नहीं दी।"

रुनू रोयी थी? अरुण मन-ही-मन सोचता रहा, देखा, उसने मामी को सब-कुछ बता दिया है। उसे बेहद संकोच हो आया। अगले पल ही उसे ख्याल आया···असल मे रुनू ही स्टुपिड है। उसके रोने-धोने से मामी खुद ही समझ गयी होंगी।

"इसने तुम्हारे बारे मे इतना कुछ बताया था कि मैं सोच रही थी कि तुम भी आजकल के लड़कों की तरह चोंगा पैण्ट पहनते होंगे?" मामी ने हँसते हुए कहा, "तुम यह सब विधि-विधान मानते हो, देखकर, अब बहुत अच्छा लगा।"

अरुण उनकी बात पर हँस नहीं पाया। उसने अन्दर-ही-अन्दर अपने को बहुत छोटा महसूस किया। उसे लगा जैसे उसने किसी और की भूमिका चुरा ली हो। वह अपना गलत नाम बताकर किसी और व्यक्ति की भूमिका अदा कर रहा हो। वह क्या सचमुच यह सब मानता है? बिल्कुल नहीं। बड़की माँ से डाँट सुननी होगी, लोग निन्दा करेंगे कि जीते-जी तो माँ को प्यार नहीं दिया, उसके मरने पर भी उसे कोई दुःख नहीं हुआ···इसी डर से···या अपने किये का प्रायश्चित करने के लिए ही उसने सिर घुटा लिया हो, सब नेम-नियम मान रहा हो। हुँह: जैसे नेम-नियम मानने-भर से वह हीरे का टुकड़ा कहलाने लगेगा।

धोती-कुर्त्ता और घुटा हुआ सिर देखकर रूनू की मामी की नजरों में उसकी कीमत बढ़ गयी।

"तेरा दोस्त बड़ा शरीफ है रे, रूनू! वह आजकल के जमाने का लड़का लगता ही नहीं है।" रूनू की मामी ने चाय की प्यालियों में चाय उँड़ेलते हुए दुबारा अपनी बात दुहरायी।

हुँहः पोशाक! कपड़े! मानो कपड़े ही सब-कुछ हैं। जरा बन-ठनकर, सीधी-सादी भाषा में बातें करो, बस···अद्‌भुत लड़का हो गया। मामी की बात सुनकर, वह संकोच से गड़ा जा रहा था। उसने आँखें उठाकर एक बार रूनू की तरफ देखा। रूनू हल्के-से हँस दी, मानो छेड़ रही हो···मामी की आँखों में कितनी खूबी से धूल झोंक रहे हो।

···टिकलू ठीक ही कहता है, "छाते की मूठ की तरह सिर झुकाये चला कर, पालिश की हुई भाषा में बात किया कर और ऋषिकेश बाबुओं को प्रणाम ठोंका कर, बुआ दुलार से 'ला-जा बेटा' पुकारेगी।"

रूनू के यहाँ काफी देर तक बातें होती रहीं। अरुण अचानक उठ खड़ा हुआ।

सीढ़ी तक छोड़ने आते हुए मामी ने कहा, "अच्छा, फिर आना बेटे!"

अरुण ने सिर हिलाकर हामी भरी और रूनू के साथ नीचे उतरने लगा।

रूनू दरवाजे तक छोड़ने आयी।

शाम हो आयी थी। उसने सीढ़ी की खिड़की से झाँककर देखा, दूर तक फैलते हुए अँधेरे में, रास्ते के दोनों ओर रोशनी की झिल-मिलाती हुई कतारें! चन्द्रमल्लिका के सफेद फूलों की तरह जगर-मगर करती हुई सड़क। इस वक्त अरुण का चेहरा भी खिला हुआ दिख रहा था।

अचानक डॉ० रुद्र से मुठभेड़ होते ही उसका चेहरा बुझ गया। वह धक्-से रह गया।

डॉ० रुद्र तेज कदमों से सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे, अरुण पर नजर पड़ते ही ठिठक गये। अरुण उनसे कतराते हुए, तेजी से नीचे उतर गया। रूनू भी उसके पीछे-पीछे नीचे उतर आयी।

उसके बाद रूनू ने उससे क्या कहा, उसे विदा देते हुए वह हँसी थी या नहीं। उसने कोई बात की थी या नहीं, उसे कुछ याद नहीं। कैसे उसने सड़क पार की, कैसे बस पकड़कर घर लौटा, उसे कुछ याद नहीं है। उस वक्त वह अपने को एक टूटा हुआ जहाज महसूस कर रहा था।

अच्छा, डॉ० रुद्र क्या उसे पहचान गये होंगे? डॉ० रुद्र उसके मामा के पास अक्सर आते हैं। रूनू ने ही नीचे उतरते हुए बताया था। लेकिन जब वह डॉ० रुद्र से मिला था, उसके सिर पर बाल थे और उसने शर्ट-पैण्ट पहन रखी थी। एक नजर में कोई उसे पहचान सकता है? लेकिन अगर उन्होंने उसे पहचान न लिया होता, तो उसे देखकर वह ठिठक क्यों जाते?

प्रेशर-कुकर में उबलने से गोश्त की हड्डियाँ कैसी मुलायम हो जाती हैं। अरुण की नसें, घुटनों के जोड़, कन्धे, सब जैसे रबड़ की तरह झूल गये। उसमें जैसे सीधे खड़े रहने की भी ताकत नहीं रही।

घर में घुसते ही मौसी की आवाज सुनायी दी। बापू को बता रही थीं कि वह अपने बेटे को दार्जिलिंग कान्वेण्ट में भेज रही हैं। यहाँ तो आये दिन हड़ताल! हड़ताल! आजकल छोटी मौसी अक्सर आती हैं, इधर-उधर की ढेर सारी बातें करती हैं। जिस दिन वह नहीं आतीं तो बापू बिल्कुल चुपचाप पड़े रहते हैं।

अकेले और निःसंग! इन दिनों मौसी माँ बननेवाली हैं। उनके शरीर पर काफी मांस चढ़ गया है। अरुण को उसकी वजह मालूम नहीं थी, अतः उसे लगा खा-पीकर खूब खर्राटे भरती हैं, इसी से मुटिया रही हैं। दिदिया का बेटा जरा बड़ा हो जाये, तो वह उसे यहीं ले आयेगा ताकि बापू का दिल बहल जाये। लेकिन वह बच्चा तो दिदिया का भी मुँहबोला है। वह उसे हरगिज नहीं भेजेगी।

अचानक रूनू का ख्याल आते ही उसने सिहरकर आँखें मूँद लीं।

वह चाहकर भी अपनी आँखों के आगे से सीढ़ीवाला वह दृश्य हटा नहीं पा रहा है। अब तक रूनू को सारी बातें पता चल चुकी होंगी।

"भइया, खाना नहीं खाना है ?" मीलू ने पूछा।

"नहीं रे, आज तबीयत ठीक नहीं लग रही है।"

मीलू ने भाई की तरफ देखा। माँ के न होने से, भाई को बहुत तकलीफ है। अब तो उसकी बीमारी-आरामी की भी खबर लेनेवाला कोई नहीं है।

उसने अरुण के माथे पर हाथ रखकर बुखार देखना चाहा। अरुण उसका हाथ हटाते हुए झल्ला उठा, "तंग मत कर, मीलू ! मैंने कहा न, मुझे तंग मत कर !!"

तुझे अविनाश की याद है, टिकलू ? अरे, वह जो नीमा को प्यार करता था। कम-से-कम उनका यही ख्याल था। नौकरी लगने पर, वह राउरकेला चला गया। उसे छोड़ने के लिए मैं भी स्टेशन गया था। नीमा भी उसे छोड़ने आयी थी। अविनाश ने कहा, "नीमा तो टैक्सी में ही वापस जायेगी, तू भी उसके साथ चला जा। तू उसी रास्ते से तो जायेगा।"···आज उन बातों को याद करके हँसी आती है। जानता है टिकलू, हमें टालीगंज जाना था। साउदर्न एवेन्यू पार करते ही रांगा चाची का घर पड़ता था। उनके घर का कोई आदमी मुझे देख न ले, वर्ना सोचेगा, मैं इश्क करने लगा हूँ, इस डर से मैंने टैक्सीवाले से बायें चलने को कहा। मैंने सोचा था, रांगा चाची के घर की तरफ से न जाकर 'मेनका' सिनेमा की तरफ से निकल जाऊंगा। नीमा ने हड़बड़ाकर कहा, "नहीं ! नहीं ! आज नहीं ! आठ बज चुके हैं। मैंने फिर भी जबर्दस्ती की और टैक्सीवाले से मेनका की तरफ टैक्सी मोड़ लेने को कहा। हाँ, मैं उससे यह नहीं कह सका कि उसे लेक की सैर कराने का मेरा कतई कोई इरादा नहीं है।" उस दिन जानता है क्या लगा ? हम दोनों बिल्कुल अलग-अलग भाषाओं में अपनी बात कहते रहे, लेकिन किसी ने किसी की बात नहीं समझी। मैं सोच रहा था,

नीमा बुरी लड़की है। नीमा ने सोचा होगा, मैं बुरा हूँ।"

टिकलू अरुण की बातों पर हँस पड़ा, "अबे, वह तो राखी ही थी। तूने उसे मेरे पास ही पार्सल कर दिया होता।"

टिकलू समझ नहीं पाया कि जब नीमा अरुण को बुरी लगी थी, तो उसके साथ होना भी उसे विष-दंश-सा लगा था।

इस वक्त वह भी रूनू की निगाहों में जहर लग रहा होगा। डॉ० रुद्र ने उसे जरूर बता दिया होगा, "यह लड़का बहुत बुरा है। बहुत गिरा हुआ।"

उनकी बात पर मामी ने आँखों में अचरज भरकर पूछा होगा, "अरे, नहीं! मुझे तो यह लड़का बेहद शरीफ लगा।"

सारा किस्सा सुनकर रूनू बिस्तर पर लोट गयी होगी और बेआवाज सिसक रही होगी।

उफ! उसकी किस्मत में सिर्फ नौकरी ही नहीं, सुख, दौलत, नाम, सब-कुछ टैम्परेरी है! कहीं कुछ स्थायी नहीं है, सब अस्थायी! जब जहाँ जितना मिले, लूट लो!

"वृष्टि! वृष्टि!! ···आज तुम्हें एक नया नाम दिया—वृष्टि!" उस दिन भरी बरसात में, धुँधलाए हुए, काँच मढ़े हुए कमरे में रूनू ने अरुण के मन का पोर-पोर भर दिया था। उसकी मुरझायी हुई आँखों में नरम-नरम कोंपलें खिला दी थीं। गुनगुनी धूप की किरणों में चमकते हुए रुपहले तार अचानक काले पड़ गये···। अब चारों तरफ सिर्फ अँधेरा!

रूनू ने मुग्ध होकर कहा था, "यह नाम बेहद प्यारा है! इतने प्यार से शायद किसी ने, किसी को नहीं पुकारा होगा।"

वह रूनू भी अब उसे नहीं मिल पायेगी। दरअसल उसे कहीं कुछ भी नहीं मिलेगा। अब तक वह भला था, अचानक बुरा हो गया! निहायत गिरा हुआ आदमी!

बहुत दिनों पहले एक दिन उर्मि ने कहा था, "भइया-भाभी परेशान हैं कि मैं शादी क्यों नहीं कर रही हूँ! लेकिन बेचारा माइनिंग-इन्जीनियर! लेकिन उसका भी आखिर क्या कसूर? उसका

भी तो कोई प्लान होगा···।"

लेकिन उस प्लान के फन्दे में उर्मि ने अरुण को क्यों फँसा दिया ?

"तू अपनी खबर तो दे सकती है ? कभी-कभार मिल तो सकती है ?" अरुण ने क्षुब्ध होकर अभिमान-भरे स्वर में कहा।

उर्मि झरने की तरह खिलखिला उठी ! जैसे कहीं कुछ भी नहीं घटा हो। उसने अपना सफेद पर्स बगलवाली कुर्सी पर रख दिया और एक कुर्सी खींचकर बैठ गयी। उसने हँसते हुए अरुण से कहा था, "मुझे देखे बिना जरा परेशान होगा, जरा छटपटायेगा, तभी तो समझूँगी कि तू मुझे सचमुच असली प्यार करता है।"

रूनू को खो देने के ख्याल से, अरुण के मन में अभी भी तीखी कड़वाहट थी। उस दिन उसे उर्मि के हँसी-मजाक का पुराना लहजा भी बुरा लग रहा था। उसका यह मजाक उसके दिल में नुकीले तीर की तरह चुभ गया। अरुण ने उपेक्षा-भरे लहजे में कहा, "मैं ? और तेरे प्यार में ? प्यार और तुझसे ? हुँह: !"

चारों ओर सिगरेट का धुआँ !···कॉफी की महक,···शोरगुल ! बातें ! बहस ! फुसफुसाहटें ! अरुण को लगा जैसे कोई कंकरीट मिलाने की मशीन को तेजी से घुमा रहा हो। वहाँ का सारा माहौल बेहद असहनीय लग रहा था। कम उम्र के लड़के-लड़कियों की भीड़। जिन्हें बैठने की जगह नहीं मिली, वह बैठे हुए लोगों की तरफ ऐसी तरसी हुई निगाहों से देख रहे थे, मानो वह कहीं से आये हुए शरणार्थी हों और जो लोग बैठे थे, उन्होंने उनकी जगह पर जबर्दस्ती हक जमा रखा हो। अरुण ने अचानक उर्मि की तरफ देखा।

उर्मि का चेहरा बेहद फीका और सफेद लगा। उर्मि ने निगाहें झुका लीं और कॉफी के प्याले में धीरे-धीरे चम्मच हिलाती रही, फिर आहत अभिमान से पूछा, "अरुण, तू मुझसे नफरत करने लगा है न ?"

नहीं, नहीं,···वह उर्मि से नफरत क्यों करने लगा ? असल में वह रो रहा है, भीतर ही भीतर सुबक रहा है। उसे रूनू को खो देने का खौफ भी नहीं है। वह तो उसके प्रेम में अपने को खो देने के ख्याल से परेशान है। उसके मन के दुःख-दर्द और खुशी के पलों पर एक

अनजाना आतंक हावी होता जा रहा है।

"तू नहीं जानती उर्मि, पिछले कई दिन मैंने कैसे गुजारे हैं।" अरुण ने उसाँस भरकर कहा।

वह मन ही मन दोहराता रहा···वह उर्मि ही थी, जिसने माँ के मरने पर उसे उदास नहीं होने दिया। रूनू के लिए उसके मन में अब जरा भी प्यार नहीं है। रूनू के सन्दर्भ में उसे सिर्फ भय, सन्देह और अविश्वास ही मिला है। खैर, अब तो उसे चैन की साँस लेने दे। अरुण ने धीमी आवाज में कहा, "····मैं···मैंने तो बस, थोड़ी-सी कृतज्ञता चाही थी, उर्मि!"

उर्मि ने चौंककर अरुण की तरफ देखा, "अरुण···सब···सभी तो अपने अहसानों की कीमत चाहते हैं। कम-से-कम तू···"

अरुण के शरीर-भर में वितृष्णा की लहर दौड़ गयी। उसने तिलमिलाकर कहा, "हाँ-हाँ, मैं तुझसे नफरत करना चाहता हूँ। नफरत! और सिर्फ नफरत!!"

अरुण सोच रहा था···हम जाने क्या कहना चाहते हैं और जाने क्या बोल जाते हैं। उर्मि के प्रति उसने हल्की-सी नाराजगी और अभिमान दिखाना चाहा था। वह उससे नफरत क्यों करने लगा?

डॉ० दत्त ने रूनू को आगाह कर दिया होगा, 'देख, वह लड़का नम्बरी बदमाश है।'

रूनू की मामी ने विस्मित होकर कहा होगा, "देखी उसकी करतूत? मैंने तो रूनू से कहा था, लड़का बेहद शरीफ है।"

रूनू के मामा कह रहे होंगे, "छिः, छिः! रूनू को पहचानने की अकल नहीं है, छिः!"

अरुण को लगा उसके दिलो-दिमाग और शरीर के रेशे-रेशे में कैंसर हो गया है। कोई भयंकर गेहुँअन साँप उसकी अंतड़ियों और गले की नसों को कुतर रहा है, आहिस्ते-आहिस्ते चबा रहा है।

अचानक अरुण का दिमाग चकराने लगा। उसे लगा वह एक

भयंकर क्रिमिनल है। दुनिया में कहीं कोई भगवान-टगवान या पाप-पुण्य है भी या नहीं, उसे नहीं मालूम ! लेकिन उसके सीने में एक अनजाने गुनाह का अहसास हमेशा जिन्दा है। माइनिंग-इन्जीनियर से अगर कहीं कोई भूल हो गयी हो, तो दो दिन बाद वह उर्मि को ब्याह ले जायेगा। उसके सारे गुनाह धुल जायेंगे। लेकिन अगर वह उर्मि को दो दिनों पहले ब्याह ले जाता तो अरुण भी पाप करने से बच जाता। अगर कहीं सचमुच कोई पाप है, तो वह परमात्मा के इन्साफ के परे है। हर आदमी अपने दोष-पाप का इन्साफ खुद करता है। वह अपने किए हुए अपराधों का इन्साफ भी जरूर करता है। अरुण निश्चित रूप से अपराधी है। दरअसल, मनुष्य-मात्र नास्तिक होता है। भगवान के नियमों को कोई नहीं मानता, सब इन्सान के बनाये हुए नियमों को ही कीमती मानकर चलते हैं। इसीलिए कोई आदमी भगवान से नहीं डरता। अपने बनाये हुए नियमों से भी खौफ नहीं खाता। वह सिर्फ मानवकृत नियम-कानूनों और विधि-निषेधों से घिरे हुए समाज से घबराता है।

"अरुण, ये सब नियम-कानून ऐसे हैं कि हम अपनी ही नजरों में लुच्चे-लफंगे नजर आते हैं। शायद इसीलिए हम लोग पहले की अपेक्षा अधिक लुच्चेपन पर उतर आते हैं। अगर यह सब नियम बदल डालें, तो देखना, हम सब भी शरीफ नजर आयेंगे।"

"···तुम जैसे लड़कों को चाबुक से पीटना चाहिए। अब तुम मेरे पास आने की हिम्मत मत करना। मुझसे मिलने की भी जरूरत नहीं है। खबरदार, मुझे फोन भी मत करना। आप···कौन साहब बोल रहे हैं? जी नहीं, अब मैं आपसे बात भी नहीं करना चाहती।" अरुण के कानों में मानो रूनू की आवाज गूंज उठी। उसे लगा, रूनू ने झटके से फोन रख दिया है और अपनी मामी को बता रही है, 'वही बदमाश था, मामी !'

"···एइ, एक बात कहूँ, हँसोगे तो नहीं? प्रेम क्या होता है, मैं नहीं जानती थी, तुमने ही मुझे प्यार करना सिखाया है।" एक दिन रूनू ने कहा था।

लेकिन आज वह शायद यह कह रही होगी, "नफरत क्या
मैं नहीं जानती थी, तुमने ही मुझे नफरत करना सिखाया है।"

चलो, मान लिया अरुण में ही कोई कमी है, जो अपने को कहीं
नहीं कर पा रहा है। लेकिन क्या सुजीत या टिकलू ही कहीं फि
पा रहे हैं···? कोई कहीं फिट नहीं हो पाया। अब कॉफी-हाउस
अड्डा जमना बन्द हो गया। वहाँ भी अब नयी-नयी शक्लें नजर
हैं। कमउम्र लड़के-लड़कियों के चमकते हुए चेहरे! अभी उनके दि
मे ढेर सारी महत्त्वाकांक्षाएँ करवटें ले रही हैं। वह लोग बात-बात
जोर से ठहाके लगाते हैं, बहसें करते हैं! सपने, हाँ, सपने देखते हैं
अरुण उनके सामने अपने को बेहद बुझा हुआ और पराजित महसूस
करता है।

"अरुण 'दा, यहाँ क्या कर रहे हैं?", किसी लड़के ने उसे अकेले
बैठे देखकर पूछा।

साथ वाला लड़का फर्माइश कर बैठा, "अरुण 'दा, आज आपको कॉफी पिलानी होगी।"

हुँह:, अरुण 'दा मानो बर्मा शेल कम्पनी के डायरेक्टर हो। वह अपनी कॉफी के लिए ही पैसे नहीं जुटा पाता, यहाँ सबको कॉफी पिलाओ! जब भी ये लोग उससे पूछ बैठते हैं, 'आजकल क्या कर रहे हैं, अरुण 'दा?' तो उसका जी छन्न से जल उठता है! अभी तो यह रोना है कि वह कुछ नहीं कर रहा है। इसके बाद वह अपनी तन्खाह छुपाता फिरेगा। उस दिन रास्ते में राधानाथ से मुलाकात हो गयी तो वह शान से बताने लगा, 'आठ सौ रुपये तन्खाह है!' हुँह: ब्लफ! ···लेकिन···हो सकता है, उसने सच ही कहा हो। लेकिन किसी को इतनी सारी तन्खाह भी मिलती है?

उसने बैरे को बुलाकर तीन कॉफी लाने का आर्डर दिया। उसे
लगा ये लड़के जैसे प्लान बनाकर आये हों, 'चल, अरुण 'दा को चोट
आयें।' स्साले, उसी का खायेंगे और बाद में उसी के खिलाफ बातें

बनायेंगे। शराफत की कोई कद्र ही नहीं रह गयी है। वह जो मूँछवाला इंटलेक्चुअल छोकरा आता है, निश्चित रूप से बेकार है। उस दिन उर्मि ने उसके प्रति जरा-सी शराफत दिखायी, तो वह स्साला चिपकने की कोशिश करने लगा। शायद उसे यह भ्रम हो गया हो कि उर्मि को उससे इश्क है !···बहुत दिनों पहले नीमा भी उससे शराफत से पेश आयी थी। साउदर्न एवेन्यू की तरफ टैक्सी मुड़ते देखकर उसे लगा, अरुण उसके साथ लेक की सैर करना चाहता है। ऐसी स्थिति में वह आखिर क्या करती ? नाराज हो जाती ? चीखकर टैक्सी-ड्राइवर से गाड़ी घुमा लेने को कहती ? उसने ऐसा कुछ भी नहीं किया, बेहद शराफत से सिर्फ इतना ही कहा, "एइ, नहीं, नहीं ! आठ बज चुका है !" बस, टिकलू ने सारा किस्सा सुनते ही छूटते ही रिमार्क कसा, "अरे, वह तो बेहद चीप लड़की है !" उसकी तरह अरुण भी शायद उसे बेहद गिरी हुई लड़की समझ बैठा था।

दरअसल, शराफत की कहीं कोई कीमत नहीं है। खैर, असल में मन की भावनाओं, आवेगों की कहीं कोई कीमत नहीं है ? उर्मि या रूनू, किसी ने भी उसके मन की कद्र नहीं की। टिकलू तो उसका मजाक उड़ाते हुए कहता है, "अबे, इस दुनिया में सिर्फ एक चीज की ही कद्र है—योजना ! हर बात में प्लान करके आगे बढ़ो—चाहे वह प्रेम का मामला हो या नौकरी या ख्याति का !"

"लेकिन हम सब सिर्फ अपने-अपने घेरों में सिमटे हुए पेड़ भी नहीं हैं, रे ! हम सब बिखरे हुए लोग हैं। हम लोगों के सामने कोई योजना ही नहीं है !" अरुण ने कहा।

टिकलू हँस दिया, "तुझे सत्येन की याद है ? अपने स्कूल वाले सत्येन की ? वह कहा करता था, हर आदमी को जिन्दगी का एक निश्चित नक्शा बनाना चाहिए। दिन-रात रट्टू तोते की तरह वह पढ़ाई में लगा रहा। बी० ई० पास करके नौकरी में घुसा। जानता है, दो महीने हुए, उसकी भी छँटनी हो गयी···।"

अच्छा, राधानाथ को क्या सचमुच आठ सौ रुपये मिलते हैं ? सुखेन ने भी बताया था कि वह अफसर हो गया है। अलोक भी

विलायत चला गया। बड़े आदमी का बेटा जो था!···हूँह. सुनते हैं, फॉरेन एक्सचेन्ज ही नहीं मिलता!···यह तमाम वाक्य सुनते ही उसे अपने-आप से नफरत होने लगती है। उसका भी दूसरे लोगों से ईर्ष्या करने का मन होता है। उसका जी होता है, वह इस दुनिया को लट्टू की तरह अपने हाथ पर उठा ले और उल्टी दिशा में जोर से घुमा दे या अंडे की तरह किसी के चेहरे पर दे मारे। सब कुछ टूट-फूटकर बिखर जाये, तो शायद उसे चैन मिले। कोई बात नहीं। वैसे चाहे रिक्शा खींचकर ही गुजारा क्यों न करना पड़े, लेकिन वह औरों को भी सुख की नींद हर्गिज-हर्गिज नहीं सोने देगा!

उर्मि की प्रतीक्षा करते हुए, अरुण की निगाहें बार-बार दरवाजे की तरफ उठ जाती थीं।

अब उर्मि भी उसे अच्छी नहीं लगती। उसी ने उसके प्यार को तबाह कर दिया। यूँ कहा जाये कि मन ही मन उसकी जो तस्वीर बनायी थी, उर्मि ने उसे तोड़-फोड़ डाला।

लेकिन उर्मि ने आखिर ऐसा कौन-सा गुनाह कर डाला? दरअसल अब तमाम लोग यह बात जान चुके हैं कि उन्हें कहीं कुछ नहीं मिलना है। इसलिए जहाँ से जितना मिलता है, उसे टुकड़ों में ही जी लेना चाहते हैं। अब वह इस मुगालते में नहीं रहना चाहते कि किसी दिन उन्हें सब कुछ पूरा-पूरा मिल जायेगा। अब उन्हें लगता है कि जो मिलता है, वह अभी ही मिल जाये! बिल्कुल अभी!!"

कॉफी हाउस में शोरगुल की आवाज काफी तेज थी। कहीं तू-तू मैं-मैं छिड़ गयी है या गम्भीर आलोचना हो रही है, समझ नहीं आया। कहीं किसी की कोई बात समझ में नहीं आ रही थी। लेकिन लोग हैं कि बोलने पर आमादा हैं तो बोलते चले जा रहे हैं। लेकिन जो आदमी जो बात कहना चाहता है, शायद वही नहीं कह पा रहा है।

कहीं कोई कुर्सी खाली नहीं थी। उस वक्त कॉफी हाउस में आने-वाला हर आगन्तुक यही महसूस करेगा कि सिर्फ वही फालतू है।

इस उमस-भरी गर्मी और शोरगुल के माहौल में अरुण लोगों ने जाने कैसे इतने सारे दिन गुजार दिए। अब वही लोग एकान्त में हैं।

कहीं किसी निर्जन बियावान में चुपचाप बैठे रहने की तबीयत होती है। अरुण रूनू को खो देने के दुःख में थोड़ी देर गमगीन होना चाहता है।

कॉफी हाउस के दरवाजे के ठीक सामने ढेर सारे अपरिचित चेहरों के बीच में उर्मि का चेहरा दूर से दिख गया। अरुण को देखते ही उर्मि आगे बढ़ आयी। वहाँ के बैरे को वह हमेशा अच्छा-खासा टिप देती है, अतः वह भाग-दौड़कर कुर्सी उठा लाया। सामनेवाली मेज पर एक जोड़ा बिल्कुल आमने-सामने बैठा हुआ था। वह गोरी-छरहरी लड़की डिसपेप्सिया की मरीज की तरह प्लेट पर प्लेट साफ करने में जुटी हुई थी। इधर वाली मेज पर एक झुण्ड लड़के उस सिन्दूरी चेहरेवाली लड़की को घेरकर बैठे हुए थे। उस लड़की के उघड़े हुए अंग-अंग जैसे प्रलोभन दे रहे थे!

अरुण की पासवाली मेज पर चार-पाँच नौजवान बैठे थे, जो शक्ल-सूरत से अतिशय नीरस लग रहे थे। उनमें से लम्बे बालोंवाला लड़का बात-बात में काफी ताव खा रहा था।

उर्मि ने कुर्सी खींचकर बैठते हुए उन लड़कों की तरफ देखकर कहा, "अरुण, तू आजकल इतना वेजिटेरियन कैसे हो गया है?"

"मैंने सोचा, वह लम्बू शायद तुझे पसन्द आ गया हो।"

उर्मि हँस दी, फिर फुसफुसाकर कहा, "येस, वाकई उसका कन्धा काफी चौड़ा है।"

हठात् चारों ओर गाढ़ी चुप्पी छा गयी। अरुण को सारी बातें टुकड़ों-टुकड़ों में यादें आने लगीं। वह मन ही मन गुस्से में उबलने लगा। उस दिन उर्मि जल्दी चली गयी थी। अरुण को सुनाने का मौका ही नहीं मिला।

"तू बेहद कृतघ्न है। अहसान-फरामोश!!" अरुण ने उर्मि को सुनाते हुए कहा।

उर्मि का चेहरा फक्क् पड़ गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

अरुण को अपनी बात पर अफसोस होने लगा। वह कुछ न कहता तो शायद बेहतर होता। अच्छा, ऐसा भी तो हो सकता है कि अस्पताल

से लौटकर उर्मि को अपने पर बेहद शर्म आयी हो। उसे लगा हो कि वह अरुण के आगे बहुत छोटी हो गई है।

उस दिन वह बहुत थोड़ी-सी देर के लिए आयी थी। लेकिन उतनी-सी देर में ही उसने चाहा था कि हँसी-मजाक करके हल्की हो जाये। उसने कोशिश की थी कि अपनी पुरानी खुशमिजाजी में लौट आये, लेकिन वह बुरी तरह असफल रही। दरअसल पिछली जगहों या रूपों में लौटना नामुमकिन है।

आज भी काफी समय बीतता चला गया, उर्मि एक बार भी नहीं हँसी। एक बार भी ऐसा कुछ नहीं कहा कि वह हल्का हो सके। अपने सीने में एक तीखा दर्द दबाये हुए, वह खामोश रही।

उर्मि ने घर लौटते हुए, एक बार सिर्फ बस-स्टॉप पर जुबान खोली। उसने धीमी आवाज में कहा, "तू मुझे बेहद प्यार करता है न, अरुण ?"

अरुण ने मारे अभिमान के कोई जवाब नहीं दिया। उसकी आँखें भर आयीं।

उर्मि ने दुबारा कहा, "यह बात तूने मुझे पहले क्यों नहीं बतायी, अरुण ? तूने मुझसे कुछ कहा क्यों नहीं ?"

अरुण ने विस्मित निगाहों से उर्मि की तरफ देखा। उसे कभी इतना परेशान नहीं देखा था।

प्रिन्सेप घाट के उसी खम्भे के नीचे बेंच पर बैठते हुए उर्मि ने कहा था, "कभी-कभी मेरा क्या मन होता है, जानता है, अरुण ? मेरा मन होता है, लोगों के मन की तमाम तकलीफें और खालीपन, मैं भर दूँ। मैं हर किसी को ढेर सारा सुख दे डालूँ। काश, ऐसा सम्भव होता !"

"अच्छा, एक बात बतायेगा अरुण, मुझे प्यार करके तू सुखी हो पाता ?"

अरुण ने उसकी इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह उसी तरह मौन बना रहा।

उर्मि ने उसी तरह धीमी आवाज में दुबारा कहा, "जब तेरा दस्तखत किया हुआ कागज देखा...डॉ० रुद्र ने मुझे दिखाया था, तब..."

अभी

मुझे नहीं मालूम था, अरुण···" रुलाई के मारे उर्मि की आवाज काँपने लगी।

अभी थोड़ी देर पहले अरुण ने उसे कृतघ्न और अहसान-फरामोश कहा था।

उर्मि ने उसी तरह शिथिल आवाज में कहा, "हम जिसे प्यार-मुहब्बत कहते हैं, असल में वह कुछ नहीं होता अरुण, कुच्छ नहीं!! देख, तू कभी गलत मत होना···वर्ना हर बार लौटकर मैं किसके छाँह गहूँगी?"

अरुण सोचता था उसे किसी ने प्यार नहीं किया। माँ, बापू, दिदिया—सबसे वह उपेक्षा ही बटोरता आया है। शायद इसलिए उसका भी किसी को प्यार करने का मन नहीं हुआ। वह रूनू ही थी जिसने उसे प्यार करना सिखाया।

···आजकल बापू डेक-चेयर से पीठ टिकाये, चुपचाप बैठे रहते हैं। इन दिनों अरुण भी कभी-कभार उनके पास बैठ जाता है। उनसे दो-चार बातें करने की कोशिश करता है।

"अब तो नौकरी करना भी अच्छा नहीं लगता रे!" एक दिन बापू ने उसांस भरकर कहा।

उस वक्त अरुण का मन हुआ, काश, उसे एक बढ़िया-सी नौकरी मिल जाये तो वह बापू से कहे, 'बापू, तुम अब नौकरी मत करो।'

इन दिनों उसे दिदिया भी अच्छी लगने लगी हैं। जिस दिन अक्षय 'दा दिदिया को लेकर वापस जा रहे थे, उसकी जुबान से पहली बार निकला, "दिदिया! अच्छा होता, अगर और कुछ दिन रह जाती। तेरे रहने से बापू का मन लगा रहता है।"

सच, बापू को बहुत तकलीफ है। सचमुच उन्हें किसी ने नहीं समझा। हर किसी ने उनका बाहरी रूप ही देखा। बापू ने भी अगर और लोगों की तरह बड़े-बड़े डॉक्टर, अस्पताल और नर्सों पर सैकड़ों रुपये लुटाये होते, तो उनके इन दिखावों से खुश होकर लोग तारीफ करते,

"शाबाश ! इस आदमी ने अपने भरसक बहुत किया। सचमुच यह दुःखी है।" माँ की तकलीफ देखकर बापू ने दिल से चाहा था कि वह जल्दी से जल्दी मर जाये, उनकी इस टूटन को कोई भी नहीं समझ सका।

"भइया, देख, देख ! नीम के पेड़ की निबौलियाँ कैसी पियरा गयी है।" मीलू मुट्ठी-भर निबौली धोकर ले आयी।

अरुण ने देखा, निबौलियाँ महुए की तरह पक कर पीली पड़ गयी थीं। आकार में महुए से जरा-सी छोटी होगी।

मीलू ने दो दाने मुँह में डालते हुए सन्तोष से पलकें मूँद ली, "आह, कित्ता मीठा है ?"

...कड़वे नीम के फूल सुगन्ध बिखेरते हैं ! नीम की निबौलियाँ मिठास देती हैं !

दोपहर खाना खाने के बाद, अरुण को जोरों की नींद आने लगी। लेकिन वह इस डर से बिस्तर पर नहीं लेटा कि कहीं सो न जाये।

हर रोज दोपहर को वह टिकलू के प्रेस में फोन के सामने बैठा रहता है। उस समय टिकलू के बापू खाना खाने चले जाते हैं। अरुण की निगाहें एकटक फोन पर जमी रहती हैं। कहीं ऐसा न हो कि फोन की घंटी बजे और सुनाई न दे।

रूनू को अपनी तरफ से फोन करने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। प्रेस के तमाम लोगों से उसकी जान-पहचान है। अपना काम करते हुए उनमें से कोई-कोई कारीगर उसके पास आ बैठता और बातों का सिलसिला छेड़ देता। जिस कारीगर के हाथ में कोई काम नहीं होता, वही उसके पास आकर बैठ जाता है। अरुण भी उनके साथ हँस-बोल लेता है। उनकी बातों में हूँ-हाँ भी करता रहता है, लेकिन दरअसल उनकी एक भी बात उसके कानों तक नहीं पहुँचती। उसका ध्यान तो टेलीफोन की तरफ लगा रहता है। जाने कब फोन की घंटी बज उठे। बीच-बीच में वह अपनी घड़ी पर निगाह डालकर उदास होने लगता है।

यह भी अजीब परेशानी है। कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ है कि निश्चित समय बीत जाने पर भी, उसने समूची दोपहर फोन का इन्तजार किया है। फोन आने के लिए मन-ही-मन प्रार्थना करता रहता है।

नहीं, फोन अब नहीं आयेगा—अरुण ने बुदबुदा कर लम्बी उसाँस ली। उसके सीने से अचानक एक दबी हुई, आह उभर आयी।

···अब फोन नहीं आयेगा! हरगिज नहीं आयेगा। सीढ़ी पर डॉ० रुद्र से मुलाकात वाला दृश्य, उसकी आँखों के आगे तैर गया। उसके मन के भीतर कहीं कुछ कचोट उठा। इधर कई दिनों से वह सब कुछ भूलकर, सारा काम-काज छोड़कर, भागता हुआ आता है और सिर्फ फोन का इन्तजार करता है। उसकी आँखें हर वक्त घड़ी की सूइयों और फोन की तरफ लगी रहती हैं। लेकिन रूनू ने उसे नहीं पुकारा! नहीं ही पुकारा!!

किसी-किसी दिन उसे रूनू को खुद ही फोन करने का लोभ हो आया। लेकिन वह एकबारगी डर गया। कौन जाने रूनू की मामी फोन उठाये और उसकी आवाज सुनते ही क्रोध और नफरत से लाइन फाट दे। वह सोच रही होगी—छिः छिः, ऐसे नीच को शरीफ आदमी समझा था, या रूनू ही फोन उठाये और चीख उठे···

रूनू क्या कहेगी अरुण नहीं जानता!

लेकिन अन्त में उससे नहीं रहा गया। उसने खुद ही उसे फोन किया।

रूनू की आवाज वैसी ही मधुर, भरी-भरी-सी लगी।

अरुण को जैसे कुछ भी याद न रहा। नहीं, वह डॉ० रुद्र को नहीं जानता। उसने कोई गुनाह भी नहीं किया। उसने अस्फुट स्वर से कहा, "रूनू, रूनू, अब मैं हार रहा हूँ···हार गया।"

"अरे, मैं तो आने ही वाली थी। अभी तुम्हें ही फोन करने जा रही थी। आज तो आपका जन्मदिन है, जनाब!" आवाज में भरी-भरी हँसी छलक पड़ी।

आह! कितना-कितना सुख! मानो भोर वेला में किसी ने पाइप से छिड़काव कर दिया हो। उसका सारा बुखार उतर गया। उसके मन का सारा खौफ भी मिट गया। हो सकता है डॉ० रुद्र ने शायद उसे पहचाना ही न हो। माँ की मौत की वजह से उसका सिर घुटा हुआ था। उस दिन वह धोती-कुर्ते में था यानी वह बेकार ही डर गया।

···अगर वह दोषी है तो डॉ० रुद्र भी अपराधी हैं। वह आखिर किस मुँह से अरुण को स्काउण्ड्रल कहेंगे ? अरुण को हँसी आने लगी···। डॉ० रुद्र उसे ही स्काउण्ड्रल समझ रहे होंगे। उर्मि की हालत के लिए उसे ही जिम्मेदार समझते होंगे।

"···अरे, मैं तो आने ही वाली थी··· आज तो आपका जन्मदिन है, जनाब।"

उसके पीछे उसकी मामी भी खड़ी होंगी। आप ! आप !! आप !!! अरुण को बहुत मजा आता है जब रूनू बाहरी लोगों के सामने उसे 'आप' कहती है। वह मानो यह बताना चाहती है कि उन दोनों के बीच कहीं कुछ नहीं है।

उस दिन सुजीत जबर्दस्ती उसके साथ हो लिया था और रूनू बार-बार उसे 'आप-आप' कह रही थी।

सुजीत के जाते ही वह जोर से हँस पड़ी, 'उफ' बाप रे। इतनी देर में मेरा तो दम घुटने लगा था। चलो, अब तुम्हें 'तुम' कहने का मौका तो मिला।

अरुण को उसकी बातें बहुत अच्छी लगी थीं। अब तो वह सुजीत तथा और लोगों के सामने भी तुम ही कहने लगी है, सिर्फ मामी के सामने—"आज तो आपका जन्मदिन है। ज-न-म-दि-न।" उसे यह सोचते हुए बहुत अच्छा लग रहा था।

सच ही तो।···वह तो भूल गया था कि आज उसका जन्मदिन है। ज-न-म-दि-न। वह इसी दुनिया में है। उसके आस-पास और लोग भी चल रहे हैं···यह शहर कलकत्ता है···इन दिनों उसे जैसे इन बातों का भी होश नहीं था। अच्छा, उसे क्या वैसा ही लग रहा है जैसा उसने पटना से लौटकर महसूस किया था। कलकत्ता नामक शहर मानो उसकी आँखों में धूल झोंककर आगे निकल गया है। ना··· ऐसा भी नहीं लगा। पहले उसे ऐसा लगता था मानो सिर्फ रूनू ही उसकी अपनी है···उसके सिवा और कहीं कुछ अपना नहीं है। इन दिनों सिर्फ यही अफसोस होता है कि अब शायद रूनू ही नहीं है, बाकी तमाम लोग हैं, इसीलिए इन तमाम लोगों पर बेहद खीज और

अभी हो···

झुंझलाहट होती है। वह लोग ही आखिर क्यों रह गये ? क्यों ? अगर रूनू ही नहीं है, तो बाकी लोग भी क्यों हैं ?

"एइ, बस, अभी पहुँच रही हूँ ! अ्भी !!"

अरुण मैट्रो सिनेमा के सामने आकर खड़ा हो गया। ···उस वक्त भी तेज धूप थी। अरुण को लगा समूचा आकाश पारदर्शी हो आया है और बेहद सौम्य तरीके से गुनगुनी ठण्डक और रोशनी की उजली किरणें बिखेर रहा है। सड़क के उस पार पेड़ की छाया में एक गाड़ी खड़ी थी। उसके बोनेट पर एक भिखारिन बैठी हुई थी और रेलिंग पर बैठे हुए नौजवान भिखारी से खूब घुल-मिलकर बातें कर रही थी। एक जोड़े नीरस कौए आकाश में मँडराते हुए आपस में झगड़ रहे थे।

रूनू आयी तो सही लेकिन हमेशा की तरह उसके होंठों पर हँसी नहीं बिखरी। अरे धत्त्···अरुण को तो जैसे हर वक्त शक होता रहता है। बस की भीड़भाड़ और दमघोटू गर्मी में कहीं दिमाग ठिकाने रहता है ? ऐसे में रूनू क्या खाक हँसेगी ?

"मैंने टिकट खरीद लिये हैं।" अरुण ने कहा।

रूनू ने सिर हिलाकर सहमति जतायी। अरुण आज इतना खुश था कि जाने क्या-क्या कहता रहा, उसे कुछ भी होश नहीं रहा। रूनू सुन भी रही है या नहीं, उसने इसका भी ख्याल नहीं किया।

हॉल में घुसते हुए रूनू ने अरुण के हाथ में चुपचाप एक सिगरेट-लाइटर थमा दिया। लाइटर पर एक खूबसूरत-सा मोनोग्राम खुदा हुआ था।

अरुण ने हॉल में घुसते ही एक बार लाइटर जलाकर देखा, फिर बुझा दिया। कहा, "बेहद खूबसूरत है। यहाँ इसलिए जलाया कि इसकी रोशनी में पहली बार तुम्हें ही देखूँ।"

रूनू हँसी या नहीं, समझ नहीं आया।

अगले ही क्षण अरुण को फटी हुई आधी टिकटों की याद हो आयी। फिल्म की आधी टिकटें अभी भी उसकी जेब में पड़ी थीं।

फिल्म शुरू हो गयी, रूनू ने टिकटें नहीं माँगी। शायद वह भूल गयी हो। उसके जन्मदिन पर दिया हुआ सिगरेट-लाइटर उसे पसन्द

आया, इस खुशी में शायद वह टिकट माँगना भी भूल गयी। घर लौटकर जब वह अपना दराज खोलेगी—जिन्दगी-भर टुकड़ों-टुकड़ों में संचित सुखों का दराज—तब उसे याद आएगा। अपनी भूल पर शायद वह अपसेट हो जायेगी।

अरुण ने खुद ही कहा, "एइ, टिकटें नहीं लेनी हैं?" उसने हँसते हुए टिकटें उसकी तरफ बढ़ा दीं।

रूनू ने बेहद शिथिल हाथों से, मानो बेहद अनिच्छा से टिकटें ले ली। फिर आहिस्ते से जैसे अपने से ही कहा, 'मैंने यह सब छोड़ दिया! आजकल ये सब चीजें बटोरना बुरा लगता है।'

अरुण को एक जोर का धक्का लगा। उसे लगा, रूनू ने उसका अपमान करने के लिए यह बात कही है। मानो उस कागज के टुकड़े या अरुण की उपस्थिति की आज कोई कीमत ही नहीं है। अच्छा, कहीं ऐसा तो नहीं···?

"बहुत दिनों बाद उस दिन अचानक अयन से मुलाकात हो गयी।" रूनू ने कहा।

अरुण की मारे शर्म के मर जाने की तबीयत हुई।

"एक बार अयन को भी ऐसा ही लाइटर दिया था···" रूनू कह रही थी।

अरुण को लगा, जैसे अयन का नाम बोलते हुए, रूनू की भरी-भरी आवाज में और अन्तरंगता झलक उठी है।

उसे लगा, रूनू ने अयन को लाइटर के साथ-साथ अपनापन भी दिया होगा। उसे सिर्फ एक लाइटर!

रूनू जब जाने लगी तो अरुण ने पूछा, "अब दुबारा कब मिलोगी?"

रूनू ने भौंहों पर बल डालकर कहा, "अब देखो! आज तो तुम्हारा जन्मदिन था, इसी से मिलने चली आयी।"

जब तक रूनू की बस दिखाई देती रही, अरुण उसी तरफ देखता रहा। बस के ओझल होते ही उसकी आँखें, मारे दर्द और अपमान के धुँधली हो आयीं।

अभी ही···

'वृष्टि ! ओ वृष्टि !! मुझे बहुत डर लगता है। हर वक्त बस यही लगता है कि तुम मेरे पास नहीं हो—नहीं हो !'

'एई, वृष्टि, तुम्हें पता है, मुझे कभी किसी ने प्यार नहीं किया। अब तक मैंने अपने से सिर्फ नफरत की है। जब से तुम मिली हो, अपने से प्यार करने लगा हूँ।'

वृष्टि ! वृष्टि !! वृष्टि !!! रूनू के दिल में जैसे अभी तक धीमी-धीमी बारिश हो रही हो।

···रूनू अपने घर के दरवाजे पर खड़ी-खड़ी अरुण को जाते हुए देखती रही। गली के मोड़ पर पहुँचकर, ओझल हो जाने से पहले, अरुण ने एक बार पीछे मुड़कर देखा था। रूनू जानती थी, अरुण मुड़कर देखेगा। हालांकि, इतनी दूर से वह दोनों एक-दूसरे को साफ-साफ नहीं देख पा रहे थे, फिर भी मीठी-सी हँसी हँस दी। अरुण भी धीमे से हँस दिया।

उस दिन रूनू जब ब्याह के घर से लौटकर आयी तो कीमती साड़ी उतार कर एक किनारे डाल दी और एकदम से लेट गयी। तैयार होकर निकलते समय उसने साड़ी, ब्लाउज और कानों के कोरों में हल्की-सी खुशबू भी लगायी थी, उस दिन वह घर आकर लेटते ही सो गयी लेकिन जब नींद खुली तो कमरा सेंट की भीनी-भीनी खुशबू से महक रहा था। उसे ब्याह वाले घर की खुशी-हंगामे याद आते रहे। अरुण के चले जाने के बाद, उसी तरह की एक बासी महक उसे उदास कर जाती है।

बहुत सारी घटनाएँ उसे टुकड़ों-टुकड़ों में याद आती रहीं··· 'वृष्टि, किसी दिन अगर तुमने मुझे छोड़ दिया, तो मैं जिन्दा नहीं रहूँगा।' आज भी उसकी पलकों, होठों और माथे पर उस बारिश के दिन की उत्तेजना वैसे ही अंकित थी, जैसे घड़ी उतारकर रख देने पर भी कलाई पर उसके निशान रह जाते हैं, या कान की इयरिंग की तरह ···जब वह स्कूल में पढ़ती थी, उसके एक कान की इयरिंग कहीं गिर

गयी, उसे पता भी नहीं चला था। घर लौटकर माँ से बुरी तरह डाँट पड़ी। इयरिंग खो देने के लिए उतनी डाँट नहीं पड़ी जितनी सोना खोने के लिए। सोना खो जाना अपशकुन होता है। किसी बुरी घटना का पूर्व-संकेत! यह सब सुनकर वह बुरी तरह डर गयी।

…उन्हीं दिनों बापू का खत आया था कि माँ बहुत बीमार है। उसे काफी तकलीफ है। उस खत में यह खबर भी थी कि बगलवाले मकान की मीना भाभी उसकी माँ का तीन तोले का हार, बहन के ब्याह में पहनने को ले गयी थीं, अब लौटाने का नाम ही नहीं ले रही हैं।

रूनू को माँ पर गुस्सा आने लगा। बापू ने तो जाने कितनी बार आगाह किया है, आजकल के जमाने में इतनी सहजता से किसी पर भरोसा नहीं करना चाहिये।

…यह नन्दिनी भी अजीब बौड़म लड़की थी। उसने विराम पर भरोसा करके निश्चित रूप से गलती की है।

सुबह-सुबह रूनू अपने दोमंजिले मकान के बरामदे में रेलिंग से टिककर खड़ी थी। उसकी खुली हुई आँखें मानो कुछ देख नहीं रही थीं। एक खामोश उदासी उसके सीने में बोझ की तरह जमकर बैठ गयी थी। वह बिलकुल ब्लैंक हो रही थी।

रास्ते से अचानक परम 'दा ने आवाज दी, "रूनू, सुनो, कल मैं नन्दिनी को अपने यहाँ लिवा लाया। तुम उससे एक बार मिल जाना।"

रूनू के चेहरे पर पल-भर को खुशी नाच उठी, अचानक बुझ गयी। उसने सिर हिलाकर कहा, "अच्छा, आऊँगी।"

थोड़ी देर के लिए वह दुविधा में पड़ी रही लेकिन अन्त में अपने को रोक नहीं पायी। वह पैरों में चप्पल डालकर नन्दिनी की तरफ चल दी।

उस अँधेरी-सी सँकरी गली में सिर्फ दो आदमियों के साथ-साथ चलने भर-की जगह थी। रास्ते के बीचों-बीच पानी से भरे हुए दो-चार गड्ढे! उनमें अभी भी कुछ कंकड़-पत्थर पड़े थे। रूनू अपनी साड़ी

और चप्पल सम्हालती हुई आगे बढ़ी और उस मकान के पहले मंजिले के दरवाजे पर हल्की-सी थाप दी।

"···ओ, तू···? तेरी यह क्या सूरत निकल आयी ?" नन्दिनी की ओर देखते ही उसके मुंह से निकला। अचानक उसकी नजर नन्दिनी की माँग पर जा पड़ी। माँग में सिन्दूर भरा गया है या नहीं, समझ में नहीं आया। वैसे आजकल की लड़कियों के लिए सिन्दूर छुपाना भी एक फैशन है। रूनू को तो देख-देखकर गुस्सा आता है। जब उसका व्याह हो जायेगा, तो वह भर-माँग चौड़ा-सा सिन्दूर लगायेगी और माथे पर सिन्दूर की दमकती हुई बड़ी-सी बिन्दिया।

लेकिन नन्दिनी को तो फैशन आता नहीं, वह जानती है। दिन की रोशनी में जैसे निओन-साइन वाले विज्ञापन बेहद फीके और मटमैले लगते हैं, नन्दिनी भी उसी तरह फीकी और उदास नजर आयी।

इतने दिनों बाद रूनू को देखकर नन्दिनी ने हँसने की कोशिश की।

नन्दिनी की भाभी ने भी मुस्कराते हुए दुलार-भरे स्वर में कहा, "आओ रूनू, तुमने तो इधर आना ही छोड़ दिया !"

नन्दिनी थोड़ी देर तक चुपचाप बैठी रही, फिर एक उसाँस भरकर कहा, "रूनू, तू ही बता, अब मैं क्या करूँ ?"

रूनू को उसके बारे में सारी बातें मालूम हैं। वह सब सुन चुकी है। उसने छूटते ही कहा, "उसे डाइवोर्स दे दे···!"

नन्दिनी थोड़ी देर चुप हो रही, फिर धीमी आवाज में कहा, "हाँ, मेरी जिन्दगी तो तबाह हो गयी, अब उसकी जिन्दगी तबाह करने से क्या फायदा होगा ? किसी के गले का ढोल बनने से तलाक दे देना बेहतर होगा।"

नन्दिनी की भाभी अपने खुले बालों में तेल रगड़ते हुए, तेल की शीशी रखने के लिए अन्दर आयीं। नन्दिनी की बात उनके कानों में भी गयी। रूनू को याद आया, नन्दिनी के चले जाने पर भाभी कित्ती नाराज हुई थीं !···कित्ता भयंकर गुस्सा था उनका ! इस वक्त उसे

फिर डर लगा कि वह शायद चीख कर कहेगी, 'जैसे अपने भाई-भावज की नाक कटायी है, अब समझो!'

लेकिन, भाभी ने ऐसी कोई बात नहीं कही। उन्होंने पास आकर प्यार से कहा, "पगली लड़की! यह सब बातें सोच-सोचकर दिमाग मत खराब करो। देखना सब ठीक हो जायेगा।"

नन्दिनी ने दुबारा कोई बात नहीं की।

रून् सोचती रही, अगर उसकी भी कोई ऐसी भाभी होती जिसे वह अपने मन की सारी···सा-री बातें बता पाती। उसे उन पर पूरा विश्वास भी होता।

रून् का बहुत कुछ कहने का मन हो रहा था। लेकिन नन्दिनी से अपने किसी सुख की बात नहीं कह पायी। उसे लगा उस बेचारी को उसकी खुशियाँ शायद अच्छी न लगें।

अरुण के जाते ही, रून् को सुबह वाली घटना याद आ गयी। उसका मन हुआ, एक बार वह परम 'दा के घर हो आये। नन्दिनी को जाकर बताये, "आज अरुण आया था, मामी ने कहा है, वह बेहद शरीफ लड़का है।"

लेकिन शाम के बाद घर से बाहर निकलने में मामी बहुत नाराज होती हैं। जिस दिन अरुण से मिलकर लौटने में जरा-सी देर हो जाती है, मामी कहती हैं, "रून्, अपनी छोटी बहनों को अगर तुम नहीं पढ़ा सकतीं, तो मुझे बता दो। मैं उनके लिए मास्टर रख दूँ।"

लेकिन असली बात रून् जानती है। असल में वह अँधेरे से बहुत घबराती है।

उस दिन की एक बात याद आते ही रून् को हँसी आने लगी। उसने दुबारा अपने माथे पर पलकों और होठों पर अरुण की गर्म साँसें महसूस कीं। उसकी पीठ पर अरुण के हाथों का स्पर्श धधक उठा था···बाहर मूसलाधार बारिश होती रही। उसे लगा अरुण बिल्कुल पागल है। उसे दीवानों की तरह प्यार करने लगा है। उस

दिन भी उसे तूफानी आवेग से प्यार करने को झुक आया था। आज भी जब वह बेहद···बे-हद खुश मूड में होता है, तो मारे सुख के उसके सीने के बीच वाले तिल, होठों, माथे और पलकों को उँगलियों से छू-छूकर देखता है।

जब तक नन्दिनी के सामने अपनी आँखें बड़ी-बड़ी करके, अरुण की गुस्से-भरी आँखों की नकल उतारने का मौका नहीं मिलेगा, उसे मजा नहीं आएगा। उसने सोच लिया, एक दिन उसके सामने वह अरुण के गुस्से की नकल उतारेगी। फिर दोनों मिलकर खूब-खूब हँसेंगे। आखिर वह क्या करे? अरुण को तो जैसे कोई अक्ल ही नहीं है।···उस वक्त भी चिलचिलाती हुई धूप थी। लोग जरा इधर-उधर खड़े थे। जनाब ने फर्माया, "एइ, इस वक्त हमें कोई नहीं देख रहा है—कोई भी नहीं···।"

रूनू को गुस्सा आ गया। उसने डाँटते हुए कहा, "देखो, ये सब हरकतें करोगे, तो मैं अब कभी नहीं आऊँगी।"

उसे एक और दिन की बात याद आने लगी। उस दिन बापू का खत पढ़कर रूनू का मन-मिजाज बहुत परेशान था। अभाव! अभाव! माँ बीमार है। छोटा भाई फेल हो गया। उस दिन अरुण को अपनी तरफ झुकते हुए पाकर, उसने रुआँसी आवाज में कहा, "सुनो, आज यह सब-कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है।"

बस्स! वह दिन और आज का दिन। अरुण ने उससे फिर कभी कुछ नहीं चाहा। वह जानती है, अरुण मन ही मन नाराज है। वह भी तो इसी बात को लेकर परेशान है। कभी-कभार उसे यह आशंका भी होती है कि अरुण शायद अब उससे कुछ भी उम्मीद नहीं करता। कौन जाने, इसी बीच कोई और लड़की···या उर्मि ही···। आखिर वह कर भी क्या सकती है? क्या वह खुद मुँह खोलकर स्वीकार करे कि कभी-कभी तो उसका भी मन करता है···। रूनू को यह सोच-सोचकर हँसी आने लगी। कोई बात नहीं, किसी को क्या पता चलेगा? किसी दिन मौका देखकर खुद ही अरुण को प्यार कर लेगी। फिर वह देख लेगी कि किसको कितना गुस्सा आता है।

"लड़का बेहद शरीफ लगता है, रनू, आजकल के लड़कों जैसा बिल्कुल नहीं लगता।" सीढ़ियाँ चढ़ते हुए रनू के कानों में मामी की आवाज दुबारा गूँज उठी। सच ही कुछ लोग तो सिर घुटाकर बेहद बदशक्ल दिखते हैं, लेकिन अरुण बिना बालों के भी बेहद खूबसूरत लगता है। अब तो उसके सिर पर नन्हे-नन्हे बाल भी उग आये हैं। लेकिन वह पहले अधिक अच्छा लगता था।

"हलो, रनू, जरा इधर आना।"

रनू सीढ़ी पार करके, अपने कमरे की ओर बढ़ी ही थी कि डॉ० रुद्र ने आवाज दी।

मामा अभी तक मरीजों को देखकर घर नहीं लौटे हैं। जब तक वह लौटकर घर नहीं आ जाते, वह मन ही मन सहमी रहती है।''' यह मामी भी जरूरत से ज्यादा सीधी हैं। जैसे कुछ समझतीं ही नहीं। डॉ० रुद्र ने उसे आवाज दी तो वह अपनी तरफ से कह सकती थीं कि उसे न बुलाएँ। यह उसके पढ़ने का वक्त है।

लेकिन डॉ० रुद्र ने जब बुलाया है, तो जाने बगैर और राह भी नहीं है।

रनू डरते-डरते उनके सामने आ खड़ी हुई।

डॉ० रुद्र ने अखबार एक किनारे रख दिया। उसने सीधा-सा सवाल किया, "वह लड़का कौन है?"

इतनी देर बाद रनू को याद आया, उस दिन जब वह अरुण के पीछे-पीछे सीढ़ी उतर रही थी, डॉ० रुद्र ऊपर चढ़ रहे थे। उसने मन ही मन अन्दाज लगाया कि वह उसे देखकर या तो विस्मित हो उठे थे या [illegible] ईर्ष्या में जल उठे हों।

हूँह, पूछ रहे हैं, वह लड़का कौन है? अरे, कोई भी हो, आपको पूछने की क्या जरूरत है, जनाब? रनू मन ही मन यह सब सोच-सोचकर मजा लेती रही। उसे गुस्सा भी आ रहा था। उसका जी हुआ डॉ० रुद्र के गाल पर एक तमाचा जड़कर कहे, 'मैं उसे प्यार करती हूँ। वह भी मुझे प्यार करता है। बस! और कुछ जानना चाहते हैं?' लेकिन सचमुच यह बात जुबान पर लाना मुश्किल था।

उसने सिर्फ इतना ही कहा, "वह मेरा दोस्त है।"

उसने देखा, डॉ० रुद्र ने सिर झुकाकर जलायी हुई सिगरेट मसलकर बुझा दी और ऐश्ट्रे में डाल दी। मानो वह अपना गुस्सा मसल रहे हों। डॉ० रुद्र का हाथ जरा-जरा काँप भी रहा था।

रूनू को उनकी हालत देखकर हँसी आने लगी।

डॉ० रुद्र थोड़ी देर चुप रहे, फिर कहा, "अच्छा जाओ, शायद तुम्हारे पढ़ाने का वक्त हो गया है।"

रूनू अन्दर जाते हुए मन ही मन बुरी तरह हँस रही थी।

रूनू ने सोचा, डॉ० रुद्र शायद अरुण को जानते हैं। धत्! वह कुछ नहीं जानते। कुच्छ भी नहीं!

...इन दिनों रूनू के कॉलेज की छुट्टियाँ हैं। रोज दोपहर के वक्त वह कई बार फोन के पास आ खड़ी होती है। मामी बगलवाले कमरे में सो रही हैं। रूनू उनके कमरे में एक बार झाँककर निश्चिन्त हो गयी। उसने धीरे-से हाथ बढ़ाकर रिसीवर को छूकर देखा। आह! रिसीवर को छूते हुए एक अजीब-सा सुख मिलता है। दिल की सारी आग ठण्डी पड़ जाती है। फोन का रिसीवर मानो अरुण की हथेलियाँ हों। लेकिन अगले ही क्षण उसकी आँखें गुस्से और अभिमान के मारे छलछला आयीं। न्ना, अब वह उसे फोन नहीं करेगी। उससे मिलने भी नहीं जायेगी। एक दिन तो उसने टिकलू के प्रेस का नम्बर भी डायल कर डाला, लेकिन उधर घण्टी बजते ही उसने झट् से फोन रख दिया।

जिस शाम, अरुण ने भरी बरसात में उसे पहले-पहल प्यार से छुआ था, उसके समूचे बदन में थरथराहट भर गयी थी। वह इस सर्वथा नये अहसास से विस्मित हो उठी थी। किसी और व्यक्ति का शरीर, उसके तन-मन को इतना प्यार-दुलार दे सकता है, और आदमी की देह में इतने सारे सुख छुपे पड़े हैं, वह नहीं जानती थी। वह मानो गढ़ैये की कीचड़-भर थी, किसी मूर्तिकार के हाथों ने रातों-रात उसे तराशकर सुन्दर बना दिया। उसकी आवेग-भरी हथेलियों और होठों का स्वाद अभी तक उसके मन में रिमझिम-रिमझिम फुहार-सा बरस रहा है।

"एइ, देखो तो, मेरे बाल ठीक हैं न···। और बिन्दी ?" उस दिन प्रिन्सेस घाट से लौटते हुए उसने ठिठककर पूछा था। उसके बाद अपने पर्स से लिप्स्टिक निकालकर होंठो पर फेर ली।

उन दिनों रूनू के मन में बहुत सारे सपने जागने लगे थे।

लेकिन···वह अरुण के प्रति कहीं बेइन्साफी तो नहीं कर रही है ? डॉ० रुद्र का ही कौन भरोसा ? लेकिन उन्होंने जो कुछ बताया, उस पर विश्वास करने के अलावा और उपाय ही क्या है।

···उस वक्त भी तीखी धूप थी। रूनू की सारी देह धूप में जैसे फुँकने लगी। प्यास के मारे उसका चेहरा, गला, यहाँ तक कि अन्दर छाती तक सूखी जा रही थी। कहीं बूँद-भर भी छाँह नहीं मिली। वह कॉलेज से निकलकर बस-स्टॉप की तरफ चलती गयी। उससे अब इन्तजार नहीं किया गया। एक-एक करके कई बसें आयी, लेकिन सब इतनी भरी हुई थी कि वह किसी भी बस में नहीं चढ़ पायी। उसका समूचा चेहरा और पीठ पसीने से भीग गयी।

डॉ० रुद्र की कार ठीक उसके सामने आकर रुक गयी। डॉ० रुद्र ने हाथ बढ़ाकर गाड़ी का दरवाजा खोल दिया। रूनू खिल उठी और गाड़ी में आकर बैठ गयी। इस वक्त उसे जरा भी डर नहीं लगा। उस असहनीय धूप में, बस के लिए खड़े रहने के बजाय गाड़ी में बैठना अधिक लोभनीय लगा।

लेकिन उस दिन अगर डॉ० रुद्र की गाड़ी में न बैठी होती, तो शायद इतनी बड़ी ट्रेजेडी न होती।

कलेजा तोड़ देनेवाले असहनीय दर्द से छटपटाते हुए यूँ दम तो न घुटता।

रूनू ने अपना मन कड़ा करने की कोशिश की। न्ना, हरगिज नहीं···! कभी नहीं !! कितना भी लोभ क्यों न हो, वह फोन को हाथ भी नहीं लगायेगी। वह अरुण को अब कभी फोन नहीं करेगी। छिः, छिः ! वह मन ही मन अपनी गलती के लिए अपने को कोसती रही।

उसके सीने में एक असहनीय दर्द उमड़-घुमड़कर उसे तकलीफ दे

रहा था। उसे लगा उसका दम घुट जायेगा। शायद उसकी साँस टूट जायेगी। आह ! मौत से बढ़कर शायद और कोई राहत नहीं होती।

लेकिन आज वह किसी भी तरह अपने को संयत नहीं कर पा रही है। वह कहीं से बेहद कमजोर पड़ती जा रही है। इन दिनों जब कभी वह अरुण को फोन करने या मिलने को बेचैन हो उठी है, उसकी आँखों के आगे वह कागज तैर गया, जो डॉ० रुद्र ने उसे दिखाया था और जिस पर अरुण के दस्तखत थे।

"यकीन मानो रूनू, मैंने तो सोचा था, तुम्हें कुछ भी नहीं बताऊँगा, लेकिन···।"

उस दिन की बात याद आते ही रूनू की आँखें बेभाव बरस पड़ीं। वह तकिये में मुँह गड़ाये, फफक-फफकर रोती रही।

लेकिन उस दिन कलैण्डर पर नजर पड़ते ही, उसके सारे निर्णय और सौगन्ध कहीं खो गये। अरुण ! अरुण !! आज अरुण का जन्म-दिन है।

"मेरे जन्मदिन के दिन मेरी माँ का रूप ही कुछ और होता है। जानती हो रूनू, सिर्फ इसी दिन मुझे लगता है, माँ मुझे कित्ता प्यार करती है।"

अचानक उसे ख्याल आया, इस बार तो उसकी माँ भी नहीं है। उसे कौन कितना चाहता है, कोई उसे प्यार करता है या नहीं, इस बार वह यह समझने से भी रह जायेगा।

···दरअसल वह परले दर्जे की मूर्ख है। अरे, डॉ० रुद्र ने जो कागज दिखाया, हो सकता है, उस पर अरुण की जगह किसी ने जाली दस्तखत कर दिया हो या हो सकता है अरुण ही अपनी सफाई में कुछ कहना चाह रहा हो। हम लोग इन्सान को आखिर समझ ही कितना पाते हैं ?

रूनू मन ही मन मनाती रही, अरुण कुछ बोले। इन्सान जाने कब कौन-सी गलती या अन्याय कर कर बैठता है और फिर जिन्दगी-भर उसकी सजा झेलता है। न्ना, अरुण ने अगर···हो सकता है अरुण से मुलाकात होते ही, वह उसे सारी बात बता दे। शायद वह खुद ही कुछ

कहे। अच्छा अरुण उसे इतनी दीवानगी से प्यार करता है, उसके लिए इतनी-इतनी परेशानी उठाता है, तो वह उसकी यह गलती माफ नहीं कर सकेगी ?

उसने लगातार कई-कई दुकानों में घूमने के बाद अरुण के लिए एक लाइटर खरीदा।

बहुत दिनों पहले अयन को भी उसने ऐसा ही एक लाइटर दिया था। लाल रंग का मोनोग्राम खुदा हुआ।

अयन उसे पाकर बेहद खुश हुआ था। रूनू भी खिल गयी थी। उस दिन उसे लगा था वह अयन को पहले की अपेक्षा अधिक प्यार करने लगी है। लेकिन अरुण के प्यार में तो वह शुरू दिन से ही अपनी सुध-बुध खो बैठी थी।

उसकी निगाह में अयन दुबारा छोटा हो गया। अरुण की तरह, बिल्कुल टुच्चा ! उसे अब अरुण पर जरा भी विश्वास नहीं रह गया। उसकी सारी बातें बनावटी थीं, झूठमूठ की ऐक्टिंग थी।

लेकिन अब भी उसके मन में नन्ही-सी उम्मीद थी—डॉ० रुद्र का इल्जाम झूठा भी तो हो सकता है। उससे मुलाकात होने पर अरुण कुछ-न-कुछ जरूर कहेगा, वर्ना फोन पर उसकी आवाज इतनी टूटी हुई और दुखी क्यों लगती ? अरुण उसे खुद फोन क्यों करता ?

लेकिन अरुण से निगाहें मिलते ही उसकी सारी देह में भयंकर आक्रोश और कड़वाहट का तीखा जहर फैल गया। उसके बाद रूनू एक पल को भी सहज नहीं हो पायी। अरुण उसे देखकर परेशान क्यों नहीं हुआ। वह इतना सहज क्यों लग रहा है ? उसने बताया क्यों नहीं कि वह डॉ० रुद्र को पहचानता है ? वह खुद भी तो स्वीकार कर सकता था, 'रूनू, जिन्दगी में मुझसे एक बड़ी भारी भूल हो गयी है।'

आज अरुण का जन्मदिन है—रूनू ने मन ही मन कसम खायी कि आज वह उसे कुछ भी पता नहीं लगने देगी। उस पर कोई इल्जाम नहीं लगायेगी। वह खुद ही उसकी राह से हट जायेगी। वह तकलीफ सह लेगी लेकिन मुँह खोलकर 'उफ' तक नहीं करेगी।

लेकिन आज अरुण का साथ उसे असहनीय क्यों लग रहा है ? सच

अभी हो!⋯::

ही, क्या उसे अरुण से नफरत होने लगी है ?

हॉल में पास-पास बैठकर भी रूनू को लगा, वह उससे बहुत दूर छिटक गयी है। शायद उनका प्यार मर गया है।

अरुण ने रूनू के दिये हुए लाइटर को हिला-डुलाकर देखा, फिर खुश होकर तारीफों के पुल बाँध दिये।

रूनू मन ही मन बुदबुदायी, "अब तुम्हारी किसी तारीफ का मुझ पर कोई असर नहीं होगा।"

अरुण ने लाइटर जलाकर, उसकी रोशनी में रूनू का चेहरा देखा।

रूनू सोच रही थी, "उसके प्यार पर अब उसे कभी भरोसा नहीं होगा।"

उसी समय अरुण ने हमेशा की तरह सिनेमा की दोनों टिकटें उसकी तरफ बढ़ाकर पूछा, "तुम्हें यह टिकटें नहीं लेनी हैं ?"

"रहने दो ! क्या होगा ?" उसकी बातें सूने उच्छ्‌वास-सी जान पड़ीं।

रूनू से मन ही मन कहा—इन टिकटों की अब कोई कीमत नहीं है ! अब उसे इनकी जरूरत भी नहीं है।

उसने बेहद अनिच्छा से हाथ बढ़ाकर वह टिकटें ले लीं, लेकिन वह जानती है उसके संचित सुखों के दराज में अब कोई नया सुख जुड़ने-वाला नहीं है। अब कोई ताजी स्मृति भी शेष नहीं है।

तालाब की गन्दगी, एक दिन मूर्तिकार के हाथों का स्पर्श पाकर प्रतिमा बनी थी, आज विसर्जन की रूपहीन प्रतिमा या निःशेष सुखों की एक ताल की कीचड़-भर रह गयी है।

पहले-पहल जब डॉ० रुद्र के मुँह से सारा किस्सा सुना, उस दिन उसे अरुण से कितना डर लगा था ! डर और घृणा ! घृणा और आक्रोश ! उस वक्त उसका निर्विकार चेहरा बिल्कुल जड़ और बेजान हो आया था।

फिल्म समाप्त होते ही हाल की बत्तियाँ जल उठीं। रूनू को अचानक ख्याल आया, अनजाने में ही उसने जाने कब वह टिकटें फाड़-कर फेंक दी हैं। फटे हुए टिकटों की चिन्दियाँ उसके पैरों के नीचे पड़ी

थीं। अब उन टिकटों के प्रति उसका कोई मोह नहीं रहा। उसने अपने पैरों से ठोकर मारकर उन्हें दूर तक बिखेर दिया।

किसी टूटे हुए जहाज या बदसूरत प्रतिमा की तरह या खोये हुए मुखौटेवाली साल-भर मिट्टी की तरह वह हॉल से बाहर निकली। सारी राह उसके मन में असहनीय दर्द और तीखी कचोट उमड़ती रही। प्रतिमा-विसर्जन के बाद सारा पंडाल जैसे भाँय-भाँय करने लगता है, रुनू के मन में भी वैसा ही सन्नाटा गूँजता रहा।

उस समय अगर कोई उसे देखता तो उसे लगता उसकी आँखें देखना भूल गयी हैं। उसका मन बेहद ऊँचाई से गिरा हुआ पंछी है, जिसके पंख टूट गये हों। उसकी देह किर्चों में बिखर गयी है और अब सिर्फ खालीपन बच रहा है। उसके सीने में निराशा और शून्यता का हाहाकार-भर बच रहा है।

वह खो गयी। अपना कहने को अब उसका कुछ भी नहीं है—कुछ भी नहीं।

रुनू बेजान मशीन की तरह अपने को घसीटती हुई घर लौट आयी। उसने सारे समय क्या किया, अरुण से क्या-क्या बातें कीं, उसे कुछ याद नहीं था।

उसका मन हो रहा था, वह दौड़कर इसी वक्त नन्दिनी के पास जाये और फूट-फूटकर रो दे।

अपने को आँसुओं के सैलाब में बहाकर अपने सीने का बोझ हल्का कर ले या···

रुनू की मशीनवत उँगलियों ने अपना पर्स टटोलकर देखा और बिना कुछ सोचे-समझे मशीन की तरह ही दराज की चाबी निकाली।

पल-भर को वह जाने किन ख्यालों में खोयी रही, फिर चाबी घुमाकर अपने संचित सुखों का दराज खोलकर बैठ गयी। इतने दिनों से टुकड़ों-टुकड़ों में संजोए हुए सुखों का दराज! बूँद-बूँद करके इकट्ठी की हुई स्मृतियों का दराज!! इस जमाने में जैसे लोगों को कभी किसी दिन भी समूची पूर्णता नहीं मिलेगी। वह या अरुण या नन्दिनी—विराम कोई पूर्ण मानव नहीं हो सकता। कोई भी नहीं! उन लोगों के दिलों

में कोई उम्मीद या अपेक्षित भविष्य भी बाकी नहीं है। उस जैसे लोगों को कभी कुछ नहीं मिलेगा। कुछ सुख हैं, जो राहों में अनायास ही टूटकर आ गिरे हैं, सबके-सब उन्हें ही बीनते-बटोरते आगे बढ़ रहे हैं। दिव्य या अयन या अरुण, सब—सब की यही नियति है। सबने यही चाहा था कि उनका जो प्राप्य है, वह अभी ही मिल जाये···अभी ही! लेकिन उन्हें जो मिलता है, वह टुकड़ों-टुकड़ों में बँटा हुआ। रूनू को लगा था शायद इन सबके सहारे ही आदमी जिन्दा रह सकता है। उसकी तरह इस जमाने का हर आदमी शायद यही सोचता है।

दरअसल सब गलत है। मन की भूल है। टुकड़े-टुकड़े सुखों से मन नहीं भर सकता। उन जैसे लोगों को कभी किसी दिन भी जिन्दगी को छूकर देखने का हक नहीं मिलता। उन्हें किसी दिन भी जिन्दगी का भरपूर अहसास नहीं हो पाता।

रूनू ने अपने उन रोमांचक सुखद पन्नों का दराज आहिस्ते से खोला। कागज के छोटे-छोटे टुकड़े! खत! रंगीन लिफाफे! सेंट की खुशबू! नन्ही-नन्ही चीजें! कई-कई यादें! कई-कई सुख! रूनू ने दृष्टिहीन की तरह उन पर हाथ फेरकर जिन्दगी की हरारत महसूस करनी चाही। अपने बेटे की लाश पर हाथ फेरती हुई किसी शोकातुर माँ की तरह, उसकी हथेलियाँ काँप गयीं। उसकी आँखें भर आयीं। उसकी दुनिया में एक व्यक्ति ऐसा भी है जिसे छू पाने में वह अपने को असमर्थ पा रही है, एक सुख ऐसा है जिसे वह आत्मसात् नहीं कर पा रही है। उसका प्यार जैसे मर गया है। सारा का सारा सुख जैसे कहीं खो गया है।

अचानक उसका हाथ अपने रिबन पर गया। यह रिबन किसने दिया था, कहाँ मिला था, वह याद नहीं कर पायी। उसे यह भी याद नहीं है कि उस रिबन के साथ कोई सुखद स्मृति भी जुड़ी थी या नहीं! दराज में पड़ी हुई ऊन की सलाइयाँ, उसे काँटे की तरह चुभ गयीं। उसके स्कूल की नीमा दीदी उसे बहुत प्यार करती थी! धत्! कोई किसी को प्यार नहीं करता। जरा भी नहीं करता। रूनू की नजर अचानक अनुराधा के भइया के खत पर जा पड़ी। 'मुझे तुमसे

अधिक खूबसूरत लड़की, कहीं नहीं दिखी।' हुँह! अर्थहीन, खोखले शब्द। आज उसे पता चल गया है कि उसमें कहीं कोई खूबसूरती नहीं थी। वह किसी दिन भी सुन्दर नहीं लगी। दरअसल आदमी के मन का प्यार ही उसे खूबसूरत बना देता है। उसे कभी किसी ने प्यार नहीं किया।

रून की आँखें भर आयीं। सामने की सारी चीजें धुँधली हो आयीं। अन्धों की तरह उन टुकड़े-टुकड़े सुखों को टटोलकर देखती रही। दिव्य 'दा का छोटा-सा खत! अयन की दो लाइनों की कविता! लोहे के तारों से बनी हुई एक भूलभुलैया! जब वह छोटी थी, तो एक मेले में खरीदी थी। किसी आश्चर्यजनक जादू की तरह ये दोनों व्यक्ति उसके मन के बन्द दरवाजे से होकर अन्दर दाखिल हो गये थे। उसने तो अपने दरवाजों पर कसकर सिटकिनी लगा दी थी, लेकिन उन्हें अन्दर आने से नहीं रोक पायी। वह इस कदर उसके मन की गहराइयों में समा चुके हैं, कि उन्हें जबरन् निकाला भी नहीं जा सकता। लोहे की एक भूलभुलैया! रंगीन रिबन! सिलाई के काँटे! वैसे इन चीजों की कोई खास कीमत नहीं होती। खत! कविता! रंगीन पंख...

उसने वह रंगीन लिफाफा खोला, जिसे उसने बेहद सहेजकर रखा हुआ था। लिफाफे में रखा हुआ रंगीन पंख उसके हाथों में फड़फड़ा उठा। गहरे नीले और आसमानी रंगोंवाला खूबसूरत पंख! लिफाफे में बन्द पड़े रहने की वजह से वह पंख बदरंग पड़ने लगा था। अब तो बिल्कुल फीका पड़ गया था।

हम लोगों की जिन्दगी में भी कहीं कोई रंग नहीं है, रून ने सोचा। वह उस पंख को छू-छूकर देखती रही। न्ना, उसके दिल में अब कहीं कोई हरकत नहीं होती! अब पुराने दिनों की तरह, वह अपने तकिये पर उँगली से अरुण का नाम लिखकर सोने की कोशिश भी करे तो यही लगेगा कि वह उससे बहुत दूर जा चुका है।

अरुण के खतों में कितनी-कितनी शिकायतें! मिन्नतें! रून उन्हें उँगलियों से छू-छूकर महसूस करने की कोशिश करती रही। लेकिन

में कोई उम्मीद या अपेक्षित भविष्य भी बाकी नहीं है। उस जैसे लोगों को कभी कुछ नहीं मिलेगा। कुछ सुख हैं, जो राहों में अनायास ही टूटकर आ गिरे हैं, सबके-सब उन्हें ही बीनते-बटोरते आगे बढ़ रहे हैं। दिव्य या अयन या अरुण, सब—सऽत्र की यही नियति है। सबने यही चाहा था कि उनका जो प्राप्य है, वह अभी ही मिल जाये…अभी ही ! लेकिन उन्हें जो मिलता है, वह टुकड़ों-टुकड़ों में बँटा हुआ। रूनू को लगा था शायद इन सबके सहारे ही आदमी जिन्दा रह सकता है। उसकी तरह इस जमाने का हर आदमी शायद यही सोचता है।

दरअसल सब गलत है। मन की भूल है। टुकड़े-टुकड़े सुखों से मन नहीं भर सकता। उन जैसे लोगों को कभी किसी दिन भी जिन्दगी को छूकर देखने का हक नहीं मिलता। उन्हें किसी दिन भी जिन्दगी का भरपूर अहसास नहीं हो पाता।

रूनू ने अपने उन रोमांचक सुखद पन्नों का दराज आहिस्ते से खोला। कागज के छोटे-छोटे टुकड़े ! खत ! रंगीन लिफाफे ! सेंट की खुशबू ! नन्ही-नन्ही चीजें ! कई-कई यादें ! कई-कई सुख ! रूनू ने दृष्टिहीन की तरह उन पर हाथ फेरकर जिन्दगी की हरारत महसूस करनी चाही। अपने बेटे की लाश पर हाथ फेरती हुई किसी शोकातुर माँ की तरह, उसकी हँथेलियाँ काँप गयीं। उसकी आँखें भर आयीं। उसकी दुनिया में एक व्यक्ति ऐसा भी है जिसे छू पाने में वह अपने को असमर्थ पा रही है, एक सुख ऐसा है जिसे वह आत्मसात् नहीं कर पा रही है। उसका प्यार जैसे मर गया है। सारा का सारा सुख जैसे कहीं खो गया है।

अचानक उसका हाथ अपने रिबन पर गया। यह रिबन किसने दिया था, कहाँ मिला था, वह याद नहीं कर पायी। उसे यह भी याद नहीं है कि उस रिबन के साथ कोई सुखद स्मृति भी जुड़ी थी या नहीं ! दराज में पड़ी हुई ऊन की सलाइयाँ, उसे काँटे की तरह चुभ गयीं। उसके स्कूल की नीमा दीदी उसे बहुत प्यार करती थी ! धत्त् ! कोई किसी को प्यार नहीं करता। जरा भी नहीं करता। रूनू की नजर अचानक अनुराधा के भइया के खत पर जा पड़ी। 'मुझे तुमसे

दरअसल उसकी कोई भूमिका ही नहीं थी।

"टिकलू, कभी तूने म्यूजिकल चेयर का खेल खेला है? हम सब भी किसी गोलाकार वृत्त में घूम रहे हैं, घूमते-घूमते मौका पाकर बैठ भी जाते हैं। उस वक्त कुर्सी पानेवाले को यही लगता है कि यह कुर्सी शायद उसी के लिए बनी है।" असल में अरुण जैसे लड़कों के लिए कहीं कोई कुर्सी नहीं होती। उनके लिए कहीं कोई भूमिका भी नहीं होती। सबके-सब फालतू और निरर्थक!

अरुण को भी स्टेज पर आने का मौका दिया गया था। मंच पर खड़े होकर, वह ऐक्टिंग के साथ-साथ अपने डॉयलाग भी बोलता रहा, लेकिन किसी को भी उसका डॉयलाग समझ में नहीं आया। इन्सान में बात करने की तमीज ही नहीं है। कोई किसी की जुबान नहीं समझ पाता या फिर हर आदमी बिलकुल अलग-अलग, बेहद अजीबोगरीब भाषा में बात करता है।

दरअसल अरुण की बात कोई समझ ही नहीं पाया। उसे किसी ने *अण्डरस्टैंडिंग नहीं दी। इसलिए उसे स्टेज से उतार दिया गया, यानी* अब वह बिल्कुल निरर्थक और बेकार साबित हो चुका है।

अरुण के बापू भी तो इसी जमाने के आदमी हैं। उन्हें भी किसी ने नहीं समझा। इन दिनों वह कैसे चुप और निःसंग हो गए हैं। कोई उनसे बात करने की कोशिश भी नहीं करता, क्योंकि उनकी बातें किसी को अच्छी नहीं लगतीं। बापू को भी आजकल के जमाने की कोई बात भली नहीं लगती। अक्सर इन सब बातों की ओर भी उसका ध्यान गया है। उसने बापू की तकलीफों को भी समझने की कोशिश की है। लेकिन उसकी समझ में नहीं आता कि वह बापू से किस विषय पर बातें करे। बापू चुपचाप अकेले बैठे रहते हैं। कभी-कभार पुराने कागज-पत्र, दस्तावेज वगैरह का पुलिंदा खोलकर बैठ जाते हैं। कभी अल्मारी खोलकर माँ की साड़ी, दुशाला, कपड़े निकालकर धूप दिखाने में व्यस्त हो जाते हैं। पुराने कपड़े निकालकर उनमें फिनाइल की गोलियाँ डालकर रखते हैं। कभी-कभी आधी रात को नींद में ही जाने क्या-क्या बुदबुदाते हैं। उनके अन्दर दबी-घुटी तकलीफें कराह बनकर

जाने क्यों सब-कुछ बेहद पराया लग रहा था। उसे लगा अब उन चीजों का रंग उतर चुका है। अरुण की शिकायतों का भी अब उस पर कोई असर नहीं होता। उसका प्यार भी इसी जंगल में कहीं गुम हो गया। अपनी हजारहा कोशिश के बावजूद वह कोई सुराग नहीं ढूंढ़ पा रही है।

रूनू फफककर रो पड़ी! अकेले पड़ने का दुःख उसकी आंखों और गालों पर आँसुओं का समुन्दर बनकर लहरा उठा। ये नन्हे-नन्हे सुख! टुकड़ों-टुकड़ों में सँजोयी हुई यादें, उसके लिए पहाड़ जैसा दुःख बन् चुकी हैं। शायद यही एकमात्र सच है। दुनिया का हर आदमी टुकड़े-टुकड़े सुख बटोरने के चक्कर में विराट दुःख में डूबता चला जाता है।

रूनू ने इतने दिनों से सहेजे हुए कागजों के छोटे-छोटे टुकड़े, सिनेमा की टिकटों की चिन्दियाँ बना डालीं। तमाम खत—दिव्य का खत! अयन का खत!! अरुण का खत!!! अनुराधा के भाई का चापलूसी-भरा खत! रूनू ने एक-एक करके सारे खत फाड़ डाले। उनकी चिन्दियाँ बनाकर उन्हें छाती से लगाये वह बराम्दे में चली आयी और अँधेरे में ही पंख-टूटे पंछी की तरह, वह शिथिल हाथों से यादों की चिन्दियाँ हवा में उड़ाती रही। वह टुकड़े अँधेरे-उजाले की आंख-मिचौनी में बुझते-चमकते पंछी की तरह इधर-उधर उड़ते रहे, फिर जमीन पर बिखर गये।

"क्या हुआ है रे, रूनू? तू रो क्यों रही है?" मामी ने उसकी पीठ पर स्नेह-भरा हाथ रखते हुए पूछा।

रूनू उसी तरह सिर झुकाये खड़ी रही। फिर कमरे में आकर बिस्तर पर लेट गयी और फफककर रो पड़ी! काफी देर तक वह रोती रही, बस रोती रही।

"···सज्जनो और देवियो, आप सब जिस व्यक्ति की ऐक्टिंग देखने को तशरीफ लाये हैं, अफसोस कि वह आज के प्रोग्राम में अनुपस्थित है। उसकी भूमिका में आज एक नया कलाकार स्टेज पर आ रहा है।"

अरुण को लगता है, वह जिस नाटक में शामिल था, उस

दरअसल उसकी कोई भूमिका ही नहीं थी।

"टिंकू, कभी तूने म्यूज़िकल चेयर का खेल खेला है ? हम सब भी किसी गोलाकार वृत्त में घूम रहे हैं, घूमते-घूमते मौका पाकर बैठ भी जाते हैं। उस वक्त कुर्सी पानेवाले को यही लगता है कि यह कुर्सी शायद उसी के लिए बनी है।" असल में अरुण जैसे लड़कों के लिए कहीं कोई कुर्सी नहीं होती। उनके लिए कहीं कोई भूमिका भी नहीं होती। सबके-सब फालतू और निरर्थक !

अरुण को भी स्टेज पर आने का मौका दिया गया था। मंच पर खड़े होकर, वह ऐक्टिंग के साथ-साथ अपने डॉयलाग भी बोलता रहा, लेकिन किसी को भी उसका डॉयलाग समझ में नहीं आया। इन्सान में बात करने की तमीज़ ही नहीं है। कोई किसी की ज़ुबान नहीं समझ पाता या फिर हर आदमी बिलकुल अलग-अलग, बेहद अजीबोगरीब भाषा में बात करता है।

दरअसल अरुण की बात कोई समझ ही नहीं पाया। उसे किसी ने अण्डरस्टैंडिंग नहीं दी। इसलिए उसे स्टेज से उतार दिया गया, यानी अब वह बिलकुल निरर्थक और बेकार साबित हो चुका है।

अरुण के बापू भी तो इसी ज़माने के आदमी हैं। उन्हें भी किसी ने नहीं समझा। इन दिनों वह कैसे चुप और निःसंग हो गए हैं। कोई उनसे बात करने की कोशिश भी नहीं करता, क्योंकि उनकी बातें किसी को अच्छी नहीं लगतीं। बापू को भी आजकल के ज़माने की कोई बात भली नहीं लगती। अक्सर इन सब बातों की ओर भी उसका ध्यान गया है। उसने बापू की तकलीफों को भी समझने की कोशिश की है। लेकिन उसकी समझ में नहीं आता कि वह बापू से किस विषय पर बातें करे। बापू चुपचाप अकेले बैठे रहते हैं। कभी-कभार पुराने कागज़-पत्र, दस्तावेज़ वगैरह का पुलिंदा खोलकर बैठ जाते हैं। कभी अल्मारी खोलकर माँ की साड़ी, दुशाला, कपड़े निकालकर धूप दिखाने में व्यस्त हो जाते हैं। पुराने कपड़े निकालकर उनमें फिनाइल की गोलियाँ डालकर रखते हैं। कभी-कभी आधी रात को नींद में ही जाने क्या-क्या बुदबुदाते हैं। उनके अन्दर दबी-घुटी तकलीफें कराह बनकर

व्यक्त होने लगती हैं।

"हम सबके-सब फालतू हैं, रे, टिकलू ! सिर से पाँव तक फालतू।"

टिकलू को कभी राजनीति करने की धुन सवार हुई थी। वहाँ भी वह निकम्मा साबित हुआ। सुजीत को पी० फॉर्म और पासपोर्ट मिल गया है। दो दिन बाद वह चला जाएगा। यहाँ की कोई कुर्सी उसके काबिल नहीं है।

उस दिन सारे दोस्त काफी देर तक कोजीनुक में जमे रहे। कोई ग्राहक आ जाता, तो उन्हें दुकान की कुर्सियाँ छोड़नी पड़ती थीं।

अरुण को ख्याल आया, जब वह इन्श्योरेन्स का प्रीमियम जमा करने जाता है, तो किसी-किसी दिन लिफ्ट में फौरन जगह मिल जाती है, लेकिन कभी-कभी लिफ्टमैन मना भी कर देता है, 'बस, और जगह नहीं है।' पहले उसे बहुत गुस्सा आता था लेकिन अब वह चुप-चाप इन्तजार कर लेता है।

इन्तजार···लेकिन अब रूनू का इन्तजार करने में शायद कोई फायदा नहीं। अरुण को लगा था, थोड़ा-थोड़ा करके उसे बहुत कुछ मिल रहा है—बहुत कुछ मिलेगा। लेकिन दरअसल उसे कुछ नहीं मिला —कुछ भी नहीं!! टुकड़ों-टुकड़ों में शायद किसी को कुछ भी नहीं मिलता। जो कुछ मिल रहा था—रूनू से प्रेम, उर्मि से दोस्ती···उसने तो उसी में सन्तोष कर लिया था।

टिकलू औरत के शरीर में ही प्यार खोजता फिरता है, लेकिन उसने प्यार में देह की कामना नहीं की थी। कभी-कभी वह सोचता है, इतनी तीखी अतृप्ति के बावजूद जिन्दा रहने का बस एक ही उपाय है—हर दिन किसी नयी अतृप्ति में अपने को डुबा दिया जाये।

सुबह बाहर आते हुए उसने देखा, बापू बराम्दे में दरी बिछाकर बैठे हैं, उनके सामने किसी बीज की ढेरी फैली हुई है। जाने कहाँ से बोरा-भर बीज मँगवाये हैं। सुबह से हाथ में चाकू लेकर उन्हें साफ करने में जुटे हैं। इस बार उन्होंने बारिश के मौसम में अपनी जमीन में बीज बोकर खेती करने का फैसला किया है। चारों तरफ ईंटों का घेरा खींचकर पेड़ लगाने का भी इन्तजाम किया है।

उसने धीमी आवाज में विराम को बताया, "अगले शनिवार को उर्मि का व्याह है !"

टिकलू ने आवाज में कड़वाहट भरकर कहा, "साले उस माइनिंग इन्जीनियर की चाँदी है और हम लोगों के सिर, माँ कसम, खर्चे का एक और आइटम ! व्याह का मतलब ही फिजूल-खर्ची !"

उर्मि निमन्त्रण-पत्र लिये-दिये सीधे अरुण के घर पर हाजिर हुई थी। कहा, "जो कुछ हुआ, उसमें क्या सिर्फ उसी का कसूर था रे, अरुण ? और फिर जिन्दगी को वदशक्ल तरीके से विखरने भी तो नहीं दिया जा सकता न ! इन्जीनियर साहब का कहना है हर बात के लिए एक प्लान बनाना जरूरी है। हर बात की एक निश्चित योजना !" सुख और तृप्ति के अहसास से उसकी पलकें अधमुँदी हो आयीं, "तू यकीन मान अरुण, दरअसल माइनिंग-इन्जीनियर मुझे बे-हद —वेहद प्यार करता है।"

उन पलों में अरुण ने यह बात साफ-साफ महसूस की थी कि असल में उर्मि ही माइनिंग-इन्जीनियर को वुरी तरह चाहती है।···रुनू ने उसे जरा भी प्यार नहीं किया।

"उर्मि दीदी वहुत स्वीट हैं रे, भइया ! उनका चेहरा कितना लव्ली है न ?" उर्मि के जाते ही मीलू ने कहा।

वापू ने भी कहा, "अच्छी लड़की है।"

असल में अब उसका अपना घर भी वहुत कुछ वदल गया है। माँ के जाने के वाद सारी वन्दिशें मिट गयी हैं। वापू कोई नया नियम-कानून लागू भी करें तो अब वह नहीं टिकेगा।

हुँहः ! वापू और मीलू को उर्मि वड़ी भली लगी। सवने उसका वाहरी रूप ही देखा। उसके किस्से सुनें तो दहश जायें। हालाँकि वह उर्मि को अच्छी तरह पहचानता है। उसके दिल की तहों के नीचे एक और पर्त भी है, जहाँ पहुँचने के वाद उससे डर नहीं लगता।

इन दिनों उसे जो नौकरी मिली है, उसके वारे में वताते हुए उसे वेहद शर्म आती है। वह हर समय एक अजीव-से संकोच से घिरा रहता है। इतने दिनों तक वेकार कहलाने में शर्म आती थी, अब

तन्खाह बताने में झिझक होती है। टिकलू, सुनीत वगैरह के सामने उसने अपनी तन्खाह कुछ बढ़ा-चढ़ाकर ही बतायी थी।

उमि के विवाह की बात सुनकर टिकलू ने कहा, "तुझे सत्येन की याद है? उसके बाप ने बड़ी प्लानिंग करके पैदा किया, इन्सान बनाया। बी० ई० पास करने के बाद उसे नौकरी भी मिल गयी। लेकिन बेचारे की किस्मत देखो, छँटनी हो गयी। इन दिनों वह भी बेकार है।"

रुनू की निगाह में अरुण भी निहायत फालतू आदमी साबित हुआ था, क्योंकि वह उसमें शायद अपन को ही ढूँढ रही थी।

अरुण अचानक उठ खड़ा हुआ, "एइ टिकलू, चलेगा?"

रुनू की याद आते ही उसके दिल में असहनीय दर्द जाग उठता है। रुनू ने उसका बार-बार अपमान किया है। उसकी निगाह में अरुण की अब कोई कीमत नहीं है।

टिकलू ने एकदम से कहा, "यार अरुण, बापू तो किसी शर्त पर मुझे प्रेस नहीं चलाने दे रहे हैं। अगर वह प्रेस का जिम्मा मुझे सौंप देते, तो मैं दावे के साथ कहता हूँ कि मैं उसमें बेहतर चला लेता। माँ कसम, बापू को मुझ पर बूँद-भर भी भरोसा नहीं है। जैसे मैं कोई गैर आदमी हूँ।

अरुण अपने दफ्तर में नया-नया आया है, अतः अपने को बेहद अजनबी महसूस करता है। जैसे कहीं कोई फालतू आदमी जबरन् ही घुस आया हो। 'म्यूजिकल चेयर' के खेल में कुर्सी खाली पाकर जम गया हो! वहाँ भी कोई उसे अपना नहीं समझता! मानो वह कोई बाहरी आदमी हो और उसमें कोई निजी योग्यता नहीं है।

आज तो छुट्टी का दिन है। रुनू आज घर पर ही होगी। अरुण ने सोचा, मारे दुःख-अपमान के बावजूद दुबारा कोशिश कर देखी जाये।

उसने टिकलू से पूछा, "एइ, टिकलू, चलेगा। चल, देखें, शायद मेरा कोई फोन आया हो।"

"अबे, तो उसमें मुझे क्या फायदा? कोई मुझे तो फोन करने से रहा।"

अरुण का मन हुआ कि वह कहे, 'मेरे नाम भी नहीं आयेगा।' किन वह चुप रह गया। अपनी बात न कह पाना भी एक तरह की न्त्रणा है। लोग उसका मजाक उड़ाते हैं। बात-बात में ईर्ष्या व्यक्त करते हैं। लेकिन उसे सुजीत और टिकलू के सामने हर रोज यह जाहिर करना पड़ता है कि वह पहले की तरह ही स्टेज पर खड़ा है।

उस आखिरी शाम को, जब वह रूनू को सिनेमा की टिकटें थमा रहा था और रूनू ने कहा था, 'रहने दो, अब मैं इन टिकटों का क्या करूंगी।' उसी दिन उसका प्यार मर गया था। लेकिन वह अब भी उस मरे हुए प्यार के निरर्थक रिश्तों का मोह नहीं छोड़ पा रहा है। यह बात वह खुद भी नहीं जानता कि जाने कब वह अयन की कुर्सी पर बैठ गया। अब तो वह अपनी ऑफिस की कुर्सी पर भी चैन से नहीं बैठ पाता। उसे हर वक्त यह डर लगा रहता है कि कोई आकर कहेगा, 'अबे, उठ! उठ, यहां से! यह कुर्सी तेरी नहीं है।'

···हां, बहुत-बहुत दिनों पहले उसके मन में यह भय, अविश्वास आ समाया था, जब उसने रूनू के मुंह से पहली बार अयन का नाम सुना था।

···उस दिन डॉ० रुद्र क्या उसे पहचान गये थे? उन्होंने ही तो कुछ नहीं कह दिया? लेकिन ऐसा होता तो रूनू उसके जन्मदिन पर क्यों आती? अगर आ भी गयी थी तो उससे कुछ पूछा क्यों नहीं?

अगर रूनू को उस पर इतना भी भरोसा नहीं है, तो वह उसे क्या प्यार करती है? अगर उसके दिल में उर्मि के प्रति प्यार भी है, तो क्या हुआ? वह भी तो हर वक्त अयन को अपने मन में बसाये रहती है! जब वह खुद भोलेपन से हंसते हुए किसी और को मन में बसाये हुए कहती है, 'आज अयन से मुलाकात हुई थी,' तो उसमें कोई पाप नहीं है। हुंह! अरुण जैसे कुछ समझता नहीं है, यानी वह निपट मूर्ख है।

यह सब सोचते हुए उसके तन-बदन में आग लग जाती है। कभी-कभी तो लगता है, यह दुनिया ही ऐसी है। एक तरफ हम अपने पुराने विचार-विश्वास छोड़ नहीं पाते, दूसरी तरफ नये-नये संस्कार सिर उठा

की कोशिश करते हैं। अतीत और भविष्य मानो गमछे की तरह हमें निचोड़ डालना चाहता है। हाँ, हाँ, अरुण को यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगता कि रूनू किसी और से भी दोस्ती बढ़ाये या किसी और से भी हँस-हँसकर बातें करे। उसने तो चाहा था कि वह सिर्फ उसी की बनी रहे। लेकिन···उर्मि भी तो उसकी दोस्त है। कोई लड़की अगर खुद आगे बढ़कर उससे परिचय करती है, तो उसे खुशी ही होनी है फिर···?

असल में रूनू उर्मि को सहन नहीं कर पायी। वह अयन को नहीं सह पाया—लेकिन ये दोनों अनपेक्षित रूप से उनकी जिन्दगी में दाखिल हो गये हैं। उन्हें हटाने का भी कोई उपाय नजर नहीं आ रहा है।

कभी-कभी निचाट खालीपन के क्षणों में उसका मन होता है, वह रूनू को सब-कुछ बताकर अपने सीने का बोझ हल्का कर ले।

उसका उतरा हुआ चेहरा देखकर एक दिन टिकलू ने पूछा था, "क्यों रे, तेरी पतंग कट गयी क्या? तेरी रूनू 'वो-कट्टा' तो नहीं हो गयी?"

सुजीत हँस पड़ा, "अबे, इसने तो किसी दिन हमारी अच्छी तरह जान-पहचान भी नहीं करायी। इसी से कहता हूँ, गुरु! कसकर चिपकाये रखने से कोई फायदा नहीं होता, कहीं न कहीं से कोई पेंच लड़ानेवाला जरूर निकल आता है।"

टिकलू ने दुबारा कहा, "अच्छा, चल, गोली मार रूनुआ को! अब कोई नयी फाँस ले। ये लड़कियाँ हमेशा के लिए किसी की अपनी नहीं बनती हैं रे! कभी नहीं।"

अरुण आखिर क्या करे? वह अपना दुःख अपने सीने में ही दबा-कर ऊपर से झूठी हँसी बिखेरने लगता है।

अरुण टिकलू के प्रेस में जाने कितने दिनों तक रूनू के फोन का इन्तजार करता रहा है। शायद उसका फोन आ-ही जाये! शायद आ-ही जाये!! लेकिन रूनू का कोई फोन नहीं आया। एकाध बार उसने खुद ही फोन करने की सोची, लेकिन अगले पल ही एक अनजाना खौफ उसकी गर्दन पर सवार हो गया। अगर डॉ० रुद्र ने उससे कुछ कह

दिया हो तो···?

दोपहर को जब वह फोन के पास बैठा रहता है, तो कोई-न-कोई कम्पोजीटर भी उसके पास आकर बैठ जाता है और गप्प-रूड़ाके में मस्त हो जाता है। उस वक्त अरुण की समूची देह में चिनचिनाहट फैल जाती है। वह मन-ही-मन झुंझला उठता है, लेकिन लोगों के सामने कुछ कह नहीं पाता है। अपने दुःख के पलों में वह अकेला रहना चाहता है, लेकिन कोई उसे अकेले भी नहीं रहने देता।

उस दिन टिकलू भी वहीं था। एक तरफ फोन न आने की शर्म, दूसरी तरफ टिकलू भी वहीं जमा हुआ था। वह शायद यह सोच रहा होगा कि रून्नू ने अरुण की छँटनी कर दी है और अरुण उसके गम में जल रहा है। उसे पागल समझ रहा होगा। उसने यह भी महसूस किया कि रून्नू की निगाह में अब उसकी कोई कीमत नहीं रह गयी है।

इस बीच अरुण ने कई बार चाहा कि वह खुद ही फोन कर ले। उससे एक बार मिलकर शुरू से लेकर अन्त तक सारा किस्सा समझा दे, तो क्या···? हाँ, वह चाहता है कि उससे सिर्फ एक बार मुलाकात हो जाये! सिर्फ एक बार!

अन्त में एक दिन उसने खुद ही रून्नू का नम्बर डायल किया। रून्नू की आवाज सुनकर उसका चेहरा पल-भर को चमक उठा। लेकिन फिर राख हुए कागज की तरह बुझ आया। रून्नू ने अरुण की आवाज सुनते ही फोन रख दिया।

"क्यों रे, क्या हुआ?" टिकलू ने अरुण के चेहरे की तरफ देखते हुए पूछा।

"लाइन कट गयी।"

अरुण और कुछ बोल नहीं पाया। उसका चेहरा शर्म के मारे विवर्ण हो आया, मानो उसने आत्महत्या का फैसला कर लिया हो।

उस दिन डबल-डेकर बस पर बैठे-बैठे अचानक उसकी निगाह सामने के फुटपाथ पर ठहर गयी। रून्नू जा रही थी। वह कॉलेज स्ट्रीट से निकलकर यूनिवर्सिटी की बगल वाली गली की तरफ जा रही थी। उस रास्ते का नाम शायद प्यारी चरन सरकार स्ट्रीट ही था, जिसमें

वह घुसी थी। उसके साथ एक स्मार्ट-सा छोकरा भी था। हो सकता है अयन हो या कोई और···

अरुण धड़धड़ाते हुए उस चलती हुई बस से नीचे उतर पड़ा और पागलों-सा अचकचाया हुआ रूनू को जाते हुए देखता रहा। वह दोनों हिल-मिलकर हंसते हुए आगे बढ़े जा रहे थे। इसी बीच उस लड़के ने रूनू की पीठ पर हाथ रखकर, एकबारगी उसे फुटपाथ की ओर कर दिया।

अरुण ने कहीं अखबार में पढ़ा था···उसे उसने खुद भी महसूस किया, उसकी समूची देह पर जैसे किसी ने पेट्रोल छिड़ककर दियासलाई दिखा दी हो···उसका तन-बदन जल उठा।

वह रूनू को देखते ही बस से उतर गया और उससे थोड़ी-सी दूरी रखकर उनके पीछे बौराया-सा चलता रहा। अचानक उसकी आँखें भर आयीं। वह मन-ही-मन रूनू से मिन्नतें करता रहा—'रूनू, मेरी बात सुन लो। मैंने यह कभी नहीं चाहा कि तुम पूरी की पूरी सिर्फ मेरी बनी रहो। मुझमें थोड़ी-सी ईर्ष्या जगी रहे, कहीं से टुकड़ा-भर सुख मिलता रहे। बस! तुम मुझे थोड़ा-सा प्यार दे दो, मैं उसके सहारे जिन्दा रह लूंगा। मैं अयन को भी सह लूंगा, दिव्य को भी!! हां, मैं सब लोगों को सहता हुआ, अपने सीने की आग अपने भीतर ही छुपाये रहूंगा। लेकिन इसके बदले में तुम भी मुझे थोड़ा-सा सह लो न।'

अरुण क्या आगे बढ़कर उसके पास जा खड़ा हो या उसे आवाज देकर रोक ले और खुद बात शुरू कर दे?

अचानक रूनू की निगाह उस पर पड़ गयी। वह पल-भर उसकी तरफ देखती रही, फिर आगे बढ़ गयी। कुछ दूर जाकर उसने दुबारा पीछे मुड़कर देखा। अरुण को लगा उसकी आँखें उसके प्रति सिर्फ नफरत उगल रही हैं। रूनू की आँखों और चेहरे पर खौफ झलक उठा। मानो वह कोई भयंकर डाकू या बीभत्स आदमी हो।

उसने साथवाले लड़के से कुछ फुसफुसाकर कहा।

उस लड़के ने एक बार मुड़कर उसकी तरफ देखा। उसके चेहरे

पर चैलेंज उभर आया। अचानक वह पूरी तरह घूमकर खड़ा हो गया।

अरुण बेहद भाग्यवान है।

यह यूनिवर्सिटी की बायें गेट से अन्दर चला गया। पल-भर को उसने मारे शर्म के अपना चेहरा हथेलियों में छुपा लिया। उसकी आँखें दर्द और अपमान से छलछला आयीं। उसे लगा उसके भीतर कोई तक्षक सांप पैठ गया है और उसकी पसलियों, कलेजे और गले को कुतर-कर खा रहा है।

रूनू का यह नया रुख उसे सर्वथा अपरिचित लगा। शायद वह भी रूनू की निगाह में एक अपरिचित-भर रह गया है।

···हाँ, हम सबके-सब पेड़ की तरह खड़े हैं! दरअसल हम पेड़ भी नहीं हैं—गुच्छे-गुच्छे भर करकट की तरह उग आये हैं। हममें बात करने तक का सलीका नहीं है या हम दरअसल जो कहना चाहते हैं, वह नहीं कह पाते। हम सब भीड़ में एक-दूसरे के अगल-बगल खड़े हैं—जंगल की तरह! झुंड की तरह!! लेकिन हममें कहीं कोई तालमेल नहीं है।—सब इतने पास-पास होते हुए भी, एक-दूसरे से अजनवी और अपरिचित हैं। कोई किसी को अण्डरस्टैंडिंग नहीं देता। ये तमाम लोग, जो समाज, गृहस्थी, प्रेम, विवाह के बारे में बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, दरअसल झूठे होते हैं। हम हर पल, हर जगह नितान्त अकेले होते हैं।

हर आदमी अपने में बेहद अकेला होता है। वह सिर्फ अपने से बातें कर सकता है।

···उस दिन की बात याद आते ही अरुण ने दीवाल की तरफ देखते हुए मन-ही-मन कहा, "माँ, जरा मेरे सीने पर अपना हाथ रख दो।" किसी ने उसकी माँ की तस्वीर को माला पहनायी थी—शायद मौलू ने!

···रूनू जिस दिन उसे अपनी मामी से मिलाने ले गयी थी, अरुण ने उसे जूही के फूलों का एक गजरा भेंट किया था।

रूनू ने मकान में दाखिल होने से पहले वह माला अपने जूड़े से

उतारकर, हाथ में से ली थी और जाने कब उसे पास वाले गन्दे ड्रेन में फेंक दिया था।···इतने दिनों बाद उसके ख्यालों में जूही के फूलों का वह गजरा दुबारा महक उठा।

"भइया, एक लड़की आयी है, तुम्हें बुला रही है।" मीलू ने दौड़कर सूचना दी, फिर हँसते हुए पूछा, "तेरी कितनी गर्ल-फ्रेण्ड्स हैं, भाई?"

अरुण चौंक उठा। शायद उर्मि होगी। कुछ ही दिनों बाद उसका ब्याह है, यह हो सकता है, नन्दिनी आयी हो। इधर वह काफी दिनों से उससे नहीं मिला। उसने मन-ही-मन मनाया, वह नन्दिनी ही हो। भगवान करे नन्दिनी ही आयी हो। उसे नन्दिनी में कहीं से रुनू की झलक भी मिलती है।

अरुण दरवाजे पर आकर फूलों के गुच्छों की तरह खिल आया। मानो कहीं घने अँधेरे को चीरकर हजारहा रुपहले सितारे जगमगा उठे हों।

रुनू की आँखों में जैसे पुखराज झिलमिला रहे थे। वह अरुण से आँखें नहीं मिला पा रही थी। अरुण के सामने ही रुनू का चेहरा धुँधला गया।

"सुनो, मैं रह नहीं पायी। मैं हार गयी।" रुनू के चेहरे पर कलेजा तोड़ने वाली एक रुलाई उमड़ आयी।

अरुण ने उसे सँभालने के स्वर में कहा, "सुनो, मैं तुम्हें सब-कुछ बता दूँगा! सब-कुछ।"

रुनू के चेहरे पर दर्द-भरी हँसी उमड़ आयी। कहा, "मैं सब जानती हूँ। मुझे पता है। हाँ, मैं सब-कुछ जान-बूझकर भी···" उसने रुँधी हुई आवाज में कहा, "मुझसे रहा नहीं गया। मैं हार गयी।"

अरुण की सारी बातें जैसे कहीं खो गयी हों। वह चाहकर भी कुछ कह नहीं पाया। उसका मन हुआ कि वह रुनू को बताये, तुम कुछ नहीं जानती, रुनू! हम में से कोई कुछ नहीं जानता। कोई किसी को अण्डरस्टैंडिंग नहीं देता! किसी की किसी से कोई जान-पहचान नहीं है। हम सब मोड़ में अगल-बगल खड़े हैं, लेकिन अपनी बात कहने

में असमर्थ हूँ।'

जंगल के दो निःशब्द पेड़ों की तरह वह दोनों आमने-सामने खड़े रहे। बिल्कुल अगल-बगल। काफी पास-पास! लेकिन उनमें से किसी की जुबान पर कोई हरकत नहीं हुई। वह जो कहना चाह रहे थे, कह नहीं पाये। शायद कभी कह भी नहीं पायेंगे। सच ही कोई किसी की भाषा नहीं समझेगा। सबके-सब अपने-अपने सुख-दुःख, मान-अपमान के दर्द में डूबे हुए सिर्फ अपने से ही बातें करेंगे। कभी-कभार कोई पेड़ किसी पेड़ से टकरा जायेगा। ऊपर से स्थिर होते हुए भी अन्दर-ही-अन्दर उनकी जड़ें आपस में टकरायेंगी।

जैसे जंगल में ढेर-ढेर सारे पेड़ आस-पास खड़े रहते हैं—चुप! निःशब्द!! कभी आंधी-तूफान आता है, तो लगता है पेड़ आपस में बातें कर रहे हैं, ढेर सारी बातें। कोजीनुक का शोरगुल भी इसी तरह गूंजता है—सिर्फ आवाजें ही आवाजें! लेकिन अगर कान लगाकर सुनो, तो एक भी शब्द समझ में नहीं आता······।

